महाभारत

(सम्पूर्ण १८ पर्व, १०० पर्वाध्याय, १८५० अध्याय)

(समस्त सवा लाख श्लोकों की सम्पूर्ण कथाएँ, उपकथाएँ, उपदेश)

प्रथम खण्ड

(आदि पर्व से सभा पर्व

रूपान्तरकार

अनेकानेक ग्रंथों के रचयिता

पं० भगवानदास अवस्थी, एम० ए०

प्रकाशक

ज्ञानलोक, दारागंज, प्रयाग

महाभारत

विषयानुक्रमणिका

आदि पर्व (आरंभ से २६६ पृष्ठ तक)

शौनक ऋषि और सूत—कथाओं की अनुक्रमणिका; समन्त पञ्चक की कथा—विषयानुक्रमणिका; सरमा का शाप, धौम्य के शिष्यों, तथा उत्तंक राजा की कथा, उग्रश्रवा और शौनक-संवाद कथा का प्रारम्भ; भृगुवंश का वर्णन—पुलोमा का उपाख्यान च्यवन की उत्पत्ति—अग्नि को शाप; अग्नि का कोप—ब्रह्मा का समझाना; रुरु और मेनका की कन्या प्रमद्वरा की कथा; रुरु का आधी आयु देकर प्रमद्वरा को जिलाना; रुरु और डुण्डुभ जगत्कारु का पूर्व पुरुषों के उद्धारार्थ जगत्कार से विवाह आस्तीक का जन्म; कद्रू-विनता; नागों और गरुड़ का जन्म समुद्र-मंथन से अमृत आदि का निकलना; देवताओं का अमृत पीना, देवासुर-संग्राम; कद्रू और विनता की बाजी; कद्रू और विनता समुद्र पर; सर्पों का उच्चैश्रवा की पूंछ में लिपटना; देवताओं का गरुड़जी की स्तुति करना; अरुण का सूर्य का सारथी बनना; कद्रू का विनता की पीठ पर सवार होना; विनता का दासीपन से छूटने के लिए उपाय करना; गरुड़जी का मल्लाहों को खाना; बालखिल्य ऋषियों को बचाकर गरुड़ का आगे बढ़ना; गरुड़ की उत्पत्ति का कारण—तपस्वियों का अपमान, गरुण का देवगण को हराना; नारायण से भेंट—इन्द्र-मित्र; साँपों की दो जीभें; मुख्य-मुख्य नागों के नाम—शेष से गरुड़ की मित्रता; शाप से बचने के उपाय—आस्तीक; जरत्कारु का अर्थ; परीक्षित

श्रौर शमीक; परीक्षित को शाप; तक्षक, कश्यप श्रौर परीक्षित की मृत्यु; जरत्कारु का विवाह, जाति के लिए तप-त्याग-यातनाएँ; जनमेजय का श्रपने पिता का हाल जानकर यज्ञ करना; सर्पों की श्राहुति; श्रास्तीक द्वारा जनमेजय के यज्ञ की प्रशंसा; तक्षक-सहित इन्द्र का श्राना, श्रास्तीक को बरदान; यज्ञ की समाप्ति, श्रास्तीक को नागों का वरदान; संक्षेप में महाभारत की कथा; महाभारत सुनने का फल; राजा उपरिचर की कथा; ब्राह्मणों से क्षत्रियों की उत्पत्ति, देव-श्रसुरों का मनुष्य होना; दक्ष की कन्याश्रों का वंश; श्रंशावतार, मनु का वंश; कच श्रौर देवयानी; दोनों का शाप; शर्मिष्ठा श्रौर देवयानी का का झगड़ा; शुक्र-देवयानी-संवाद; कुल को नाश से बचाने के लिए शर्मिष्ठा का दासी होना; देवयानी का विवाह, शर्मिष्ठा के पुत्र; ययाति को शाप, पुत्र से जवानी लेना; ययाति की स्वर्ग-यात्रा; ययाति का श्रपना श्रनुभव बतलाना; ययाति द्वारा चारों श्राश्रमों का वर्णन; ययाति का फिर से स्वर्ग को जाना, ययाति का वंश, शकुन्तला श्रौर दुष्यन्त की कथा; शकुन्तला के जन्म की कथा, दुष्यन्त-शकुन्तला का विहार, सर्व-दमन भरत; दुष्यन्त की परीक्षा, शकुन्तला का रानी होना; भरत श्रौर भरत वंश; गङ्गा श्रौर श्राठ वसु; प्रतीप श्रौर गङ्गा; शान्तनु का जन्म; शान्तनु गङ्गा श्रौर पुत्र-वध; श्रष्ट-वसुश्रों को शाप; सत्यवती श्रौर भीष्म-प्रतिज्ञा; चित्राङ्गद श्रौर विचित्र वीर्य; विचित्र-वीर्य श्रौर काशिराज की कन्याएँ; सत्यवती का भीष्म से वंश चलाने को कहना; दीर्घतमा श्रौर क्षत्रिय-वंश; वेदव्यास की जन्म की कथा; व्यास का श्राना; धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर का जन्म; श्रणीमाण्डव्य की कथा; धर्मराज को शाप; पाण्डु को राजा बनाया जाना; धृतराष्ट्र का गांधारी से विवाह; कुन्ती को मंत्र, कर्ण की उत्पत्ति; पाण्डु का कुन्ती से विवाह; पाण्डु का माद्री से विवाह; विदुर का विवाह; गांधारी से

धृतराष्ट्र के सौ पुत्र; दुःशला की उत्पत्ति;पुत्रों के नाम; पाण्डु को मृगरूपी ऋषि का शाप; पाण्डु का वानाप्रस्थ होना; पाण्डु का पुत्रों के लिए उपाय करना; राजा व्युषिताश्व; युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन का जन्म; नकुल-सहदेव का जन्म; पाण्डु की मृत्यु; पुत्रों सहित कुन्ती का हस्तिनापुर आना; पाण्डु की अन्त्येष्ठि क्रिया; सत्यवती का तप, भीम को विष; भीम का नाग लोग से आना; कृपाचार्य के जन्म की कथा; द्रोणाचार्य; द्रुपद द्वारा द्रोण का अपमान; भीष्म को द्रोण को अपने यहाँ रखना; कौरवों-पाण्डवों की शिक्षा; अर्जुन का ब्रह्मास्त्र प्राप्त करना; कुमारों की अस्त्र-परीक्षा; अर्जुन का कौशल; कर्ण का कौशल, अंग देश के राज्य की प्राप्ति; रंग भूमि में सारथी अधिरथ; गुरुद्रोण की गुरु-दक्षिणा, राजा-द्रुपद वन्दी; पाण्डवों की उन्नत्ति, धृतराष्ट्र की चिन्ता; नीतिज्ञ कणिक की कुटिल-नीति; दुर्योधन का पाण्डवों से जलना; पाण्डवों का वारणावत नगर में भेजने का विचार; वारणावत् जाने की तैयारी; पुरोचन का लाक्षा-भवन बनवाने के लिए जाना; विदुर का पाण्डवों को उपदेश; पाण्डव वारणावत् में; लाक्षा भवन में सुरंग; लाक्षा-गृह-दाह; धृतराष्ट्र का पाण्डवों के लिए शोक मनाना; भीमसेन और हिडिम्बा राक्षसी; हिडिम्ब दानव से युद्ध और उसका वध; भीम और हिडिम्बा से घटोत्कच का जन्म; व्यास के कहने से पाण्डव एक चक्रा नगरी में; ब्राह्मण के रोने से कुन्ती को दया; कुन्ती और ब्राह्मण की बातें; युधिष्ठिर की शंका, कुन्ती का समझाना; राक्षस से भीम का युद्ध; द्रोपदी के स्वयंवर का समाचार, यज्ञ से द्रौपदी, धृष्टद्युम्न-जन्म; पाञ्चाल देश की यात्रा, द्रौपदी के पूर्वजन्म की कथा; अंगापर्ण गंधर्व से अर्जुन का युद्ध; सूर्य-कन्या तपती और संवरण, संवरण-तपती-संवाद; वशिष्ठ की सहायता से तपती की प्राप्ति; वशिष्ठ के जन्म की कथा; वशिष्ठ-विश्वामित्र की कथा,

नन्दनी हरण; कल्माषपाद को शाप, वशिष्ठ के सौ पुत्रों का नाश, कल्माषपाद की शाप से मुक्ति, वशिष्ठ से पुत्र; वशिष्ठ के पोते पराशर भृगुवंशी ब्राह्मणों का नाश; और्व ऋषि की उत्पत्ति और उनका कोप; पराशर का राक्षस-नाश के लिये यज्ञ करना; वशिष्ठ ने क्यों रानी में पुत्र उत्पन्न किया; धौम्य का पुरोहित होना; पाण्डवों का स्वयंवर में जाना, वहाँ धृष्टद्युम्न की घोषणा; राजाओं का लक्ष्य न वेध सकना; अर्जुन का लक्ष्य-वेध कर द्रौपदी को प्राप्त करना; राजाओं का द्रुपद को मारने के लिए दौड़ना; अर्जुन-भीम का राजाओं को हराना; पाँचों भाइयों का द्रौपदी के साथ विवाह करने के लिए तैयार होना; धृष्टद्युम्न का छिपकर पाण्डवों का हाल लेना; पाण्डवों के पास द्रुपद के पुरोहित; पाण्डवों का द्रुपद के भवन में जाना; द्रौपदी और पाण्डवों के पूर्व जन्म की कथा; पाण्डवों से द्रौपदी का विवाह; दुर्योधन की चिन्ता और कुमंत्रणा; विदुर का पाण्डवों को लाना, खाण्डवप्रस्थ का राज्य; सुन्द-उपसुन्द की कथा, नारदजी के कहने से पाण्डवों का नियम बनाना; तिलोत्तमा की उत्पत्ति; सुन्द-उपसुन्द का नाश, पाण्डवों का नियम; अर्जुन के वनवास का कारण; नागकन्या उलूपी और अर्जुन; अर्जुन मणिपुर में, चित्रांगदा से विवाह; प्रभास क्षेत्र में अर्जुन-श्रीकृष्ण भेंट, सुभद्रा-हरण; जल-विहार, अग्नि का आना, अग्नि का अजीर्ण; अर्जुन का अग्नि से रथ-धनुष माँगना; भीषण अग्नि, इन्द्र का जल बरसाना; मन्दपाल ऋषि और शार्ङ्गक पक्षियों की कथा; खाण्डव-दाह समाप्त, अर्जुन-कृष्ण को वरदान।

सभा पर्व (पृष्ठ २६७ से ३८८ पृष्ठ तक)

श्री कृष्णजी का मयदानव से सभा-भवन बनाने को कहना, श्री कृष्णजी का जाना; मयदानव का सभा-भवन बनाना;

युधिष्ठिर का सभा-भवन में प्रवेश, नारद का उपदेश; सभाओं के वर्णन; युधिष्ठिर के प्रश्नों के उत्तर; युधिष्ठिर का राजसूय के लिए सलाह करना; जरासंध के जन्म का रहस्य; कृष्ण भीम-अर्जुन की यात्रा; जरासंध का स्वागत; जरासंध से भीम का युद्ध, जरासंध-वध; पाण्डवों की दिग्विजय; राजसूय यज्ञ; सबसे पहले श्री कृष्णजी की पूजा; शिशुपाल का सब को भला बुरा कहना; शिशुपाल का युद्ध के लिए प्रयत्न, भीष्म का समाधान; शिशुपाल-वध; व्यासदेव का उपदेश; दुर्योधन का अपमान, शत्रुता का जड़ पकड़ना; धृतराष्ट्र का विदुर की सलाह से दुर्योधन को समझाना; द्यूत का निश्चय, विदुर का युधिष्ठिर के पास भेजा जाना; विदुर का अपमान और त्याग; युधिष्ठिर का अपने भाइयों और द्रौपदी को हारना; चीर-हरण, भीम की प्रतिज्ञा, विदुर और भीष्म के वचन; धृतराष्ट्र का वर देना, पाण्डवों की मुक्ति; भीम का क्रोध, धृतराष्ट्र का युधिष्ठर को भेजना; फिर से जुएँ की आज्ञा, गांधारी का विरोध; पाण्डवों का वन जाना, विदुर का उपदेश; कौरवों के नाश की भविष्य-वाणी; धृतराष्ट्र की चिन्ता, संजय से बातें।

वन पर्व (पृष्ठ ३८९ से ५८१ पृष्ठ तक)

पाण्डवों का वनगमन, प्रजा का शोक; युधिष्ठिर का ब्राह्मणों और शौनक के साथ संवाद; युधिष्ठिर का सूर्यनारायण से वर पाना; धृतराष्ट्र-विदुर संवाद; विदुर का पाण्डवों के पास जाना; धृतराष्ट्र का विदुर को बुलवाना, व्यासदेव का उपदेश; पुत्र-स्नेह का उपाख्यान, मैत्रेयजी का शाप, किर्मीर-वध; श्री कृष्णजी की प्रतिज्ञा, द्रौपदी का विलाप, शाल्व का द्वारका को घेरना, युद्ध की कथा; शाल्व से युद्ध, उसका वध, द्वैतवन-निवास; मार्कण्डेय और बकदालभ्य के उपदेश; द्रौपदी का संताप, बलि-

प्रह्लाद संवाद, क्षमा-क्रोध-विवेचन; युधिष्ठिर-द्रौपदी संवाद; भीम-युधिष्ठिर-संवाद; अर्जुन का पता और दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति; अर्जुन का इन्द्रलोक जाना और अस्त्र और संगीत-विद्या सीखना अर्जुन को उर्वशी का शाप; अर्जुन के पूर्व जन्म की कथा, धृतराष्ट्र का सोच; राजा नल का उपाख्यान, नल-दमयन्ती विवाह; नल का जुएँ में सर्वस्व हारना, दमयन्ती पर संकट; नल और कर्कोटक, नल का सारथी बनना। दमयन्ती का विदर्भ लौटना और दूसरा स्वयंवर, नल की खोज; दमयन्ती के दूसरे स्वयंवर में ऋतुपर्ण: नल-दमयन्ती मिलन; तीर्थों और उनके फ़ल का वर्णन; धौम्य का पूर्व, पच्छिम, उत्तर, दक्षिण के तीर्थों का वर्णन करना; अगस्त्य, वातापि और इल्वल की कथा; अगस्त्यजी का समुद्र को सोखना; विन्ध्याचल को रोकना; सगर के साठ हज़ार पुत्रों का भस्म होना, भगीरथ का गंगा को लाना; ऋष्य शृंग की कथा; परशुरामजी का उपाख्यान; श्रीकृष्ण बलराम का आना, युधिष्ठिर की धर्मनिष्ठा; च्यवन और सुकन्या, च्यवन का जवान होना, इन्द्र के हाथ-जड़वत्; राजा मान्धाता तथा सोमक की कथाएँ, उशीनर की तपोभूमि; उशीनर का कबूतर के बदले में अपना मांस देना; अष्टावक्र का अपने पिता का जल से उद्धार करना; रैभ्य, भरद्वाज, यवक्रीत की कथा; पाण्डव राक्षसों पर सवार होकर नर-नारायण के आश्रम में; भीम का कमल के फ़ूल लेने जाना, हनुमानजी से भेंट; यक्षों का नाश, कुबेर का आना; पाण्डवों का राक्षस द्वारा हरा जाना; भीम का यक्ष राक्षसों को मारना; पाण्डवों की प्रतीक्षा, अर्जुन का लौटना. इन्द्र का आश्वासन; दिव्य अस्त्रों के पाने, निवात कवच दानवों के मारने का वर्णन; भीम-अजगर, ब्राह्मण कौन ? नहुष का शाप से छूटना; श्रीकृष्णजी का पाण्डवों से मिलना, मार्कण्डेय का ज्ञानोपदेश; मनु और मत्स्य भगवान; मार्कण्डेयजी

का प्रलय और कलियुग का वर्णन करना; वामदेव ऋषि, परीक्षित, और शल-दल, दीर्घजीवियों के कष्ट; स्वच्छन्द कौन ? सदाचार क्या; शिवि की परीक्षा और निष्काम कर्म: धर्म कैसे क्षीण होता है; मार्कण्डेय से अधिक दीर्घजीवी; जबतक यश, तबतक स्वर्ग, दान-धर्म की व्याख्या; इक्ष्वाकुवंश, मधुकैटभ, कुवलाश्व और धुन्धुमार की कथा; पतिव्रत-महात्म्य, धर्म-व्याध, धर्मतत्व-निरूपण; अग्निवंश और अंगिरा; देव सेना, अग्नि का ऋषि पत्नियों पर मोहित होना, स्कन्द का जन्म; स्कन्द देव सेना के पति, दानवों की हार; पति को वश में करने का उपाय; पति-सेवा से सफलता, सत्यभामा की विदा; दुर्योधन का द्वैत वन में जाकर गांधर्वों द्वारा पकड़ा जाना; कर्ण द्वारा दिग्विजय, दुर्योधन द्वारा विष्णु-यज्ञ, कर्ण-प्रतिज्ञा; तपस्वी मुद्गल की कथा, अन्न-दान की महिमा; दुर्योधन का दुर्वासा को पाण्डवों के पास भेजना; द्रौपदी-हरण, जयद्रथ की हार, तप तथा उसे वर; रामायण की कथा, सीता-हरण रावण वध; सावित्री-सत्यवान की कथा, पतिव्रत-धर्म की महिमा; कर्ण का इन्द्र को अपने कुण्डल-कवच देना; युधिष्ठिर के धर्माचरण की परीक्षा, यक्ष के प्रश्न; अज्ञातवास की तैयारी।

विराट पर्व (पृष्ठ ५८२ से ६०८ पृष्ठ तक)

अज्ञातवास की सलाह; धौम्यजी के उपदेश; छद्मवेशी-पाण्डव विराट के यहाँ; भीम की कुश्ती; कीचक द्वारा द्रौपदी का अपमान; द्रौपदी के कहने से भीम का कीचक को मारना; कीचक के बन्धुओं का मारा जाना, कीचक के मारे जाने के समाचार, कौरवों की मत्स्य देश पर चढ़ाई; उत्तर का बृहन्नला के साथ कौरवों से लड़ने के लिए जाना; कौरवों का परामर्श, दुर्योधन का गायों के साथ प्रस्थान; अर्जुन का द्रोण, कर्ण आदि सबको

हराना, कौरवों का लौटना; युधिष्ठिर की नाक से खून, उत्तर का लौटना; पाण्डवों का प्रकट होना, उत्तरा का अभिमन्यु से विवाह।

उद्योग पर्व (पृष्ठ ६०९ से ६६४ पृष्ठ तक)

श्रीकृष्णजी, द्रुपद आदि के मंतव्य, कौरवों के पास दूत; श्री कृष्णजी को रण का निमंत्रण, अर्जुन का निःशस्त्र कृष्ण को लेना; दुर्योधन का छल से शल्य को पाना, शल्य-प्रतिज्ञा; त्रिशिरा-वृत्रासुर वध, इन्द्र को ब्रह्म-हत्या, नहुष का पतन; दोनों ओर की सेनाएँ, पाण्डवों का दावा, कौरव-सभा में मतभेद; सञ्जय पाण्डवों के पास, युधिष्ठिर तथा श्रीकृष्ण के संदेश; विदुर-नीति, धृतराष्ट्र को उपदेश; सनत्सुजात महर्षि का धृतराष्ट्र को उपदेश; पाण्डवों का संदेश, भीष्म-द्रोण का उपदेश, पाण्डवों की शक्ति; धृतराष्ट्र का परिताप, दुर्योधन की गर्वोक्तियाँ; कर्ण-प्रतिज्ञा; श्री कृष्णजी की महिमा ! धृतराष्ट्र का शरण लेना; युधिष्ठिर आदि के संधि-संबंधी विचार, श्रीकृष्ण की संधि-यात्रा; स्वागत की तैयारी, श्रीकृष्णजी कौरव-सभा में, कुन्ती से भेंट; कौरव-सभा में श्री कृष्णजी का भाषण; दम्भोद्भव, मातलि द्वारा वर की खोज, गरुड़ का मान-भंग; विश्वामित्र और गालव, गरुड़ के पंखों का गिरना, गालव का हठ; माधवी से चार राजाओं का संसर्ग, ययाति अभिमान से भ्रष्ट; श्रीकृष्ण; भीष्म आदि का दुर्योधन को समझाना; श्रीकृष्णजी का रोष, उन्हें क़ैद करने का उपक्रम, विराट-रूप दर्शन; कुन्ती का पाण्डवों को संदेश, विदुला का उपाख्यान; कर्ण के जन्म की कथा बतलाकर पाण्डवों से मिलने का उपदेश; कुन्ती और कर्ण का त्याग, पाण्डवों को न मारने की प्रतिज्ञा; श्रीकृष्णजी का लौटकर हस्तिनापुर की बातें बतलाना; पाण्डव सेना के सेनापति; दोनों सेनाओं का कुरुक्षेत्र में आना; तैयारियाँ, बलरामजी की तीर्थ-यात्रा, रुक्मी

का गर्व; दुर्योधन का उलूक को संदेश लेकर भेजना, युद्ध का निश्चय; कौरव पक्ष के महारथियों का वर्णन; कर्ण का बिगड़ना; पाण्डवों के वीरों का वर्णन, भीष्म की प्रतिज्ञा; अम्बा की बदला लेने की प्रतिज्ञा; भीष्म आदि की शक्ति; सेनाओं का संग्राम-भूमि में आना।

भीष्म पर्व (पृष्ठ ६६५ से ७२८ पृष्ठ तक)

युद्ध के नियम; सञ्जय को दिव्य दृष्टि, अशुभ सूचनाओं का वर्णन; पृथ्वी के गुणों, पदार्थों के कारण उस पर आधिपत्य; युद्ध की तैयारी, दुर्गा का अर्जुन को वर, अर्जुन-मोह, गीता का उपदेश, अर्जुन का समाधान; युधिष्ठिर का भीष्म, द्रोण आदि से युद्ध के लिए आज्ञा लेना; युद्धारंभ, उत्तर तथा श्वेत वध, विकट मारकाट; दूसरे दिन का युद्ध, कलिंगराज आदि का वध; श्रीकृष्णजी का चक्र लेकर दौड़ना; भीषण युद्ध; श्रीकृष्णजी का भीष्म को मारने के लिए दौड़ना, पाण्डवों से अपने मारे जाने का उपाय बतलाकर भीष्म का गिरना; भीष्म को तकिया और जल, कर्ण का मिलना।

द्रोण पर्व (पृष्ठ ७२९ से ७७९ पृष्ठ तक)

कर्ण की सलाह से द्रोण सेनापति; श्रीकृष्ण का गुण-गान, युधिष्ठिर को पकड़ने की प्रतिज्ञा; संशप्तकों से युद्ध, भगदत्त, नील आदि का नाश; चक्र-व्यूह भेद अभिमन्यु का अनेक महारथियों द्वारा मारा जाना; मृत्यु की उत्पत्ति; अकम्पन, शिवि, भागीरथ आदि की कथा; अर्जुन का शोक और जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा, पाशुपतास्त्र; जयद्रथ-वध, अर्जुन, सात्यकि, भीम, द्रोणाचार्य आदि का पराक्रम; दुर्योधन का उलाहना और परामर्श; रात्रि-युद्ध, घटोत्कच वध, अमोघशक्ति का प्रयोग, कृष्ण-हर्ष; अश्व-

त्थामा की मृत्यु की झूठी बात, द्रोण-वध; नारायणास्त्र से पांडवों की रक्षा, शिव तथा श्रीकृष्ण की महिमा।

कर्ण पर्व (पृष्ठ ७८० से ७९९ पृष्ठ तक)

कर्ण सेनापति सोलहवें दिन का भीषण युद्ध; शल्य का सारथी होना, शल्य-कर्ण विवाद; घोर संग्राम, युधिष्ठिर का परास्त तथा घायल होकर भागना; अर्जुन युधिष्ठिर को मारने के लिए तैयार होना; सत्य से नरक, हिंसा से स्वर्ग; दुःशासन को मारकर भीम का उसके रक्त को पीना, कर्ण-वध।

शल्य पर्व (पृष्ठ ८०० से ८२० पृष्ठ तक)

शल्य सेनापति; शल्य तथा कौरव-सेना का संहार; दुर्योधन सरोवर में, शठ को दमन का उपदेश, गदायुद्ध; बलदेवजी की तीर्थ-यात्रा, तीर्थों का वर्णन; भीम का दुर्योधन की जाँघें तोड़ना, गांधारी को समझाना; दुर्योधन का विलाप, अश्वत्थामा की प्रतिज्ञा।

सौप्तिक पर्व (पृष्ठ ८२१ से ८२९ पृष्ठ तक)

अश्वत्थामा का शिव को प्रसन्न कर पाण्डव-सेना का संहार करना, दुर्योधन की मृत्यु; द्रौपदी की प्रतिज्ञा, पाण्डवों को अश्वत्थामा से मणि लाना, अस्त्र-प्रयोग।

स्त्री पर्व (पृष्ठ ८३० से ८३९ पृष्ठ तक)

धृतराष्ट्र को समझाना, संसार-कूप, लोक-संहार, धृतराष्ट्र के आलिंगन से लोहे के भीम नष्ट, गांधारी के कोप से युधिष्ठिर के नख काले; गांधारी आदि का मृत आत्माओं को देखकर विलाप

करना, गांधारी का श्रीकृष्णजी को शाप; दाह-कर्म, तिलांजलि; कर्ण-जन्म की बात, स्त्री जाति को शाप।

शान्ति पर्व (पृष्ठ ८४० से ६८१ पृष्ठ तक)

युधिष्ठिर का शोक और वैराग्य, ऋषियों का आना; भीम, अर्जुन आदि का युधिष्ठिर को समझाना; व्यासजी द्वारा क्षात्र-धर्म, दण्ड-विधान, सुख-मार्ग आदि का उपदेश; श्रीकृष्ण का समझाना, नारद का विवाह, स्वर्णष्ठीवी की कथा; व्यास के उप-देश, राजधर्म प्रायश्चित, भक्ष्याभक्ष्य, पात्रापात्र, युधिष्ठिर का अभिषेक, चार्वाक की मृत्यु, भीष्म से धर्म-ज्ञान; परशुराम-कथा; सब भीष्म के पास, व्यथा का दूर होना; धर्मोपदेश के लिए भीष्म के पास राजधर्म वर्णन; राजा की उत्पत्ति, वर्ण आदि के धर्म, रामधर्म-राजनीति, ब्राह्मणों की श्रेष्ठता, मुचुकुन्द; राज्य से अधर्म नहीं, आपद् धर्म, मित्र, श्रीकृष्ण नारद-संवाद; मंत्री के गुण, कालक वृत्तीया ऋषि, इन्द्र-बृहस्पति, कर-रीति, उत्तथ्य-मांधाता; वसुमना-वामदेव, युद्ध-धर्म, विजय के उपाय, क्षेमदर्शी-जनक; राजनीति, माता-पिता की महिमा, सत्य-मिथ्या, संकटों से त्राण, भले-बुरे, आलस्य, शत्रु को वश में करने के उपाय, दुष्टों के दुर्वचन, सहायकों की आवश्यकता, मुनि और कुत्ता; दण्ड की उत्पत्ति और स्वरूप, वसुहोम-मांधाता, कामन्दक-आंगरिष्ठ, इन्द्र-प्रह्लाद, ऋषभ-सुमित्र, वीरद्युम्न-तनु, आशा की कृशता, यम-गौतम और माता-पिता की सेवा; राजर्षि वृत्तान्त-कीर्तन; कायव्य-दस्यु-संवाद, शकुलोपाख्यान; मार्जार-मूषिक-संवाद, ब्रह्मदत्त-पूजनी-संवाद; कणिक-उपदेश; विश्वामित्र निषाद-संवाद; कपोत-लुब्धक-संवाद; भार्या प्रशंसा-कीर्तन; इन्द्रोत-पारिक्षित-संवाद; गृध्र-गोमायु-सम्वाद; पवन शाल्मलि-संवाद; आत्म ज्ञान-कीर्तन; दम-

गुण वर्णन; तप कीर्तन, सत्य कथन; लोभोपाख्यान; नृशंस प्रायश्चित-कथन; खड्गोत्पत्ति-कीर्तन; षड्ज-गीता; कृतघ्नोपाख्यान; पिङ्गला गीता, पिता पुत्र-संवाद; सम्यक्गीता; मङ्कि गीता; बोध्य गीता; प्रह्लाद अजगर-संवाद; शृगाल काश्यप-संवाद, भृगु-भारद्वाज-सवाद; आचार विधि; जायकोपाख्यान; मनु बृहस्पति-संवाद; सर्व भूतोत्पत्ति; गुरु-शिष्य-संवाद; कृष्ण का माहात्म्य-कीर्तन; पंचशिख-जनक-संवाद; इन्द्र-प्रह्लाद-संवाद; वलिवासव-संवाद; इन्द्र न मुचि-सवाद। वलिदान संवाद; लक्ष्मीवासव-संवाद; देवल जैगीषव्य-संवाद; वासुदेव उग्रसेन संवाद; शुकानुप्रश्न; मृत्यु-प्रजापति संवाद; धर्म लक्षण, तुलाधार-जाजलि-संवाद; चिरकालिक उपाख्यान; द्युमत्सेन, सत्यव्रत-संवाद; स्युमरश्मि कपिल-संवाद; कुण्डधार उपाख्यान; यज्ञनिन्दा; प्रश्न चतुष्टय कीर्त्तन; योगाचार-कथन; नारद-देवल-संवाद; माण्डव्य-जनक-संवाद; पिता-पुत्र-संवाद; हारीत-गीता; वृत्त गीता, वृत्र वध; ज्वरोत्पत्ति; दक्ष-यज्ञ-विनाश; दक्ष द्वारा महादेव जी का सहस्रनाम-कीर्तन; पंचभूत कीर्तन; समंग-नारद-संवाद; सगर-अरिष्टनेमि-संवाद; भवभार्गव संवाद; पराशर गीता; हंसगीता; योग विधि कीर्तन; सांख्ययोग कथन; वसिष्ठ कराल जनक-संवाद; याज्ञवल्क्य-जनक-संवाद; जनक-पञ्चशिख-संवाद, सुलभा-जनक-संवाद, वेदव्यास-शुक-संवाद, धर्म मूल-कथन, शुकोत्पत्ति, शुक-जनक-संवाद; शुक नारद-संवाद, शुकाभि पतन, नारायण माहात्म्य, कीर्तन, व्यासोत्पत्ति-कथन; उञ्छवृत्ति-उपाख्यान।

अनुशासन पर्व (पृष्ठ ६८२ से १०४६ पृष्ठ तक)

मृत्यु, काल आदि कर्म के अधीन, गौतमी-सर्प उपाख्यान; गृहस्थ कैसे मृत्यु को जीते? अतिथि सत्कार और ओघवती, विश्वामित्र

क्यों क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए, नृशंसता धर्म, वृक्ष और तोता उद्योग की महिमा, लक्ष्मी के पास, स्त्री को सहवास में अधिक सुख, कल्याण का उपाय, महादेवजी का माहात्म्य, उपमन्यु, श्रीकृष्ण आदि का तप द्वारा शिवजी को प्रसन्न कर वर पाना, स्त्रियों का स्वभाव, अष्टावक्र-उत्तर दिशा, दान देने योग्य ब्राह्मण, पुण्य और पाप, तीर्थों और गंगा का माहात्म्य, ब्राह्मणत्व की दुर्लभता, मतंग का तप, वीत-हव्य ब्राह्मण हुए, श्रीकृष्ण-पृथ्वी संवाद, इन्द्र-शम्बर संवाद, सुपात्र ब्राह्मण, स्त्रियों के स्वभाव, नारद-पंच चूड़ा, देव शर्मा-विपुल, इन्द्र-रुचि; कन्यादान, विवाह, दाय भाग, पुत्रों के प्रकार, स्त्री-प्रशंसा, संकर-वर्ण; च्यवन मछलियाँ और जाल, ऋषि का मूल्य, एक गाय कुशिक वंश और च्यवन, कुशिक को स्वर्ग दर्शन, विश्वामित्र का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना; शुभ कर्म, जलाशय, वृक्ष लगाने, गोदान, भूमिदान, अन्न-दान, विद्यादान आदि के फल; प्रजा राजा को कब मार डाले; ब्राह्मण की महिमा; नृग और नाचिकेत के उपाख्यान; ब्रह्मा-इन्द्र संवाद; गोलोक-वर्णन; कपिला की उत्पत्ति; वशिष्ठ-सौदास संवाद; गौ में लक्ष्मी; सोने की उत्पत्ति, वशिष्ठ-परशुराम-संवाद, दान-लेने से सुकृत नष्ट, महर्षियों की शपथ और इन्द्र का मृणाल चुराना; छाता खड़ाऊँ की उत्पत्ति, विभिन्न दान, व्रत, इन्द्र-गोतम, अनशन व्रत, बिना धन के कर्मों के फल, द्वादशी और विष्णु पूजा, चान्द्र व्रत। बृहस्पति का उपदेश, जन्म-कर्म, प्रायश्चित, अन्न दान, हिंसा और मांस भक्षण से हानि, व्यास और कीड़ा, व्यास और मैत्रेय, शाण्डिली-सुमना, राक्षस-ब्राह्मण, पितृ तृप्ति; विष्णु के प्रियकार्य, वायु, यम, ब्रह्मा, शिव आदि का धर्म के रहस्य बतलाना, रेणुक प्रमथ गण, अभक्ष्य, दान; वसुदेव का तप और माहात्म्य, शिव का तप और माहात्म्य, विष्णुसहस्र नाम से अनिष्ट नाश, शिव-पार्वती संवाद; ब्राह्मणों का माहात्म्य, वायु-कीर्तवीर्य संवाद;

श्रीकृष्ण-महिमा, ब्राह्मण-महिमा, दुर्वासा का रुक्मिणी को रथ में जोतना, शिव-महिमा; धर्म के प्रमाण, शुभ गति प्राप्त करने के उपाय; भीष्म का अद्भुत शरीर त्याग, अन्तेष्टि क्रिया, गंगाजी का विलाप, श्रीकृष्ण आदि का समझाना।

अश्वमेध पर्व (पृष्ठ १०५० से १०६३ पृष्ठ तक)

युधिष्ठिर का शोक, व्यास आदि का समझाना, मरुत्त की कथा; मरुत्त का स्वर्णमय यज्ञ, बृहस्पति और संवर्त की शत्रुता; बन्धन से मुक्त कैसे हो? अहंकार-विजय, काम गीता; गीता का माहात्म्य, मोक्ष कैसे मिले, ब्राह्मण-ब्राह्मणी सवाद, इन्द्रियों, मन, प्राण-वायु आदि को वश में करना, ओम् से भिन्न २ भाव, हिंसा धार्मिक, यथार्थ विजय और राज्य, श्रीकृष्णजी के मन-बुद्धि, गुरु-शिष्य संवाद, ब्रह्माजी का सत्, रज, तम, महत्, अहंकार, पंचभूत, ज्ञान, नश्वर शरीर, उत्पत्ति-नाश, आश्रम, जाति, योग, श्रेष्ठ-धर्म आदि का तत्व बतलाना, आत्म-मन ही गुरु-शिष्य, उत्तंक-श्रीकृष्ण संवाद, विश्व रूप-दर्शन, उत्तंक की कथा, श्रीकृष्णजी का द्वारका जाकर फिर लौटना और परीक्षित को जिलाना; यज्ञ-प्रारम्भ, अश्व का छोड़ा जाना, दिग्विजय; अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति: पृथ्वी-दान, सोने के शरीर वाला नेवला; सत्तू दान यज्ञ से बढ़कर, बलि में विवाद, बीज से यज्ञ, सत्कर्मों के लिये धन आवश्यक नहीं, सोने की पीठवाला नेवला कौन था।

आश्रमवासिक पर्व (पृष्ठ १०६४ से ११०४ पृष्ठ तक)

पाण्डवों द्वारा धृतराष्ट्र की सेवा, उनके प्रति श्रद्धा, स्नेह; धृतराष्ट्र, कुन्ती आदि का प्रजा से सम्मति ले वन गमन; धृतराष्ट्र की दीक्षा-तपस्या, पाण्डवों का वन जाना, विदुर का अन्त, व्यास

के योगबल से मृत, दुर्योधन, कर्ण आदि का तथा परीक्षित का प्रकट होना, धृतराष्ट्र का स्वर्गवास।

मौसल पर्व (पृष्ठ ११०५ से ११११ पृष्ठ तक)

हँसी के कारण ऋषियों का शाप; अपशकुन, प्रभास क्षेत्र में युद्ध; यदुवंश का नाश; श्रीकृष्ण और बलदेव का दिव्यलोक को प्रस्थान; अर्जुन का द्वारका से धन तथा स्त्रियों को इन्द्रप्रस्थ लाना, डाका; द्वारका का समुद्र में डूबना; स्त्रियों का संन्यास।

महाप्रस्थानिक पर्व (पृष्ठ १११२ से १११५ पृष्ठ तक)

परीक्षित तथा वज्र को राज्य दे युधिष्ठिर का प्रस्थान; सागर पर अग्नि के कहने से अर्जुन का गांडीव दे देना, द्रौपदी, भीम आदि का हिमालय में गिरना, कुत्ते के रूप में धर्म, युधिष्ठिर की परीक्षा और फिर उनका सदेह स्वर्ग जाना।

स्वर्गारोहण पर्व (पृष्ठ १११६ से ११२० पृष्ठ तक)

युधिष्ठिर का स्वर्ग से भाइयों के पास नरक में जाना, नरक का भीषण दृश्य, युधिष्ठिर के साथ माया, युधिष्ठिर का स्वर्ग को जाना, अर्जुन आदि का दिव्य रूप वर्णन।

महाभारत की विषयानुक्रमणिका समाप्त

महाभारत

आदि पर्व

अध्याय १

शौनक ऋषि और सूत—कथाओं की अनुक्रमणिका

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

नैमिषारण्य क्षेत्र में शौनक कुलपति के यज्ञ-मण्डप में एक बार पौराणिक रोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा आये। शौनकजी ने बारह वर्ष की दीक्षा लेकर यज्ञ आरम्भ किया था। ऋषियों ने सूत उग्रश्रवा का बड़ा आदर-सत्कार किया तथा कुशल-प्रश्न के बाद पूछा कि आप कहाँ से आ रहे हैं। सूत ने कहा—राजा जनमेजय के सर्प-यज्ञ में श्री वैशम्पायन द्वारा कही गई, श्री भगवान कृष्ण द्वैपायन रचित, महाभारत की विचित्र कथा सुनने के अनन्तर तीर्थों का भ्रमण करता हुआ मैं आपके दर्शनों के निमित्त यहाँ आया हूँ। अब आप धर्म-अर्थ का

ज्ञान करानेवाली जिन कथाओं को सुनना चाहें, उन्हें मैं आपको सुनाऊँ।

ऋषियों ने धर्म-अर्थ का अत्यन्त सूक्ष्म निर्णय करने, वेदों के अर्थ को समझाने और आत्म-तत्व को बतलाने वाले भारत-इतिहास (महाभारत की कथा) को सुनने का आग्रह किया।

उग्रश्रवा सूत ने कहा—स्थूल-सूक्ष्म संपूर्ण ब्रह्माण्ड के आदि-पुरुष और ईश्वर, चराचर जगत को उत्पन्न और पालन करनेवाले, अद्वितीय, सत्य-स्वरूप, परब्रह्म, सत्-असत् तथा दोनों से परे रहनेवाले, इन्द्रियों के स्वामी, जगत के गुरु, अनादि, अनन्त, मंगलमय श्रीहरि के चरणों में नमस्कार कर मैं वेद्व्यास-रचित इतिहास का वर्णन करता हूँ। पहले संसार में प्रकाश न था। समय पाकर एक अण्ड उत्पन्न हुआ। उसमें ज्योतिर्मय परब्रह्म ने प्रवेश किया। उसी अण्ड से प्रजापति ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उनके बाद स्थाणु, स्वायंभुवमनु, दस प्रचेता, दक्ष, दक्ष के सात पुत्र, सात ऋषि, चौदह मनु, विराट पुरुष, दस विश्वेदेवा, बारह आदित्य, आठवसु, अश्विनीकुमार, यक्ष, साध्य गण, पिशाच, गुह्यक, पितृगण, महर्षि, देवर्षि राजर्षि आदि-आदि उत्पन्न हुए। इस प्रकार संक्षेप में तैंतीस हजार तैंतीस सौ तैंतीस देवताओं की सृष्टि हुई।

अनन्तर कुरु, यदु, भरत, ययाति, इक्ष्वाकु आदि अनेकानेक राज-वंशों की उत्पत्ति हुई।

भगवान व्यासजी वेद-शास्त्र आदि को भली-भाँति जानते थे। महाभारत में उन्होंने सब का सूक्ष्म रूप से और साथ ही विस्तार से भी वर्णन किया है। महाभारत का आरम्भ तीन स्थानों से माना जाता है। कोई 'नारायणं नमस्कृत्य' वाले श्लोक से ग्रंथ का आरम्भ मानते हैं, कोई आस्तीक-पर्व से और कोई-कोई उपरिचर राजा की कथा से। लोक-कल्याण की इच्छा से विद्वानों में श्रेष्ठ भगवान वेदव्यास ने चारों वेदों का सार ग्रहणकर महाभारत की रचना अपने मन में की। फिर सोचा कि इसे किस तरह अपने शिष्यों को पढ़ाऊँ। ऐसी ही चिन्ता के समय ब्रह्माजी उनके सामने प्रकट हुए। व्यासदेव ने उनकी पूजा की और फिर उनसे कहा—"भगवन्! चारों वेद बहुत ही कठिन हैं। वेदों के गूढ़ रहस्य तथा धर्म के तत्वों को समझाने के निमित्त मैंने एक 'काव्य' रचा है। उसमें वेद, वेदांग, उपनिषद् की व्याख्या; इतिहास-पुराणों की कथा; तीनों कालों, अवस्थाओं, सभी लोकों, शास्त्रों, स्थानों, विद्याओं, कलाओं, आचारों, व्यवहारों, रीति-नीतियों, अवतारों का वर्णन; धर्मों, वर्णों, आश्रमों के लक्षण और कर्मों, क्रियाओं आदि के तत्वों

का विवेचन है। उसमें उस ब्रह्म का प्रतिपादन है जो समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। पर मुझे इसका लिखनेवाला कोई नहीं मिलता।

प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी ने कहा—"तुम्हें गूढ़ तत्वों का अनुभव है इस कारण तुम तपस्वियों से भी श्रेष्ठ हो। तुम्हारा 'काव्य' सब से श्रेष्ठ होगा। तुम इसके लिखने के लिए गणेशजी का स्मरण करो। वे संसार भर में सब से शीघ्र लिखनेवाले हैं।"

ब्रह्माजी के विदा होने पर व्यासदेवजी ने गणेश जी का स्मरण किया और उनके प्रकट होने पर उनसे 'काव्य' लिखने की प्रार्थना की। गणेशजी ने इस शर्त पर लिखना स्वीकार किया कि उनकी लेखनी न रुकने पाये। व्यासदेव ने भी उनसे यह शर्त करा ली कि बिना अर्थ समझे वे कोई बात न लिखें। इसी कारण बीच-बीच में व्यासदेव को कुछ कूट श्लोकों की रचना करनी पड़ती थी, जिससे गणेशजी को उन्हें समझने में समय लगे और उतनी देर में वे (व्यासजी) आगे श्लोक रच सकें। इसी कारण व्यासदेव का कथन है कि 'भारत' में आठ हजार ऐसे कूट श्लोक हैं जिनके अर्थों, भावों को या तो मैं जानता हूँ अथवा शुकदेव जी। पर सञ्जय तक के

बारे में यह ठीक से नहीं कहा जा सकता कि वे उनका यथार्थ अर्थ जानते हैं या नहीं।

यह महाभारत अज्ञान को हटाकर ज्ञान की आँखें खोलनेवाला सूर्य है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के तत्वों का विवेचन है। इससे मनुष्य की बुद्धि निर्मल हो जाती है, उसे ज्ञान प्राप्त हो जाता है। महाभारत एक अक्षयवट है। इसका बीज संग्रह-अध्याय है, पौलोम और आस्तीक पर्व जड़ें हैं, सम्भवपर्व फैलाव और सभापर्व आधार है, वनपर्व तना है, विराट तथा उद्योग पर्व मुख्य भाग हैं, भीष्मपर्व शाखाएँ हैं, द्रोणपर्व पत्रों का समूह है, कर्णपर्व फूल और शल्यपर्व उसकी गंध है, स्त्री और ऐषीकपर्व छाया हैं, शान्तिपर्व फल है, अश्वमेध पर्व रस है, आश्रमवासिक पर्व थाल्हा है, मौसलपर्व शाखाओं का अग्रभाग है। जिस प्रकार मेघ के जल से नाना प्रकार के अन्न, धान्य आदि उत्पन्न होते और प्राणियों को तृप्त करते हैं उसी प्रकार इस महाभारत के कथानकों को आधार बनाकर महाकवियों द्वारा रचे गये नाना प्रकार के काव्य-ग्रन्थों से जनता का मनोरंजन होगा।

वेदव्यासजी ने वंश-रक्षा के निमित्त माता की आज्ञा से धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये। उसी कुल के राजा जनमेजय ने सर्पयज्ञ

किया। उसी यज्ञ में राजा जनमेजय तथा ऋषि-मुनियों आदि ने व्यासदेव से महाभारत की कथा सुनाने का आग्रह किया। व्यासदेवजी की आज्ञा से उनके शिष्य वैशम्पायन ने सबको महाभारत की कथा सुनाई। पहले व्यासजी ने कथा-भाग छोड़कर चौबीस हज़ार श्लोकों में महाभारत की रचना की थी। फिर कथा-भाग-सहित पूरा ग्रन्थ एक लाख श्लोकों में पूरा हुआ। इसके अनन्तर १५० श्लोकों में अनुक्रमणिका तैयार की, जिसमें सब पर्वों की कथा का वर्णन संक्षेप में किया गया। इस प्रकार महाभारत रचकर व्यासदेव ने उसे पहले शुकदेवजी को और बाद में अन्य शिष्यों को पढ़ाया। इसके अनन्तर व्यासदेव ने साठ लाख श्लोक की बृहत् महाभारत-संहिता की रचना की। उस संहिता के तीस लाख श्लोक स्वर्ग में हैं; पन्द्रह लाख श्लोक पितृलोक में हैं, चौदह लाख श्लोक गंधर्वलोक में हैं और एक लाख श्लोक मनुष्यलोक में। इस संहिता का प्रचार नारद ने स्वर्गलोक में, असितदेवल ने पितृलोक में, शुकदेव जी ने गंधर्वलोक में किया। जनमेजय के सर्पयज्ञ में वैशम्पायन ने उसी एक लाख श्लोकवाली महाभारत की कथा सब को सुनाई थी। क्रोध-स्वरूप दुर्योधन एक महान वृक्ष है, कर्ण उस वृक्ष

का तना है, शकुनि डालियाँ हैं, दुःशासन उसका फूल-फल है और धृतराष्ट्र उसकी जड़ है। दूसरी ओर धर्म-स्वरूप युधिष्ठिर एक महान वृक्ष है, अर्जुन तना, भीम डालियाँ, नकुल-सहदेव फूल-फल और श्रीकृष्ण, वेद तथा वेद के जाननेवाले ब्राह्मण उसकी जड़ें हैं।

प्राचीन काल में पाण्डु नामक राजा थे। अपने पराक्रम और बुद्धि से उन्होंने अपना राज्य बहुत बढ़ा लिया था। कुछ दिन बाद शिकार के प्रेम के कारण वे अपनी रानियों के साथ वन में ही रहने लगे। एक दिन मृग-रूप धारी एक ऋषि को अपनी मृगी-रूपी पत्नी से मिलते समय धोखे से पाण्डु ने बाण मारा। मरते समय ऋषि ने शाप दिया कि तुमने मेरी इच्छा पूरी न होने दी, इस कारण जब तुम अपनी स्त्री के पास अपनी वासना पूरी करने जाओगे तब मर जाओगे। पाण्डु के कोई सन्तान न थी। वंशनाश होते देख उनकी आज्ञा से उनकी स्त्री कुन्ती ने दुर्वासा ऋषि के बतलाये हुए मन्त्र से धर्म, वायु और इन्द्र नामक देवों को बुलाकर युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन को उत्पन्न किया। फिर अश्विनी-कुमारों का आह्वान करके दूसरी रानी माद्री से नकुल और सहदेव को जन्म दिलाया। इस प्रकार वन में पाण्डु के पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। वन में ही ऋषि-

मुनियों ने उनके सभी संस्कार किये। कुछ दिन बाद पाण्डु स्वर्ग सिधार गये। कुन्ती और पाँचों पाण्डवों को लेकर ऋषि-मुनि धृतराष्ट्र के पुत्रों के पास गये और उन्हें सब बातें बतलाईं। कुछ लोगों ने कहा कि ये पांडु के पुत्र नहीं हैं। उसी समय आकाश-वाणी हुई कि ये पाण्डु के ही पुत्र हैं। आकाश-वाणी को सुनकर सब शान्त हो गये। पांडवों के गुणों ने सब प्रजाजनों को मोह लिया। अद्भुत पराक्रम दिखलाकर अर्जुन ने स्वयंवर में द्रौपदी को जीता। फिर सब राजाओं को जीतकर युधिष्ठिर ने सर्वांगपूर्ण राजसूययज्ञ किया, और सब को यथायोग्य आदर-सत्कार, दान-मान से सन्तुष्टकर बड़ा यश प्राप्त किया।

अनेकानेक देशों से आये हुए राजा लोगों ने महाराज युधिष्ठिर को नाना प्रकार के उत्तम और विचित्र रत्न तथा पदार्थ आदि भेंट में दिये। पाण्डवों के पास इतनी सम्पत्ति हो गई कि उनकी समता करनेवाला कोई न रह गया। यह देख दुर्योधन डाह से जलने लगा। एक दिन वह युधिष्ठिर की सभा में आ रहा था। आते समय मयदानव की अद्भुत कारीगरी के कारण उसे स्थल में जल का और जल में स्थल का धोखा हो गया और इस कारण वह गिरते-गिरते बचा। उसकी यह दशा देख भीम ज़ोर

से ठठाकर हँस पड़े। अपमान से दुर्योधन जल उठा। अपने पुत्र दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिए धृतराष्ट्र ने पाँसों के अन्याय-पूर्ण खेल के द्वारा पाण्डवों को ठगा जाने दिया। फल-स्वरूप अन्त में महाभारत का युद्ध हुआ। पाण्डवों की बराबर जीत सुनकर धृतराष्ट्र ने संजय से कहा कि पाण्डवों की उन्नति और सम्पत्ति देखकर दुर्योधन कुढ़ रहा था, दुःख पा रहा था; इसी कारण मैंने उसे छल करने से नहीं रोका। इसका जो बुरा परिणाम होने वाला था उसे मैं अपनी बुद्धि की आँखों से देख रहा था। किन्तु पुत्र के प्रेम के कारण कुछ कह नहीं सकता था। मैं बराबर जो समझता आ रहा था उसे सुनाता हूँ।

धृतराष्ट्र ने दुःख-भरे शब्दों में संजय से कहा—जब मैंने सुना कि अर्जुन ने अद्भुत कर्म करके कठिन निशाने को वेधा और सब राजाओं के सामने द्रौपदी को जीता तभी मैंने विजय की आशा छोड़ दी थी। मैंने तभी विजय की आशा छोड़ दी थी जब सुना कि अर्जुन ने सुभद्रा को द्वारकापुरी से हरण किया और कृष्ण-बलदेव ने दोनों का विवाह कर दिया। जब अपने बाणों से इन्द्र को हराकर अर्जुन ने खाण्डव वन के दहन से अग्नि को तृप्त किया किया; जब बुद्धिमान विदुर की सहायता से कुन्ती-सहित पाण्डव लाक्षागृह से जीवित बच गये; जब भीम

ने अजेय मगध-पति जरासंध को चीरकर मार डाला; जब सब राजाओं को जीतकर पाण्डवों ने अपूर्व राजसूय यज्ञ किया; जब दुःशासन ने एक-वस्त्रा द्रौपदी को सभा में नंगी करना चाहा पर उसकी लज्जा न गई; जब कपट-पूर्ण जुए में हराये जाकर पाण्डव वन को भेजे गये किन्तु सब भाई मिलकर कष्ट सहते रहे और वन में भी हज़ारों ब्राह्मणों को भोजन से संतुष्ट करते रहे; जब अर्जुन ने किरात-वेशधारी शिव भगवान से युद्धकर पाशुपतास्त्र प्राप्त किया और स्वर्ग में जाकर इन्द्र से शस्त्रास्त्र की शिक्षा ली; जब अर्जुन ने अजेय असुरों को हराया और स्वर्ग की रक्षा की और बाद में गंधर्वों के बंधन से दुर्योधन आदि को छुड़ाया; जब धर्म के प्रश्नों के उचित उत्तर दे युधिष्ठिर ने उन्हें संतुष्ट किया; जब विराटनगर में गुप्त रूप से रहते समय अकेले अर्जुन ने सभी कौरवों को हरा दिया; जब विराटराज की कन्या उत्तरा का विवाह अभिमन्यु से हुआ और धन-जन-हीन, वनवासी पाण्डवों के पास सात अक्षौहिणी सेना एकत्र हो गई और नारायण कृष्ण पाण्डवों के सहायक हुए; जब कृष्ण संधि के निमित्त कौरवों के पास आये और वहाँ उनका अपमान किया गया, उनको बन्दी बनाने का प्रयत्न किया गया और उस समय उन्होंने विराट रूप प्रदर्शित किया; जब द्रोण-

चार्य पाण्डवों को आशीर्वाद देते रहे और भीष्मपितामह सलाह; जब कर्ण ने प्रतिज्ञा की कि जब तक भीष्मपितामह लड़ेंगे तब तक मैं युद्ध में भाग न लूँगा; जब भगवान कृष्ण ने गीता का उपदेश देकर तथा विराट-रूप दिखला-कर अर्जुन का मोह दूर कर दिया; जब अपने मरने का उपाय स्वयं बतलाकर भीष्म शरशैया पर पड़ गये; जब द्रोणाचार्य ने किसी पाण्डव को नहीं मारा और उनके व्यूह को अकेला अभिमन्यु भेदन कर गया और उस अकेले बालक को सात महारथियों ने मारा; जब सबके रहते अर्जुन ने जयद्रथ को मारा; जब धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को मारा और आचार्य के पुत्र, महारथी अश्वत्थामा ने नारायणास्त्र को पाण्डवों के मारने के लिए छोड़ा, पर वह अस्त्र शान्त हो गया; जब भीम ने सब के सामने दुःशासन का रक्तपिया और कर्ण मारा गया; जब महापराक्रमी शल्य को युधिष्ठिर ने और शकुनि को सहदेव ने मारा; जब हारकर दुर्यो-धन तालाब में आ घुसा, पर पाण्डवों के वाग्बाण से व्याकुल होकर वह बाहर निकला और युद्ध में भीम ने उसकी जंघा तोड़ दी; जब अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने द्रौपदी के सोते हुए पुत्रों आदि का वध किया; जब अश्वत्थामा ने उत्तरा के गर्भ

के बालक को नष्ट करने के लिए ब्रह्मास्त्र छोड़ा, पर अर्जुन ने उसे शान्त कर दिया और अश्वत्थामा को बाँधकर उसके माथे की मणि निकाल ली; जब अश्वत्थामा ने उत्तरा के गर्भ को अस्त्र चलाकर नष्ट करना चाहा और कृष्ण-भगवान ने उस गर्भ को फिर से जिला दिया, तभी मैंने जय की आशा छोड़ दी थी, जब मैंने ये बातें सुनी थीं। मैं सबके विनाश को सुनकर जला जा रहा हूँ। आज अट्ठारह अक्षौहिणी में केवल दस मनुष्य बचे हैं, सात पाण्डवों की ओर के और तीन कौरवों की ओर के। यह सब सुनकर मेरा हृदय फटा जा रहा है, मेरी चेतना खोई जा रही है।

विलाप करते हुए धृतराष्ट्र अचेत होकर गिर पड़े। उन्हें चेत में लाकर सञ्जय ने उन्हें अनेकानेक राजाओं आदि के दृष्टांत देकर समझाया और कहा—"आप स्वयं शास्त्रों और इतिहास के ज्ञाता हैं। बड़े-बड़े शूर, वीर, धीर, बली, ज्ञानी, भक्त, गुणी राजा आदि हुए हैं। किन्तु एक-न-एक दिन सभी को काल का ग्रास होना पड़ा है। जो होना होता है वह अवश्य होकर रहता है। हम सब काल के अधीन हैं। काल को कोई भी टाल नहीं सकता। काल सबसे प्रबल है। आप काल की गति का विचारकर बुद्धि को मोह में पड़ने से बचाइये।"

उग्रश्रवा बोले—"सञ्जय ने समझा-बुझाकर धृतराष्ट्र को शांत किया। श्रद्धापूर्वक जो महाभारत का पाठ करता है उसके पाप नष्ट हो जाते हैं और पुण्य बढ़ते हैं। सभी ग्रंथों में महाभारत श्रेष्ठ है। यह संहिता चारों वेदों और वेदांगों से बढ़कर है। इसी कारण इसे महाभारत कहते हैं। इसमें वेदों से अधिक महत्व और भार (सार भाग) है। इसी कारण इसका नाम महाभारत पड़ा। तप, व्रत, अग्निहोत्र, संध्योपासन, पाठ आदि करने से भी पापों से पीछा नहीं छूटता। यथार्थ में भावों के कारण ही पाप से पीछा छूट सकता है। ऐसे ही महाभारत पाठ से पापों से पीछा छूटता है। इस कारण यह वेदों से भी बढ़कर है।

अध्याय २

समन्तपञ्चक की कथा—विषयानुक्रमणिका

ऋषियों के पूछने पर उग्रश्रवा सूत ने समन्तपञ्चक की कथा इस प्रकार बतलाई—त्रेता के अन्त और द्वापर के आरंभ में अपने पिता के मारे जाने से कुपित होकर परशुरामजी ने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया और समन्तपञ्चक में रक्त के पाँच सरोवर बनाकर उनसे पितरों

का तर्पण किया। पितरों ने प्रसन्न होकर वरदान दिया कि तुम क्षत्रियों के संहार के पाप से मुक्त हो जाओगे और यह स्थान पवित्र तीर्थ माना जायगा। इसी समन्तपञ्चक स्थान पर द्वापर के अन्त और कलियुग के आदि में कौरव-पाण्डवों की अट्ठारह अक्षौहिणी सेना अट्ठारह दिन में नष्ट हो गई। एक रथ, एक हाथी, तीन घोड़े और पाँच पैदल सिपाहियों के मिलने से एक "पंक्ति" बनती है। तीन पंक्तियों का एक "सेनामुख;" तीन सेनामुखों का एक "गुल्म"; तीन गुल्मों का एक "गण"; तीन गणों की एक "वाहिनी"; तीन वाहिनियों की एक "पृतना"; तीन पृतनाओं की एक "चमू"; तीन चमुओं की एक "अनीकिनी" और दस अनीकिनिओं की एक "अक्षौहिणी" होती है। एक अक्षौहिणी में सब मिला कर २१८७० रथ, २१८७० हाथी, ६५६१० घोड़े और १०९३५० पैदल होते हैं।

[इसके अनन्तर इस अध्याय में समस्त महाभारत की कथा की विषयानुक्रमणिका दी गई है जो इस पुस्तक के प्रारंभ में दी जा चुकी है।]

अध्याय ३

सरमा का शाप, धौम्य के शिष्यों, उत्तङ्क तथा पौष्य राजा की कथा।

उग्रश्रवा सूत ने कहा—राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय हुए। वे एक बार श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन नामक अपने तीन भाइयों के साथ यज्ञ कर रहे थे। देवताओं की कुतिया सरमा का पुत्र उस यज्ञ में चला गया। जनमेजय के भाइयों ने उसे मारा। इस पर सरमा ने शाप दिया कि 'तुमने मेरे पुत्र को अकारण मारा है इससे तुम चारों भाइयों को अचानक भय प्राप्त होगा।' जनमेजय ने यज्ञ समाप्त किया। फिर वे किसी ऐसे योग्य पुरोहित की खोज में लग गये जो सरमा के शाप से उन्हें मुक्त करा सके। अन्त में सोमश्रवा नामक योग्य और तपस्वी ऋषिकुमार उन्हें मिले। सोमश्रवा श्रुतश्रवा ऋषि और एक साँपिन के पुत्र थे। उनमें यह शक्ति थी कि वे शिवजी के शाप को छोड़कर और सब के शाप को छुड़ा सकते थे। सोमश्रवा की प्रतिज्ञा थी कि जो कोई ब्राह्मण उनसे जो कुछ भी माँगेगा, वे उसे वही वस्तु देंगे। जनमेजय ने उनकी इस प्रतिज्ञा को पूरी करते रहने का वचन देकर उन्हें उनके पिता से माँग लिया और अपना पुरोहित बनाया। इसके अनन्तर जनमेजय ने

तक्षशिला नामक प्रदेश को जीत लिया।

इसी समय अपोद ऋषि के पुत्र धौम्य ऋषि उपमन्यु, आरुणि और वेद नामक तीन शिष्यों को विद्या पढ़ा रहे थे। एक दिन गुरु ने पांचाल देशवासी आरुणि को खेत की मेंड़ बाँधने और पानी को रोकने के लिए भेजा। जब बहुत चेष्टा करने पर भी आरुणि मेंड़ न बाँध सके, तो वे पानी की नाली के मुँह को रोककर लेट गये। पानी बहना बन्द हो गया। इधर बहुत समय तक आरुणि के न लौटने पर धौम्य उन्हें ढूँढ़ने निकले। देखा, आरुणि पानी रोके पड़ा है। शिष्य का साहस तथा प्रयत्न देखकर वे प्रसन्न हो गये। गुरु के प्रसाद से आरुणि को सब वेद, शास्त्र आदि का ज्ञान प्राप्त हो गया। नाली के संसर्ग से उनका नाम उद्दालक पड़ गया।

दूसरे शिष्य उपमन्यु को गुरु ने गायों को चराने और उन्हें सँभालने का भार दिया था। एक दिन उपमन्यु को मोटा-ताज़ा देख, गुरु ने पूछा कि तुम क्या खाते हो? उपमन्यु ने कहा कि मैं भिक्षा मांगकर खाता हूँ। गुरु ने कहा कि बिना मुझे अर्पण किये तुम्हें भिक्षा खाना उचित नहीं है। उस दिन से रोज़ उपमन्यु भिक्षा माँग कर लाते और उस सब भिक्षा को गुरु अपने पास रख लेते। कुछ दिन बाद गुरु ने फिर पूछा कि उपमन्यु सब भिक्षा

तो मैं रखा लेता हूँ तुम खाते क्या हो ? उपमन्यु ने कहा कि मैं दूसरी बार भिक्षा माँग लेता हूँ। गुरु ने कहा कि दूसरी बार भिक्षा माँगना उचित नहीं है। कुछ दिन बाद गुरु ने उपमन्यु को फिर वैसा ही तगड़ा देखकर उनसे फिर पूछा—तुम क्या खाते हो ? उपमन्यु ने कहा कि मैं गायों का दूध पी लेता हूँ। गुरु ने कहा कि बिना मुझसे पूछे मेरी गायों का दूध पीना उचित नहीं है। कुछ दिन बाद उपमन्यु को मोटा-ताजा देखकर गुरु ने फिर पूछा कि अब तुम क्या खाते हो ? उपमन्यु ने कहा कि मैं बछड़ों के मुँह से गिरे हुए दूध के फेन को पीता हूँ। गुरु ने कहा कि बछड़े बड़े दयालु होते हैं, वे बहुत से फेन को उगल देते होंगे और खुद भूखे रह जाते होंगे, इस कारण उनके उगले हुए फेन का पीना उचित नहीं है। उस दिन से उपमन्यु ने फेन पीना भी बन्द कर दिया और वे मदार के पत्ते खाकर गायों की रखवाली करने लगे। मदार के पत्तों के खाने से उनकी आँखों की ज्योति जाती रही। एक दिन वे गाय चराते समय एक कुएँ में गिर गये। इधर जब उपमन्यु न लौटे तो गुरुजी अपने अन्य शिष्यों को लेकर उन्हें ढूँढ़ने निकले और खोजते-खोजते उस कुए पर जा पहुँचे। पूछने पर उपमन्यु ने सब हाल बतलाया। गुरु ने अश्विनीकुमारों की

अराधना करने का आदेश दिया। उपमन्यु ने आराधना की। अश्विनी-कुमारों ने प्रकट होकर उपमन्यु से कहा कि तुम इस मीठे पुए को खा लो। उपमन्यु ने बिना गुरु को अर्पण किये कुछ भी खाना स्वीकार न किया। अश्विनी-कुमारों ने कहा कि तुम्हारे गुरु ने पहले हमारी आराधना की थी और ऐसे ही पुए को बिना अपने गुरु को अर्पण किये ही उन्होंने खा लिया था। तुम भी खा लो। पर उपमन्यु राज़ी न हुए। इस प्रकार की निष्कपट गुरुभक्ति से प्रसन्न होकर अश्विनीकुमारों ने उपमन्यु के नेत्र अच्छे कर दिये और कहा कि तुम्हारे गुरु के दाँत लोहे के हैं, पर तुम्हारे दाँत सोने के होंगे। अश्विनीकुमारों के अन्तर्धान होने पर उपमन्यु अपने गुरु के पास गये और उनसे सब हाल बतलाया। गुरु ने उनकी गुरुभक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें सब वेदशास्त्र आदि का ज्ञान करा दिया। धौम्य के तीसरे शिष्य वेद ने भी निष्कपट गुरुभक्ति और कठिन सेवा से गुरु को प्रसन्न कर सब वेद-शास्त्र का तत्त्व प्राप्त किया।

गुरु की आज्ञा पाकर वेद ने गृहआश्रम में प्रवेश किया और वे भी तीन शिष्यों को पढ़ाने लगे। गुरुकुल की कठिन सेवा के कष्ट उन्हें भूले न थे, इसी कारण वे अपने शिष्यों से कठिन सेवा नहीं लेते थे। एक बार

राजा जनमेजय और राजा पौष्य ने आकर उनसे पुरोहित होने की प्रार्थना की। जब वेद यज्ञ कराने के लिए जाने लगे तो वे अपने शिष्य उत्तङ्क को अपने घर की देखभाल का भार सौंप गये। कुछ समय बाद ऋषिपत्नियों ने आकर उत्तङ्क से कहा कि तुम्हारे गुरु की पत्नी ने ऋतुस्नान किया है। गुरु घर पर नहीं हैं। उन्होंने तुम्हारे ऊपर सब भार सौंपा है। तुम गुरु-पत्नी के ऋतु-स्नान को सफल बनाओ। पर उत्तङ्क इस अकार्य को करने के लिए तैयार न हुए। लौटने पर जब वेद को यह सब हाल विदित हुआ तो वे उत्तङ्क पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने सब वेद-शास्त्र का तत्व प्रदान कर उत्तङ्क को घर जाने की आज्ञा दी। उत्तङ्क ने गुरु-दक्षिणा माँगने के लिए गुरु से कहा। गुरु ने उन्हें अपनी पत्नी के पास भेजा। गुरुपत्नी ने उत्तङ्क से कहा कि तुम राजा पौष्य की रानी के कानों के कुण्डल लाकर दो, तो तुम्हारा कल्याण होगा। मैं आज से चौथे दिन उन्हें पहिनकर ब्राह्मणों को भोजन परोसना चाहती हूँ। चौथे दिन कुण्डल लेकर न आओगे तो तुम्हारा कल्याण न होगा।

उत्तङ्क कुण्डल लेने चल खड़े हुए। रास्ते में उन्हें बैल पर बैठा हुआ एक पुरुष मिला, जिसके कहने से उन्होंने उस

बैल के गोबर और मूत्र को चीखा। फिर वे राजा पौष्य के पास पहुँचे। राजा ने उनकी बातें सुनकर उन्हें अपनी रानी के पास रनिवास में भेजा। पर वहाँ उत्तङ्क को रानी न देख पड़ीं। जब पौष्य को यह मालूम हुआ तो उन्होंने कहा कि आप अपवित्र हैं इसी कारण पतिव्रता रानी आपको नहीं देख पड़ीं। उत्तङ्क ने गोबर चीखकर जल्दी हाथ-मुँह धोने की बात बतलाई। राजा ने कहा कि जल्दी में सफाई नहीं हो सकती। तब उत्तङ्क शुद्ध होकर रनिवास में गये और रानी को देखा। रानी ने उनका उचित सत्कार किया और सब बातें सुनकर अपने कुण्डल उतारकर उन्हें दे दिये। उत्तङ्क प्रसन्न होकर विदा हुए। रानी ने उन्हें सावधान कर दिया कि नागराज तक्षक उन कुण्डलों को लेने के प्रयत्न में लगा रहता है। उत्तङ्क के बाहर आने पर राजा पौष्य ने सत्पात्र ब्राह्मण समझकर उनसे श्राद्ध में भोजन करने का आग्रह किया। उत्तङ्क ने जल्दी के कारण जो भी भोजन तैयार था उसे माँगा। भोजन आया। उत्तङ्क ने देखा कि वह ठण्ढा है और उसमें बाल पड़े हुए हैं। उन्होंने राजा को शाप दिया कि तुम अंधे हो जाओ। राजा ने भी उत्तङ्क को शाप दिया कि तुमने व्यर्थ में अन्न को दूषित बतलाया और मुझे शाप दिया, इस कारण तुम्हारे कोई सन्तान न

होगी। बाद में राजा ने देखा कि भोजन अपवित्र और ठण्ढा था। तब उसने विनय करके उत्तङ्क से क्षमा चाही। उत्तङ्क ने कहा कि तुम पहले अंधे तो हो जाओगे, पर फिर अच्छे भी हो जाओगे। अब तुम अपने शाप को भी दूर कर दो। राजा पौष्य ने कहा कि मैं क्षत्रिय हूँ। मेरा मन तेज छूरे के समान है, पर मेरा वचन मक्खन के समान कोमल है। तुम ब्राह्मण हो। तुम्हारा मन मक्खन के समान कोमल है, पर तुम्हारी वाणी छूरे के समान तीक्ष्ण है। मेरा क्रोध शान्त नहीं हुआ है। मैं अपने शाप से तुम्हें मुक्त न करूँगा। उत्तङ्क ने कहा कि तुमने मुझे दूषित अन्न दिया, फिर शाप दिया, फिर छल करके शाप से मुक्ति भी प्राप्त कर ली, पर अपने शाप से मुझे मुक्त नहीं करना चाहते, इस कारण तुम्हारा शाप मुझे न लगेगा। यह कह वे कुण्डल लेकर वहाँ से चल दिये। रास्ते में उन्होंने देखा कि एक पाखण्डी वेश बनाये, छिपे-छिपे, उनका पीछा कर रहा है। यात्रा के बीच में स्नान संध्या का समय देख वे एक तालाब के किनारे कुण्डल आदि को रखकर स्नान संध्या करने लगे। मौक़ा देखकर वह पाखण्डी कुण्डल लेकर भाग गया। संध्यावन्दन से जल्दी-जल्दी छुट्टी पाकर उत्तङ्क उसके पीछे दौड़े और कुछ देर में उन्होंने उसे पकड़ लिया। उत्तङ्क के हाथ लगाते ही

वह व्यक्ति बदलकर तक्षक नाग के रूप में प्रकट हुआ फिर उसी स्थान की पृथ्वी को फाड़कर उसने रास्ता बनाया और उसीसे नागलोक को चला गया। उत्तङ्क रानी की बात याद करके उस बिल को खोदने लगे। इधर उनका साहस देख इन्द्र ने अपने वज्र को उत्तङ्क की सहायता के लिए भेजा। देखते-देखते बिल बड़ा हो गया। उसमें होकर उत्तङ्क वैभवशाली नागलोक में जा पहुँचे और नागों की स्तुति करने लगे। पर उससे उनका कुछ काम न बना। इसी समय उन्होंने देखा कि दो स्त्रियाँ काले सफ़ेद डोरों से एक वस्त्र बुन रही हैं, छः कुमार बारह आरेवाले चक्र को घुमा रहे हैं, और एक सुन्दर घोड़ा और एक अपूर्व पुरुष पास में खड़े हैं। उत्तङ्क ने स्तुति करके उन्हें प्रसन्न कर लिया और उस पुरुष के पूछने पर सब बातें बतलाईं। तब उस पुरुष ने उत्तङ्क से कहा कि तुम इस घोड़े को फूँको। घोड़े को फूँकने पर उसके शरीर से भयंकर अग्नि निकलने लगी, जिससे सारा नागलोक जलने लगा। तब तक्षक नाग ने व्याकुल होकर कुण्डल उत्तङ्क को लौटा दिये। नागलोक जलने से बच गया। कुण्डल पाकर उत्तङ्क को शीघ्र अपने गुरु के स्थान पर पहुँचने की चिन्ता ने आ घेरा, क्योंकि वह वहाँ पहुँचने का अन्तिम दिन था। उनको चिन्तित देख

उस दिव्य पुरुष ने उन्हें उस घोड़े पर चढ़ाकर बातकी बात में उनके गुरु के स्थान पर पहुँचा दिया। उत्तङ्क ने जाकर कुण्डल गुरुपत्नी को देदिये। गुरुपत्नी ने कहा कि यदि तुम थोड़ी देर और न आते, तो मैं तुम्हें शाप दे देती। अब जाओ, सब प्रकार तुम्हारा कल्याण होगा।

आशीर्वाद पाकर उत्तङ्क गुरु के पास गये, उन्हें सब हाल बतलाया तथा उनसे उस दिव्य पुरुष का भेद पूछा। गुरु ने कहा कि जो पुरुष तुम्हें रास्ते में बैल पर बैठा मिला था वे इन्द्र थे, उनका बैल ऐरावत हाथी था, उसका मलमूत्र अमृत था, जिसके खाने से तुम नागलोक से जीवित लौट सके। वे बुननेवाली दोनों स्त्रियाँ धाताविधाता थीं, छः कुमार छः ऋतुएँ थीं, बारह आरावाला चक्र बारह महीनों वाला संवत्सर था, नागलोक का पुरुष पर्जन्यदेव थे और उनका घोड़ा अग्निदेव थे। इन्द्र मेरे मित्र हैं। इस कारण दया करके उन्होंने तुम्हारी सहायता की है। अब तुम अपने घर जाओ। सब तरह से तुम्हारा कल्याण होगा।

गुरु से आशीर्वाद पाकर उत्तङ्क हस्तिनापुर गये वे तक्षक नाग से बदला लेना चाहते थे। उस . . . राजा जनमेजय तक्षशिला को जीतकर लौटे थे। . . . ने उत्तङ्क का बड़ा आदरसत्कार किया। आशी

देकर उत्तङ्क ने जनमेजय से कहा कि आपको जो करना चाहिए उसे न कर आप व्यर्थ के कामों में लगे हुए हैं। आपके पिता राजा परीक्षित को तक्षकनाग ने बिना अपराध डस कर मारा था। राजा परीक्षित को शाप से मुक्त करने के लिए कश्यप ऋषि आरहे थे। धूर्त तक्षक ने उन्हें रास्ते से लौटा दिया और फिर बिना अपराध आपके पिता को डसकर मार डाला। कुण्डलों को चुराकर मुझे भी उसने व्यर्थ में कष्ट दिया है। आप सर्प-यज्ञ का अनुष्ठान करके जलती आग में उस पापी तक्षक को भस्म करके अपने पिता का बदला लीजिये। राजा जनमेजय को बड़ा क्रोध हो आया। अपने मंत्रियों से उन्होंने अपने पिता के मरने का वृत्तान्त पूछा पिता के मरने की सब बातें सुनकर वे अधीर हो उठे।

पौलोम पर्व

अध्याय ४

उग्रश्रवा और शौनक-संवाद—कथा का प्रारम्भ

उग्रश्रवा सूत ने नैमिषारण्यवासी मुनियों से कहा—मैंने उत्तङ्क की कथा सुनाई। अब कौन-सी कथा कहूँ।

मुनियों ने कहा—अभी हमारे पूज्य कुलपति शौनक जी हवन कर रहे हैं। उनके आने पर आप कथा का आरंभ करें।

नित्यकर्म कर शौनकजी मण्डप में सब मुनियों के बीच में पधारे और सूतजी से वार्तालाप करने लगे।

अध्याय ५

भृगुवंश का वर्णन—पुलोमा का उपाख्यान

शौनकजी बोले—हे सूतजी, आप पहले भृगुवंश का वर्णन सुनाइये।

सूतजी बोले—वरुण के यज्ञ में अग्नि-द्वारा ब्रह्मा जी से भृगु ऋषि उत्पन्न हुए। भृगु के च्यवन हुए। च्यवन के प्रमति हुए। प्रमति ने घृताची अप्सरा में रुरु को उत्पन्न किया। रुरु ने प्रमद्वरा अप्सरा में परम तपस्वी, वेदों के ज्ञाता आपके पितामह महर्षि शुनक को उत्पन्न किया।

भृगु महर्षि की पत्नी का नाम पुलोमा था। भृगुजी से उसके गर्भ रहा। उसी बीच में एक दिन जब भृगु जी नदी में स्नान करने गये तब कुटी में ऋषि-पत्नी को अकेली देख पुलोमा नाम राक्षस आया। उस राक्षस ने

पहले पुलोमा कन्या को उस (कन्या) के पिता से अपने लिए माँगा था, पर कन्या के पिता ने अपनी कन्या का भृगु के साथ विवाह कर दिया था। इससे राक्षस शत्रुता मानने लगा था। भृगुजी को आश्रम में न देख वह उनकी पत्नी को हर ले जाना चाहता था। राक्षस ने अग्नि-होत्र के अग्नि-देव से कहा कि मैंने इस स्त्री को पहले माँगा था, बाद में भृगु ने इसे अन्याय से प्राप्त किया है। अब तुम बतलाओ कि यह किसकी स्त्री है। अग्नि-देव ने कहा कि जब इसका विवाह विधिपूर्वक भृगुजी से हुआ है तब यह भृगु जी की ही स्त्री है। झूठ बोलने से पाप होता है इस कारण मैं झूठ न बोलूँगा।

अध्याय ६

च्यवन की उत्पत्ति—अग्नि को शाप

सूतजी बोले—राक्षस ऋषि-पत्नी को हरकर भागा। उसी समय भृगु-पत्नी के गर्भ से बालक निकल पड़ा। चू जाने के कारण उसका नाम च्यवन पड़ा। बालक के जन्म लेते ही वह राक्षस भस्म हो गया। भृगु-पत्नी बालक को लेकर अपने आश्रम की ओर रोती हुई चली और उसके आँसुओं से प्रकट होकर वधूसरा

नामक नदी उसके पीछे-पीछे चली। बीच में ब्रह्माजी ने प्रकट होकर भृगु-पत्नी को धीरज बँधाया। उसी समय भृगुजी स्नान-संध्या करके लौटे। उनकी पत्नी ने उनसे सारा हाल बतलाया। अग्निदेव ने राक्षस से बतलाया था कि पुलोमा भृगु की पत्नी है, इस कारण भृगु जी ने अग्नि-देव को शाप दिया कि तुम सर्वभक्षी—सब कुछ खानेवाले—हो जाओ।

अध्याय ७

अग्नि का कोप—ब्रह्मा का समझाना

सूतजी बोले—भृगु का शाप सुनकर अग्नि-देव ने कुपित होकर कहा कि पूछने पर जो साक्षी सच नहीं कहता अथवा चुप रहता है उसकी आगे और पीछे की सात-सात पीढ़ियाँ नरक में गिरती हैं। मैंने पूछने पर सत्य बात कही थी। तुमने मुझे व्यर्थ शाप दिया। मैं देवताओं और पितरों का मुख हूँ। मुझमें जो आहुतियाँ डाली जाती हैं उन्हीं से देवता और पितर तृप्त होते हैं। मैं सर्व-भक्षी कैसे हो सकता हूँ? यह कहकर अग्निदेव ने यज्ञ-कर्म से अपने को अलग कर लिया। नित्य-कर्म, यज्ञ आदि बन्द हो गये। कर्मकाण्ड का लोप हो गया।

देवताओं और पितरों को कष्ट होने लगा। घोर सङ्कट उपस्थित हो गया। तब सब ने जाकर सारा वृत्तान्त ब्रह्माजी को सुनाया। ब्रह्माजी ने अग्नि को समझाया कि तुम्हीं तीनों लोकों को धारण किए हुए हो। तुम सब के स्वामी हो। तुम्हीं सब की गति हो। तुम्हारी ज्वालाओं से जले हुए पदार्थ पवित्र समझे जायँगे। तुम्हारी अपान देश की ज्वालाएँ और मांस-भक्षी अंश ही सर्व-भक्षी होंगे। तुम सदा पवित्र हो। अग्नि ने प्रसन्न होकर भृगुजी के शाप को सत्य किया और फिर से वे देवताओं और पितरों के मुख बनकर हवन की सामग्री ग्रहण करने लगे।

अध्याय ८

रुरु और मेनका की कन्या प्रमद्वरा की कथा

सूतजी बोले—च्यवन महर्षि ने सुकन्या से परम तेजस्वी रुरु महर्षि को उत्पन्न किया। पूर्व समय में गंधर्वराज विश्वावसु के वीर्य से मेनका अप्सरा के गर्भ रहा और उससे प्रमद्वरा नामक कन्या उत्पन्न हुई। मेनका उस कन्या को जन्मते ही स्थूल-केश नामक ऋषि के आश्रम के पास छोड़ गई। ऋषि ने कन्या

को पाल कर बड़ा किया। एक बार रुरु ऋषि ने प्रमद्वरा को देखा और वे उस पर मोहित हो गये। सब हाल जानकर महर्षि स्थूल-केश ने दोनों के विवाह की स्वीकृति दे दी। किन्तु विवाह के पूर्व ही वन में एक साँप के काटने से प्रमद्वरा मर गई। रुरु आदि उसे घेरकर रोने लगे।

अध्याय ६

रुरु का आधी आयु देकर प्रमद्वरा को जिलाना

सूतजी बोले—प्रमद्वरा के लिए रुरु ज़ोर-ज़ोर से विलाप करने लगे। उन्हें विकल देख एक देवदूत और गंधर्वराज विश्वावसु वहाँ आ पहुँचे और रुरु से बोले—यदि तुम अपनी आधी आयु इसे दे दो, तो यह फिर जीवित हो जाय। रुरु राज़ी हो गये। गंधर्वराज ने यमराज को रुरु की आधी आयु देकर प्रमद्वरा जीवित कर देने के लिए प्रसन्न कर लिया। उनकी कृपा से प्रमद्वरा फिर से जी उठी। यथा समय दोनों का विवाह हो गया। दोनों सुखपूर्वक विहार करने लगे। रुरु को सर्पों से द्वेष हो गया। वे जहाँ पाते, वहीं डण्डे से सर्प को तुरन्त मार डालते। एक बार उन्हें वन में डुण्डुभ (पनिहा) सर्प

मिला। वे उसे मारने दौड़े। उस सर्प ने उनसे कहा कि मैंने कोई अपराध नहीं किया, फिर तुम मुझे व्यर्थ में क्यों मार डालना चाहते हो?

अध्याय १०, ११, १२

रुरु और डुण्डुभ

रुरु ने कहा कि मेरी प्राण-प्यारी स्त्री को एक सर्प ने डसा था, तब से मैंने सर्पों को मारने की प्रतिज्ञा कर ली है।

डुण्डुभ बोला—हम मनुष्यों को नहीं काटते। दूसरों के अपराध के लिए हमें मारना उचित नहीं है। आप धर्म के तत्त्व को जानते हैं। मैं पहले सहस्रपाद नामक ऋषि था। ब्राह्मण के शाप से इस योनि को प्राप्त हुआ हूँ। खगम नामक परम तपस्वी ऋषि मेरे मित्र थे। एक बार वे अग्निहोत्र कर रहे थे। मैंने तृण का एक साँप बनाकर उन्हें डराया। वे डरकर बेहोश हो गये। होश में आने पर उन्होंने मुझे सर्प होने का शाप दिया। बाद में कहने पर उन्होंने कहा कि भृगुवंशी रुरु ऋषि के दर्शन से इस

शाप का अन्त होगा। यह कह वह सर्प परम तेजस्वी ऋषि हो गया और बोला—रुरु! तुम ब्राह्मण हो। सब से बड़ा धर्म अहिंसा है। ब्राह्मण को शुद्ध, सरल होना चाहिए। वेदवेदांग जानना, सत्य बोलना, अहिंसा व्रत लेना और प्राणियों का हित करना ब्राह्मणों का परम कर्तव्य है। दण्ड देना क्षत्रिय का धर्म है। यह तुम्हें शोभा नहीं देता। पूर्व समय में राजा जनमेजय ने नागयज्ञ द्वारा सर्पों का नाश किया था। उस समय तपस्वी आस्तीक ऋषि ने सर्पों की रक्षा की थी।

रुरु ने नाग-यज्ञ की कथा सुननी चाही। पर डुण्डुभ यह कहकर अन्तर्धान हो गये कि तुम अपने पिता के पास जाओ और उनसे नाग-यज्ञ की कथा पूछो।

अध्याय १३-१४

जगत्कारु का पूर्व पुरुषों के उद्धारार्थ जगत्कारु से विवाह

शौनक जी के पूछने पर सूत बोले—पूर्व समय में जरत्कारु नामक एक परम तपस्वी, संयमी, ब्रह्मचारी, तत्वज्ञाता ऋषि थे। वे तीर्थयात्रा करते हुए विचरण करते रहते थे। जहाँ संध्या हो जाती वहीं वे रुक जाते। उनका तेज अग्नि के समान दहकता था। एक बार वे एक ऐसे स्थान

पर जा पहुँचे, जहाँ एक गड्ढे में कुछ मनुष्य लटके हुए थे। उनके सर नीचे को थे और पैर ऊपर को। जिनकी के जिन पेड़ों का वे सहारा लिये थे उनकी जड़ें चूहे काट रहे थे। जरत्कारु के पूछने पर उन लोगों ने कहा कि हम यायावर नामक ऋषि हैं। हमारे वंश के आगे चलने की आशा नहीं है, इसीसे हम इस अधोगति को प्राप्त हो रहे हैं। हमारे वंश में केवल एक जरत्कारु नामक ऋषि बचा है। वह मूर्ख तपस्या में लगा है। यदि वह विवाह करके पुत्र उत्पन्न न करेगा तो हम नीचे गिर जायँगे। तपस्या करने से मनुष्य को वह गति नहीं मिली, जो उसे पुत्र उत्पन्न करने से मिलती है। अपने पूर्व पुरुषों से इस प्रकार की बातें सुन कर जरत्कारु ने कहा कि मैं आपकी आज्ञा से विवाह करके पुत्र उत्पन्न करूँगा। किन्तु तभी जब मेरे ही नाम की कन्या मिले और उसके पिता-भाई, आदि बिना माँगे उसे मुझे भिक्षा में दे दें। उसी से पुत्र उत्पन्न करके मैं आपको अधोगति से उबारूँगा।

सूत जी बोले—इस प्रकार प्रतिज्ञाकर ऋषि जरत्कारु फिर पर्यटन करने लगे। एक बार एक वन में उन्होंने तीन बार बहुत ही धीमे स्वर में कन्या की भिक्षा माँगी। वासुकि नाग ने उसी समय वहाँ अपनी बहन को ले जाकर ऋषि को दिया।

उसका भी नाम जगत्कारु था। ऋषि ने हारकर विवाह कर लिया।

अध्याय १५

आस्तीक का जन्म

सूतजी बोले—पूर्व काल में सर्पों को उनकी माता ने जनमेजय के यज्ञ में जलने का शाप दिया था। उसी शाप की शान्ति के लिए नागराज वासुकि ने अपनी बहन जगत्कारु का विवाह जगत्कारु नामक ऋषि के साथ कर दिया। ऋषि जगत्कारु के महातपस्वी आस्तीक नामक बालक का जन्म हुआ। आस्तीक ऋषि ने जनमेजय के यज्ञ में सर्पों की रक्षा की। इधर ऋषि जगत्कारु सभी ऋणों से मुक्त होकर अपने पूर्व-पुरुषों के साथ स्वर्ग को चले गये।

अध्याय १६, १७

कद्रू-विनता; नागों और गरुड़ का जन्म

शौनकजी ने कहा—सूत जी, आस्तीक ऋषि की कथा विस्तार से कहिये। सूतजी बोले—सतयुग में प्रजापति ने कद्रू-विनता नामक अपनी दो कन्याओं

का विवाह कश्यपजी से कर दिया। कद्रू ने कश्यप जी से नाग-स्वरूप हज़ार पुत्र माँगे। विनता ने ऐसे दो पुत्र माँगे जो कद्रू के हज़ार पुत्रों से बल-विक्रम में श्रेष्ठ हों। कुछ समय बाद कश्यपजी के प्रसाद से विनता के दो और कद्रू के हज़ार अंडे उत्पन्न हुए। सब अंडे अलग-अलग पात्रों में रक्खे गये। पाँच सौ वर्ष बाद कद्रू के हज़ार अंडों से हज़ार तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए। किन्तु विनता के अंडे न फूटे। तब विनता ने डाह और लज्जा से एक अंडा फोड़ डाला। उसमें से एक बालक निकला, जिसका ऊपर का हिस्सा तो पुष्ट हो गया था, पर नीचे का हिस्सा कच्चा था। बालक ने शाप दिया कि तुमने जल्दी में मेरा शरीर कच्चा रहने दिया, इस कारण पांच सौ वर्ष तक तुम्हें कद्रू की दासी बनकर रहना पड़ेगा। पर अब दूसरा अंडा न फोड़ना। इसी में का बालक तुम्हें दासता से छुड़ावेगा। यह कह वह बालक चला गया और अरुण नाम से सूर्य का सारथी हुआ। पांच सौ वर्ष बाद दूसरे अंडे में से महातेजस्वी गरुड़ उत्पन्न हुआ।

इसी समय कद्रू और विनता ने आकाश में जाते हुए, उच्चैःश्रवा नामक इन्द्र के परम सुन्दर घोड़े को देखा, जो समुद्र-मंथन से निकला था। शौनकजी ने उच्चैःश्रवा

के निकलने और समुद्र-मंथन की कथा पूछी। सूतजी बोले—सुमेरु नामक स्वर्ण के शिखरों का एक बहुत बड़ा पर्वत है। सब देवता और गंधर्व उसी पर रहते हैं। देव-योनि के सिवा वहाँ और कोई नहीं जा सकता। एक बार उसी पर्वत के शिखर पर बैठकर देवताओं ने अमृत पीने का विचार किया। उन्हें सोच में पड़ा देख नारायण भगवान ने कहा कि सब देव-दानव मिलकर समुद्र मथें। उसी से अमृत, रत्न और औषधियाँ प्राप्त होंगी।

अध्याय १८

समुद्र-मंथन से अमृत आदि का निकलना

सूतजी बोले—नारायण के कहने से सब देवता मथानी बनाने के लिए मंदराचल को उखाड़ने लगे। किन्तु उखाड़ न सके। तब ब्रह्मा और नारायण के कहने से नागराज अनन्त ने उसे उखाड़ लिया और देवताओं के साथ उसे समुद्र के तीर ले गये। अमृत का एक भाग पाने का वचन लेकर समुद्र अपने को मथाने के लिए राज़ी हो गया। सब की प्रार्थना पर कच्छपजी ने मंदराचल को अपनी पीठ पर सँभाला। वासुकि नाग को रस्सी की जगह लपेटकर सब देवता और

दानव समुद्र मथने को तैयार हुए। देवताओं ने वासुकि की पूँछ की ओर का भाग पकड़ा और दानवों ने मुँह की ओर का। बड़े परिश्रम से मथे जाने के बाद पहले चन्द्रमा, फिर क्रमशः लक्ष्मी, सुरादेवी, उच्चैःश्रवा घोड़ा, कौस्तुभ-मणि, कामधेनु, कल्पवृक्ष, अप्सराएँ आदि प्रकट हुईं। इसके अनन्तर कमण्डलु-कलश में अमृत लिए धन्वन्तरि भगवान् प्रकट हुए। अमृत को देख सब दानव कोलाहल करने लगे। फिर चार दाँतोंवाला श्वेत ऐरावत गज निकला। फिर कालकूट-विष निकला, जिसकी ज्वाला से संसार के प्राणी जलने लगे। सब की रक्षा के लिए, सब की प्रार्थना सुनकर शिवजी ने उस विष को अपने गले में धारण किया। तभी से शिवजी नीलकण्ठ कहलाये। इसी बीच में दानव अमृत का कलश उठा ले गये। देवगण को दुखी देख नारायण जी ने मोहिनी-रूप धारणकर दानवों को मोहित कर लिया और कौशल से उनसे अमृत का कलश ले लिया।

अध्याय १६

देवताओं का अमृत पीना; देवासुर-संग्राम

सूतजी बोले—दानवों से अमृत लेकर मोहिनी-रूपधारी नारायण, नरदेव के साथ वहाँ से देवताओं की

ओर चले। दानवगण अस्त्र-शस्त्र लेकर उनके पीछे दौड़े। नारायण ने लाकर अमृत देवताओं को पिला दिया। राहु दानव देवताओं का रूप बनाकर उनकी मंडली में मिल गया और धोखा देकर उसने अमृत लेकर पी लिया। जगत के कल्याण के विचार से चन्द्रमा और सूर्य ने राहु का दानव होना प्रकट कर दिया। राहु के गले तक अमृत गया ही था कि नारायण ने चक्र से उसका सर काट डाला, पर अमृत को पीने के कारण सर के अलग हो जाने पर भी वह मरा नहीं। वह सूर्य-चन्द्र से वैर मानकर समय-समय पर उनको ग्रसने के लिए दौड़ता है।

देवगण के अमृत पी लेने पर नारायण ने मोहनी रूप छोड़कर अस्त्र-शस्त्र सँभाले। डटकर वे दैत्यों को काटने लगे। दोनों ओर से मार-काट मच गई। बड़ा भीषण युद्ध हुआ। अन्त में दैत्यगण हारकर पृथ्वी के नीचे और खारे समुद्र के भीतर भाग गये। देवगण ने अमृत और विजय प्राप्तकर मंदराचल को यथा स्थान रख दिया और अमृत के कलश को नरदेव के पास रक्षा के लिये धरोहर की तरह रखकर वे अपने-अपने लोकों को चले गये।

अध्याय २०

कद्रू और विनता की बाज़ी

सूतजी बोले—समुद्र-मंथन से निकले हुए उसी उच्चैःश्रवा घोड़े को देखकर कद्रू ने विनता से उसका रंग पूछा। विनता ने उसका रंग सफ़ेद बतलाया। कद्रू ने कहा कि उसकी पूँछ के बाल काले हैं। मैं बाज़ी लगाती हूँ, जो हारे वह दूसरे की दासी होकर रहे। इस प्रकार बाज़ी लगा और दूसरे दिन सवेरे उसके निर्णय की बात सोचकर वे अपने स्थान को चली गईं। कद्रू कपट करके विनता को अपनी दासी बनाना चाहती थी। उसने अपने सर्प-बेटों से कहा कि तुम घोड़े की पूँछ में लिपट जाना, जिसमें मुझे दासी न होना पड़े। सर्प उसकी बात पर राज़ी न हुए। तब क्रोधकर कद्रू ने शाप दिया कि तुम्हें जनमेजय के यज्ञ में भस्म होना पड़ेगा। इधर देवगण और ब्रह्माजी ने इस शाप को अनुचित नहीं समझा। वे जीवों के नाश करनेवाले क्रूर सर्पों का नाश ही चाहते थे। ब्रह्माजी ने कश्यप जी को बुलाकर समझा दिया कि शाप से जगत् का हित ही होगा। फिर उन्होंने कश्यप जी को विष दूर करनेवाली विद्या बतला दी।

अध्याय २१

कद्रू और विनता समुद्र पर

सूतजी बोले—दूसरे दिन सबेरे कद्रू और विनता नज़दीक से उच्चैःश्रवा घोड़े को देखने के लिए चलीं। रास्ते में उन्होंने अथाह, अपार समुद्र को पार किया। जान पड़ता था, मानो भीषण लहर रूपी अपने हाथों को मटका-मटका कर समुद्र नाच रहा है। चन्द्रमा के घटने-बढ़ने से समुद्र में जब ज्वार-भाटा आता है तब विचित्र दृश्य देख पड़ता है। अभिसारिकाओं की तरह सैकड़ों नदियाँ इसी समुद्र में आकर मिलती हैं।

अध्याय २२

सर्पों का उच्चैःश्रवा की पूँछ में लिपटना

सूतजी बोले—इधर शाप से डरकर सर्प अपनी माता की आज्ञा के अनुसार कार्य करने के लिए तैयार हो गये। कद्रू-विनता के पहुँचने के पहले ही वे उच्चैःश्रवा की पूँछ में जाकर लग गये। कद्रू और विनता भी समुद्र की शोभा निरखती हुईं वहाँ जा पहुँचीं।

अध्याय २३

देवताओं का गरुड़ जी की स्तुति करना

सूतजी बोले—कद्रू-विनता ने देखा कि घोड़े का रंग चन्द्रमा के समान सफेद है, केवल पूँछ के बाल काले । तब हारकर विनता को कद्रू की दासी बनना पड़ा।

इधर विनता के दूसरे अण्डे से महातेजस्वी, सब स्थानों पर जा सकने वाले, अत्यन्त पराक्रमी गरुड़जी उत्पन्न हुए और आकाश में जाकर घोर शब्द करने लगे। उनके शब्द को सुनकर और उनके दहकते हुए प्रकाशमान तेज को देखकर देवगण डर गये और उन्हें अग्नि समझने लगे। तब अग्नि-देव ने देवों से बतलाया कि ये गरुड़जी हैं। यह सुनकर देवगण गरुड़जी को प्रसन्न और शान्त करने के लिए विनीत भाव से उनकी स्तुति करने लगे।

अध्याय २४

अरुण का सूर्य का सारथी बनना

सूतजी बोले—देवगण की स्तुति से प्रसन्न होकर गरुड़जी ने अपने तेज को कम कर लिया और अपने बड़े भाई अरुण को लेकर वे अपने पिता कश्यप के आश्रम

को गये। फिर उन्होंने अरुण को सूर्य के रथ के आगे के भाग में स्थापित कर दिया।

महर्षि प्रमति ने अपने पुत्र रुरु के पूछने पर बतलाया कि अमृत निकालेजाने के समय सूर्य ने राहु का दानव होना प्रकट कर दिया था। इस कारण सूर्य से वैर मानकर राहु समय-समय पर उन्हें ग्रसने दौड़ा करता है। एक बार सूर्य ने सोचा कि मैंने तो सब के कल्याण के लिए ही राहु से वैर मोल लिया है, पर मेरे संकट के समय कोई भी मेरा साथ नहीं देता। यह सोच उन्होंने अपना तेज बढ़ाया और वे तीनों लोकों को भस्म करने को तैयार हो गये। उनके तेज से संसार जलने लगा। सब देवता, ऋषि-मुनि व्याकुल होकर ब्रह्मा जी के पास दौड़े गये। ब्रह्माजी के कहने से अरुण जी सूर्य के सारथी बन कर उनके रथ के सामने बैठे। इससे सूर्य का तेज कम हो गया और संसार का संकट दूर हुआ।

अध्याय २५, २६

कद्रू का विनता की पीठ पर सवार होना

सूत जी बोले—कद्रू की दासी बनकर विनता कष्ट से दिन काट रही थी। गरुड़ भी अपनी माता के पास जाकर

रहने लगे। एक दिन विनता की पीठ पर चढ़कर कद्रू समुद्र के एक द्वीप की ओर चली। गरुड़जी भी कद्रू के पुत्रों को अपनी पीठ पर लादकर चले। रास्ते में सूर्य के तेज से कद्रू के पुत्र व्याकुल होकर मूर्छित होने लगे। अपने पुत्रों को दुःखी देख कद्रू इन्द्र की स्तुति करने लगी।

कद्रू की स्तुति से प्रसन्न होकर इन्द्र ने मेघों को जल बरसाने की आज्ञा दी। खूब वृष्टि होने लगी। कद्रू के साथ उसके पुत्र सुखी होकर रमणक द्वीप में पहुँच गये।

अध्याय २७

विनता का दासीपन से छूटने के लिए उपाय करना

सूतजी बोले—सर्प उस द्वीप में पहुँचकर आनन्द मनाने और विहार करने लगे। उस द्वीप में नाना प्रकार के सुन्दर, दिव्य वन, उपवन, सरोवर, महल आदि थे। विचित्र लता-वृक्षों, फल-फूलों, पशु-पक्षियों से वह वन सुशोभित था। गंधर्व-अप्सराएँ वहाँ आनन्द से गाया-नाचा करती थीं। कुछ दिन वहाँ का आनन्द लूटने के बाद सर्पों ने गरुड़जी से कहा कि तुम अपनी पीठ पर लादकर हमें किसी दूसरे रमणीक द्वीप में ले चलो। गरुड़जी ने अपनी माता से पूछा कि ये सर्प मुझ पर क्यों हुक्म चलाते

हैं ? विनता ने सारा हाल बतलाया। माता के दुःख से गरुड़जी बहुत दुखित हुए। उन्होंने सर्पों से पूछा कि क्या करने से विनता दासीपन से छूट सकती है ? सर्पों ने सलाह करके गरुड़जी से कहा कि यदि तुम अमृत लाकर हमें दे दो तो तुम्हारी माता का दासीपना छूट जायगा।

अध्याय २८, २६

गरुड़जी का मल्लाहों को खाना

सूतजी बोले—गरुड़ ने अपनी माता से कहा कि मैं तुम्हें छुड़ाने के लिए अमृत लेने जाता हूँ। पर मुझे कुछ खाने को दो। विनता ने कहा कि समुद्र के एक टापू में कई हज़ार दुष्ट मल्लाह रहते हैं। तुम उन्हें खाकर अपनी भूख शान्त कर लो। पर भूलकर भी किसी सदाचारी, सच्चे ब्राह्मण को न सताना। ब्राह्मण सब को ज्ञान देने वाला गुरु है, इस कारण वह पूज्य है। माता का आशीर्वाद पाकर गरुड़ उस द्वीप में जा पहुँचे और परों से धूल के बादल उड़ाने लगे। घबराकर हज़ारों मल्लाह उनके खुले हुए मुँह में आ-आकर गिरने लगे और गरुड़ मल्लाहों को खा-खाकर संतुष्ट होने लगे।

सूतजी बोले—उन मल्लाहों के साथ धोखे में एक ब्राह्मण अपनी स्त्री के साथ गरुड़जी के गले में चला गया। इससे उनके गले में जलन होने लगी। तब गरुड़ जी ने स्त्री-सहित उस ब्राह्मण को अपने गले से निकाल दिया। फिर मल्लाहों को खाकर वे आगे बढ़े। राह में उन्हें कश्यपजी मिले। गरुड़ ने अपने पिता को प्रणाम किया और उनसे सब बातें बतलाकर खाने को माँगा। कश्यप जी ने कहा—देखो, सामने एक सरोवर है जो देवलोक तक फैला हुआ है। उसमें एक कछुआ और एक हाथी लड़ रहे हैं। ये पहले ऋषि थे। एक का नाम विभावसु था, दूसरे का सुप्रतीक। सुप्रतीक अपने बड़े भाई के साथ नहीं रहना चाहते थे। इस कारण वे पिता की सम्पत्ति का बँटवारा करने का आग्रह करते थे। पर विभावसु कहा करते थे कि बँटवारे से वैर बढ़ता है, शत्रु लोग मित्र बनकर भाई-भाई में आपस में फूट डाल देते हैं। इससे एक में रहना ठीक है। पर प्रतीक अलग होने की ज़िद करते रहे। एक दिन विभावसु ने उन्हें क्रोध में आकर हाथी होने का शाप दिया। सुप्रतीक ने भी शाप दिया कि तुम कछुआ हो जाओ। शाप से वे दोनों हाथी और कछुआ हो गये। वे पुराने वैर को याद करके आज तक बराबर लड़ा करते हैं। तुम उन्हें खाकर अपनी

भूख शान्त करो। हाथी छः योजन ऊँचा और बारह योजन चौड़ा है। कछुआ तीन योजन ऊँचा और दस योजन के घेरे का है। अपनी भूख शान्तकर तुम अमृत ले आओ।

गरुड़जी कश्यपजी का आशीर्वाद लेकर उड़े और उन्होंने एक झपट्टे में गज और कछुआ को अपने चंगुल में पकड़ लिया। दोनों को चंगुल में लिये-लिये वे सुमेरु पर्वत के अवलम्बतीर्थ पर जाकर ऐसे वृक्षों को देखने लगे जिन पर बैठकर वे सुख से भोजन कर सकें। गरुड़जी के वेग से सब वृक्ष काँपने लगे। अन्त में रौहिण नामक वट के एक प्राचीन वृक्ष ने गरुड़जी से कहा कि तुम मेरी इस सौ योजनवाली शाखा पर बैठकर दोनों को खा लो। वृक्ष की बात मानकर गरुड़जी उस सौ योजनवाली शाखा पर बैठ गये। पर गरुड़जी के बैठते ही वह शाखा चट से टूट गई।

अध्याय ३०

बालखिल्य ऋषियों को बचाकर गरुड़ का आगे बढ़ना

सूतजी बोले—जो शाखा टूटी थी, उसमें साठ हज़ार बालखिल्य ऋषि लटके हुए तपस्या कर रहे थे। उन्हें

बचाने के लिए गरुड़जी ने उस शाखा को अपनी चोंच में पकड़ लिया और फिर उचित स्थान की खोज में वे उड़ चले। गन्धमादन पर्वत पर उन्हें कश्यपजी तपस्या करते देख पड़े। कश्यपजी ने गरुड़ को बालखिल्य ऋषियों को बचाकर उनके शाप से बचने के लिए साव-धान कर दिया। फिर ऋषियों से गरुड़ को आशीर्वाद देने के लिए अनुरोध किया। कश्यपजी की बात सुन-कर बालखिल्य ऋषि उस शाखा को छोड़कर हिमालय पर्वत पर चले गये। तब गरुड़जी से कश्यपजी ने उस शाखा को मनुष्यों से शून्य, बर्फ से ढके एक पर्वत पर छोड़ देने को कहा। सौ योजन उड़कर गरुड़ जी ने उस अगम्य पर्वत पर उस शाखा को छोड़ दिया। और वहीं बैठकर गज और कछुए को खाया। फिर वे वहाँ से उड़कर अमृत के लिए चल पड़े। इधर देवलोक में बड़े भारी अशकुन होने लगे। देवासुर-संग्राम के समय भी ऐसे ही अशकुन हुए थे। भारी उत्पात की आशंका से इन्द्र तथा देवगण को भयभीत देख बृहस्पतिजी ने योगबल से गरुड़ के आने की बात बतलाई। तब इन्द्र देव-सेना को सुसज्जितकर अमृत की रक्षा का सुप्रबंध करने लगे।

अध्याय २१

गरुड़ की उत्पत्ति का कारण—तपस्वियों का अपमान

शौनकजी के पूछने पर सूतजी बोले—एक बार कश्यपजी पुत्र की कामना से यज्ञ करने लगे। सभी उनके कार्य में सहायता करने लगे। देवराज इन्द्र और बालखिल्य ऋषियों को यज्ञ की लकड़ी लाने का काम मिला। इन्द्र बड़े शक्तिशाली थे, इस कारण वे अनायास ही लकड़ियों का पहाड़ ऐसा ढेर उठा लाये। रास्ते में बालखिल्य ऋषिगण ढाक की एक छोटी-सी लकड़ी को लाते हुए मिले। वे आते समय गाय के एक खुर से बनाये गये गढ़े में गिर पड़े। उस नन्हें से गढ़े में से निकलना भी उनके लिए कठिन हो गया था। ऋषि क़द में अँगूठे के पोर के बराबर थे। इन्द्र ने अपने बल के घमण्ड में उन ऋषियों का अपमान किया, वे उन पर हँसकर चले गये। ऋषियों ने इन्द्र के अपमान से कुपित होकर महापराक्रमी, सब जगह जा सकनेवाले, इंद्र को भय देनेवाले और इंद्र से सौ गुने अधिक बली दूसरे इंद्र को उत्पन्न करने के उद्देश्य से यज्ञ करना आरंभ किया। यह सब सुन कर इंद्र बहुत घबराये और कश्यपजी की शरण में गये।

कश्यपजी ने जाकर वालखिल्य ऋषियों को समझाया कि विधाता की बात उलटना उचित न होगा। ऐसा कीजिये कि आप लोग जिसे उत्पन्न करना चाहते हैं वह देवताओं का इंद्र न होकर पक्षियों का इंद्र हो। बालखिल्य ऋषियों ने कहा कि हम लोग इस उद्देश्य से यज्ञ कर रहे थे कि आप के अंश से एक और इंद्र उत्पन्न हो। अब आप जैसा उचित समझें, करें। कश्यपजी ने ऋषियों की इच्छा से उसी अंश को विनता में स्थापित किया। उससे अरुण और गरुड़ की उत्पत्ति हुई। उन्होंने इंद्र को भी समझा दिया कि तपस्वियों का अपमान करने से सदा हानि होती है। अब कभी तपस्वियों का अपमान न करना। तुम्हीं इंद्र बने रहोगे। अरुण और गरुड़ तुम्हारे भाई होंगे और तुम्हारी सहायता करेंगे।

अध्याय ३२

गरुड़ का देवगण को डराना

सूतजी बोले—गरुड़जी बड़े वेग से देवगण के पास पहुँचे। देवगण उनके वेग से घबराकर धोखे में पड़ गये और आपस में ही युद्ध करने लगे। बाद में सावधान होकर वे गरुड़ पर चारों ओर से हमला करने लगे। बड़ा भीषण युद्ध

हुआ। अन्त में गरुड़जी ने एक-एक करके सभी देवताओं को घायल और परास्त करके भगा दिया। सब को हरा करके वे अमृत के कलश के पास पहुँचे। देखा, कलश के चारों ओर अग्नि की बड़ी-बड़ी लपटें उठ रही हैं। गरुड़जी ने पानी डाल-डालकर उस अग्नि को बुझा दिया। फिर छोटा रूप धरकर वे कलश के पास जाने का विचार करने लगे।

अध्याय ३३, ३४

नारायण से भेंट-इंद्र-मित्र-साँपों की दो जीभें

सूतजी बोले—गरुड़जी अमृत के कलश के पास जा पहुँचे। देखा, उसके चारों ओर आग का घेरा पड़ा है। गरुड़जी ने पानी से अग्नि को शान्त कर दिया। तब उन्हें कलश के चारों ओर एक तेज चक्र घूमता देख पड़ा। वे बहुत छोटा रूप रखकर चक्र के बीच से निकलकर अमृत के पास पहुँच गये, फिर उन्होंने उस चक्र को नष्ट-कर डाला। वहाँ उन्हें विषधर सर्प मिले। इसके पहले कि सर्प उन्हें काटें, गरुड़जी ने उनकी आँखों में धूल डालकर उन्हें व्याकुल कर दिया और उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर डाला। फिर वे कलश लेकर चल दिये।

राह में उन्हें नारायण मिले। उनके धैर्य और पराक्रम से प्रसन्न होकर नारायण ने उनसे वरदान माँगने को कहा। गरुड़ ने बिना अमृत पिये ही मृत्यु और वृद्धावस्था से छूटने और सदा नारायण की ध्वजा के ऊपर रहने के वर माँगे। नारायण ने मन चाहे वरदान दिये। फिर गरुड़ ने नारायण से वर माँगने को कहा। नारायण ने कहा कि तुम मेरे वाहन बनो। गरुड़जी ने स्वीकार कर लिया। नारायण अन्तर्धान हो गये।

आगे बढ़ने पर इंद्र ने पीछे से गरुड़ को वज्र मारा। पर उन पर उसका कुछ भी असर न हुआ। गरुड़ के बल-पराक्रम को देखकर इन्द्र ने उनके साथ मित्रता करने का प्रस्ताव किया।

गरुड़जी बोले—हे इन्द्र! मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करने के लिए तुमसे मित्रता करता हूँ। मुझमें अपार बल है, किन्तु अपने मुँह से प्रशंसा करना ठीक नहीं होता। फिर इन्द्र ने गरुड़ से कहा कि यदि आप को अमृत का काम न हो तो मुझे लौटा दीजिये। गरुड़ ने सब हाल बतलाकर कहा—"मैं प्रतिज्ञा के अनुसार सर्पों को अमृत दे दूँगा। सर्पों के कहने से जहाँ मैं अमृत रख दूँगा, वहाँ से तुम उठा लाना।" इन्द्र ने प्रसन्न होकर गरुड़ को वरदान दिया कि शत्रु-सर्प तुम्हारे आहार हों।

आकाश-मार्ग से जाकर गरुड़ ने सर्पों को अमृत का कलश दिखलाकर अपनी माता को दासीपने से छुड़ा लिया। फिर वे सर्पों से बोले—"यहाँ कुशों पर अमृत का कलश रक्खा है। तुम स्नान आदि करके अमृत पियो। अब मेरी माता तुम्हारी माता की दासी नहीं रही।"

सर्पगण स्नान करने चले गये। इधर इंद्र चुपके से आकर अमृत उठा ले गये। जब सर्प स्नान आदि कर के लौटे तो देखा, अमृत का कलश गायब है। वे बहुत खीझे। फिर उन्होंने सोचा कि शायद कुशों पर कुछ अमृत गिरा हो, इस कारण वे कुशों को जीभ से चाटने लगे। कुशों की रगड़ से सर्पों की जीभ फट गई। तभी से सर्पों के दो जीभें होने लगीं।

जैसे छल से सर्पों ने विनता को दासी बनाया था, उसी तरह छल से, बिना अमृत दिये ही गरुड़ ने उसे दासीपने से छुड़ा लिया और उसी वन में रहकर वे सर्पों को खाने लगे।

अध्याय ३५, ३६

मुख्य-मुख्य नागों के नाम—शेष से गरुड़ की मित्रता

शौनकजी के पूछने पर सूत ने कहा—"कद्रू के पुत्र नागों की संख्या इतनी अधिक है कि उनके नाम गिनाना संभव नहीं है। उनमें शेषनाग, वासुकि, ऐरावत, तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय, कालिय, मणि, वामन, महोदर, एला-पत्र आदि मुख्य हैं।

माता का शाप सुनकर शेषनाग दुःखी हो उनके पास से उठकर तीर्थों में भ्रमण करने और तप करने के लिए चले गये। उनके घोर तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी ने प्रकट होकर उनसे वर माँगने के लिए कहा। शेष जी बोले—"मेरे भाई नागगण बड़े दुष्ट और क्रोधी हैं। वे एक तो आपस ही में सदा लड़ते रहते हैं, दूसरे साधु स्वभाव वाले, महा पराक्रमी गरुड़ और उनकी सुशीला माता विनता से डाह करते हैं। मैं अपने भाइयों से दूर रह-कर तप और धर्म की साधना करते-करते शरीर त्यागना चाहता हूँ। ब्रह्माजी ने उनके उत्तम गुणों से प्रसन्न होकर गरुड़जी से उनकी मित्रता करादी और उन्हें पृथ्वी को सँभालने का भार सौंप दिया। तब शेष नाग ने ब्रह्मा जी की आज्ञा से पृथ्वी को अपने फन पर धारण कर लिया।

अध्याय ३७, ३८

शाप से बचने के उपाय—आस्तीक

उग्रश्रवा सूत बोले—"शेषनाग सबसे बड़े थे। उनके चले जाने पर वासुकिनाग को राजपद मिला। उन्होंने सब नागों को एकत्र करके माता के शाप से छूटने का उपाय निकालना चाहा। किसी ने ब्राह्मण बनकर राजा जनमेजय को ऐसा पाप-कर्म करने से मना करने को कहा। किसी ने राजा या यज्ञ करानेवालों को काटकर मार डालने की सलाह दी। किसी ने यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट करने, यज्ञ की आग को बुझा देने, सामग्री को अशुद्ध करके यज्ञ बन्द करने की बात बतलाई। नागराज वासुकि को उनकी कोई भी बात न जँची। उसने कहा—सब की भलाई इसीमें देख पड़ती है कि कश्यपजी को अपने वश में कर लिया जाय।

अन्त में एलापत्र ने कहा—"शाप के समय मैं डर से एक ओर छिप गया था। उस समय देवगण ने घबराकर ब्रह्माजी से नागों को बचाने की प्रार्थना की थी। ब्रह्माजी ने कहा था कि जो नाग दुष्ट स्वभाव के होंगे और दूसरों को सतायँगे यज्ञ में उन्हीं की आहुति पड़ेगी; जो दूसरों को न सतायँगे, वे बच जायँगे। साथ ही, नागों

की बहन जरत्कारु के साथ महर्षि जरत्कारु का विवाह होगा। उनसे आस्तीक नामक तपस्वी ऋषि जन्म लेंगे। वही राजा जनमेजय को यज्ञ करने से रोक सकेंगे।

सब की राय से नागराज वासुकि ने, वंश के कल्याण के लिए, अपनी बहन जरत्कारु को महर्षि जरत्कारु को सौंप देने का निश्चय किया।

अध्याय २९

जरत्कारु का अर्थ

उग्रश्रवासूत बोले—"इसके बाद देवगण के कहने से वासुकि नाग ने समुद्र-मंथन के समय रस्सी का काम दिया। इससे प्रसन्न हो देवगण के कहने पर ब्रह्माजी ने उसे सलाह दी कि तुम अपनी बहन को जरत्कारु ऋषि को सौंप दो। उनसे जो पुत्र उत्पन्न होगा वह नागों की रक्षा करेगा। यह सुन वासुकि ने नागों को आज्ञा दी कि तुम जरत्कारु ऋषि को खोजकर उनके साथ-साथ रहो और जब वे विवाह की इच्छा करें तब मुझे फ़ौरन खबर दो। इसी से नाग-वंश का कल्याण होगा।

जरत् के अर्थ हैं क्षय, नष्ट होना; और कारु का अर्थ है कठोर, दारुण, घोर। तप आदि करके अपने शरीर को

क्षीण करने के कारण ही उन ऋषि का नाम जरत्कारु पड़ा था।

अध्याय ४०

परीक्षित और शमीक

उसी काल में अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित धर्म-पूर्वक राज्य करने लगे। परीक्षित को शिकार का बड़ा शौक था। एक बार वे वन में शिकार खेलने गये। बहुत दौड़-धूप के बाद उन्हें एक मृग देख पड़ा। राजा ने उस पर बाण चलाया और उसका पीछा किया। बहुत देर तक पीछा करने पर भी राजा के हाथ मृग न आया। भूख-प्यास से व्याकुल, थके-माँदे राजा उसी मृग को खोजते-खोजते शमीक ऋषि के आश्रम में जा पहुँचे। उस समय ऋषि मौन-व्रत धारण किये समाधि में बैठे थे। राजा ने उनसे मृग के बारे में पूछा। पर समाधि में रहने के कारण ऋषि ने उत्तर न दिया। राजा को उत्तर न पाने से क्रोध आगया। वे पास में पड़े हुए एक मरे साँप को ऋषि के गले में डालकर अपनी राजधानी की ओर चले गये। रास्ते में क्रोध शान्त होने पर उन्हें ऋषि के गले में साँप डालने के लिए बड़ी ग्लानि, बड़ा पश्चात्ताप हुआ।

अध्याय ४१

परीक्षित को शाप

इधर शमीक के पुत्र शृंगी ऋषि ने अपने मित्र कृश के मुँह से अपने पिता के अपमान की बात सुनी, तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। उनके साथियों ने उन्हें ताने भी दिये। शृंगी ऋषि ने शाप दिया कि जिसने मेरे पिता के गले में साँप डाला है उसे आज के सातवें दिन तक्षक नाग काटेगा।

जब शमीक ऋषि को शाप की बात मालूम हुई तो उन्हें बड़ा पछतावा हुआ। वे अपने पुत्र से बोले—"तुमने शाप देकर अच्छा नहीं किया। परीक्षित धर्मात्मा राजा हैं। अनजान में उनसे थोड़ा-सा अपराध हो गया। उसके लिए इतना कठिन शाप देना उचित नहीं है। चोरों, डाकुओं, बदमाशों को दण्ड देकर राजा राज्य में शान्ति और व्यवस्था रखता है। तभी सब लोग धर्म-कर्म का पालन कर सकते और सुख से रह सकते हैं। इसी कारण एक धर्मात्मा राजा वेद-शास्त्र जाननेवाले दस ब्राह्मणों से भी श्रेष्ठ माना गया है। यदि देश में शान्ति न रहे तो धर्म-कर्म सभी नष्ट हो जायँ। इस कारण शान्ति स्थापित रखकर, प्रजा

को सुख-समृद्धि देनेवाले राजा परीक्षित को शाप देना ठीक नहीं हुआ।

अध्याय ४२-४३-४४

तक्षक, कश्यप और परीक्षित की मृत्यु

पुत्र को शान्ति और क्षमा का उपदेश देकर शमीकजी ने गौरमुख नामक अपने शिष्य को राजा के पास शाप का हाल बतलाने के लिए भेजा। राजा ने शाप का हाल सुनकर गौरमुख को पूजा-भेंट देकर शमीकजी के पास यह कर लौटा दिया कि मैंने अनजान में जो अपराध किया है उसके निमित्त धर्मात्मा, शान्त-स्वभाव शमीक जी मुझे क्षमा करें।

फिर शाप से छुटकारा पाने के लिए राजा ने एक खम्भे पर एक ऐसा सुरक्षित महल बनवाया जिसमें बिना जाने हवा तक न घुस सके। उसी में अनेक प्रभावशाली वैद्यों, औषधियों और सर्प विष-निवारण के मंत्र जानने-वालों को रखकर राजा रहने लगे।

इधर छः दिन बीतने पर तक्षक शाप को पूरा करने के लिए चला। राह में उसे सर्प के विष को दूर करने वाला कश्यप ब्राह्मण मिला, जो राजा को अच्छा करने

के लिए जा रहा था। तक्षक ने उसे अपने विष का भय दिखलाकर रास्ते से लौटा देना चाहा, पर कश्यप ने कहा कि मैं विष दूर करके राजा को अवश्य जिला लूँगा।

तक्षक ने कश्यप की परीक्षा लेने के लिए एक बड़े बरगद के वृक्ष को डसा। वृक्ष उसके विष से जलकर भस्म हो गया। कश्यप ने अपने मंत्र से उसे फिर से हरा-भरा कर दिया। तक्षक को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे डर भी लगा। अन्त में उसने ब्राह्मण को बहुत-सा धन देकर रास्ते से लौटा दिया। इसके बाद उसने अपने साथी नागों को ब्राह्मणों और ऋषियों के वेश में फलफूल की भेंट लेकर राजा के पास भेजा। राजा ने सबका बड़ा आदर-सत्कार किया। इसी समय सूर्यास्त होने लगा। राजा ने नाग-ब्राह्मणों के दिये हुए एक फल को उठाया। उसमें लाल रंग तथा तेज़ काली आँखों वाला एक कीड़ा देख पड़ा। वह तक्षक था। राजा ने हँसी में कहा—"अब सात दिन पूरे हो गये! मुझे तक्षक का भय नहीं है। यदि यह कीड़ा तक्षक बनकर काट ले तो ऋषि-पुत्र की बात भी पूरी हो जाय।" यह कह राजा ने हँसते हुए उस कीड़े को अपनी गर्दन पर रख लिया। इसी समय तक्षक ने अपना रूप प्रकट किया और ज़ोर से फूत्कार मारते हुए उसने राजा को डस लिया।

राजा के प्राण निकल गये। सब विलाप करने लगे। तक्षक आकाश-मार्ग से अपने स्थान को लौट गया। अन्त में पुरोहितों ने राजा की अन्तेष्टि-क्रिया कराकर उनके पुत्र जनमेजय को गद्दी पर बैठाला। राजा जनमेजय धर्मपूर्वक राज्य करने लगे। कुछ दिन बाद काशिराज सुवर्णवर्मा की राजकुमारी वपुष्टमा से जनमेजय का विवाह हुआ। दोनों अनेक प्रकार से विहार करने लगे।

अध्याय ४५, ४६, ४७, ४८

जरत्कारु का विवाह, जाति के लिए तप-त्याग-यातनाएँ

उग्रश्रवा सूत बोले—इधर महातपस्वी जरत्कारु पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ एक खोखले पेड़ की जड़ों से उलटे लटके उनके पुरखे दुःख उठा रहे थे। पूछने पर उन लोगों ने बतलाया कि वंशनाश के भय के कारण ही उनकी ऐसी दशा हुई है। यदि उनके वंश के जरत्कारु ऋषि विवाह करके पुत्र उत्पन्न करें तो उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हो जायगी।

तब जरत्कारु ऋषि ने प्रतिज्ञा की कि मैं अपने ही नाम-वाली कन्या से विवाह करके पुत्र उत्पन्न करने को तैयार हूँ।

पर इसके बाद बहुत दिनों तक अनेक देशों में घूमते रहने पर भी उन्हें ग़रीब जानकर किसी ने कन्या न दी। एक बार एक जंगल में उन्होंने अपने ही नाम की कन्या की प्राप्ति के लिए तीन बार प्रार्थना की। तुरंत नागों ने वासुकि को जाकर खबर की। वासुकि ने जरत्कारु नामक अपनी बहन को लाकर ऋषि को दे दिया।

ऋषि ने दो शर्तों पर विवाह करना स्वीकार किया। एक तो यह कि वे उसका भरण-पोषण न करेंगे। दूसरे, जब कभी वह कन्या उनके मन के विरुद्ध कोई काम करेगी तब वे उसे त्याग कर तप करने चले जायँगे। वासुकि और उनकी बहन ने सब बातें स्वीकार करलीं। विवाह हो गया। पत्नी ख़ूब सावधान होकर ऋषि की सेवा करने लगी। कुछ समय बाद उसके गर्भ में एक परम तेजस्वी बालक आया।

एक दिन पत्नी की गोद में सर रखकर ऋषि सो गये। संध्या होने को आई, पर वे न जागे। संध्यावन्दन का समय बीतता देख पत्नी ने ऋषि को जगा दिया। वह जानती थी कि उस काम के अप्रिय होने से वे उसे त्याग देंगे। पर उसने पति के धर्म को बचाते हुए दण्ड सहना ही उचित समझा।

ऋषि ने जागकर कहा—"तूने मेरा अपमान किया है।

इस कारण मैं तुझे त्यागे देता हूँ । किसी स्वाभिमानी धर्म-पालनेवाले को वहाँ कभी न रहना चाहिए, जहाँ उसका अपमान हो ।"

पत्नी ने बड़ी अनुनय-विनय की । उसने हाथ जोड़कर, पैरों पर गिरकर, रो-धोकर, उन्हें मनाने की चेष्टा की । किन्तु वे न माने । तब उसने स्पष्ट ही कहा—"मेरे भाई नाग-राज वासुकि ने मेरा विवाह आपसे केवल इसी आशा से किया था कि आप के अंश से मेरे ऐसा पुत्र हो जो नाग-वंश की रक्षा करे । मैंने इतना तप-त्याग करके, इतनी सेवा करके इसी कारण आप को प्रसन्न रक्खा कि आप ऐसा पुत्र दें जिससे मेरे भाई के वंशवालों का हित हो । मैं नाग-वंश की भलाई के निमित्त आप से क्षमा चाहती हूँ । आप मुझे और चाहे जो भी दण्ड दें; पर मुझे तब तक न त्यागें जब तक आप मुझे पुत्र न दे लें । नाग-वंश की रक्षा के लिए मैं सब यातनाएँ, सारे कष्ट सहने को तैयार हूँ । आप मुझे क्षमा कर दें और पुत्र देकर तब जायँ ।

अपनी जाति के लिए इतना तप, त्याग करने और सब तरह की यातनाओं को भोगने के लिए तैयार रहने वाली, दृढ़-प्रतिज्ञावाली अपनी पत्नी पर ऋषि को दया आगई । वे बोले—"हे सुमुखि ! तुम चिन्ता न करो ।

तुम्हारी तपस्या पूरी हो चुकी है। मेरे अंश से एक परम तेजस्वी बालक तुम्हारे गर्भ में है। उससे नागवंश का हित होगा। तुमने इतनी तत्परता तथा सावधानी से जो मेरी सेवा की है वह निष्फल नहीं जा सकती। जाति की सेवा के लिए इतना कष्ट सहनेवाली, इतना तप और त्याग करने वाली तुम धन्य हो। यह कह वे तप करने के लिए वन को चले गये।

जरत्कारु ऋषि के चले जाने से नाग-वंश बहुत दुखी हुआ। किन्तु जब वासुकि को मालूम हुआ कि उनकी बहन के पेट में ऋषि के अंश से एक बालक आगया है तब सब की चिन्ता दूर हो गई। समय पाकर, नाग-कन्या जरत्कारु के एक परम तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। नागगण की देख-रेख में नागलोक में वह दिन-दिन बढ़ने लगा। उसका नाम आस्तीक रक्खा गया।

अध्याय ४९,५०, ५१

जनमेजय का अपने पिता का हाल जानकर यज्ञ करना

उग्रश्रवा सूत बोले—"उत्तङ्क ऋषि के उकसाने पर राजा जनमेजय तक्षक पर बहुत क्रोधित हुए। उनके बार-बार पूछने पर उनके मंत्रियों ने राजा परीक्षित के

द्वारा शमीक ऋषि के गले में साँप के डाले जाने की बात बतला दी।

मंत्री बोले—महाराज! गाय के गर्भ से शमीक ऋषि ने शृंगी नामक एक बहुत ही तेजस्वी, तपस्वी पुत्र उत्पन्न किया था। शृंगी प्रायः ब्रह्माजी के पास रहते और कभी-कभी अपने पिता को देखने के लिए आते थे। जिस दिन महाराज परीक्षित ने शमीक ऋषि के गले में सर्प डाला था उसी दिन शृंगी अपने पिता को देखने के लिए आ रहे थे। रास्ते में एक ऋषिकुमार ने शमीक के अपमान का ताना मारा।

शृंगी ऋषि के शाप देने, राजा के सुरक्षित स्थान पर बैठने, तक्षक द्वारा धन देकर कश्यप को राह से लौटाने और छल करके परीक्षित को काटने का पूरा वृत्तान्त बतलाकर मंत्री ने कहा—"एक मनुष्य उस बर-गद के पेड़ पर चढ़ा था। सर्प के विष के कारण वृक्ष के साथ ही वह भी भस्म हो गया था और मंत्र के कारण फिर से जी उठा था। न तो उसे तक्षक ने ही देखा था और न कश्यप ने ही। उसी ने आकर यह वृत्तान्त बतलाया था। महाराज परीक्षित इस प्रकार धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करते थे कि किसी को किसी तरह का भी कष्ट न होता था।"

सब बातें सुनकर राजा जनमेजय ने तक्षक को अपने पिता की मृत्यु का कारण जानकर सर्प-यज्ञ के द्वारा सर्पों के नाश की प्रतिज्ञा की।

सर्प-यज्ञ की सब तैयारियाँ हो गई। राजा ने विधि-पूर्वक यज्ञ की दीक्षा ली। इसी समय वास्तु-विद्या के जाननेवाले, पुराणों के ज्ञाता थवई ने आकर राजा से कहा कि जिस स्थान पर और जिस समय यज्ञ-भूमि बनाई गई है उससे यह स्पष्ट है कि आपका यह यज्ञ पूरा न हो सकेगा। आप एक ब्राह्मण के कहने से इसे बन्द कर देंगे। यह सुन राजा ने द्वारपालों को आज्ञा दी कि बिना मेरी आज्ञा मण्डप में कोई भी न आने पावे।

अध्याय ५२-५३-५४

सर्पों की आहुति

विधिपूर्वक सर्प-यज्ञ आरम्भ हुआ। अग्नि में मंत्रों के साथ आहुति पड़ते ही नाना रंग, रूप, आकार, वय, स्वभाव के नाग और सर्प आ-आकर अग्निकुण्ड में गिरने और जलने लगे।

शौनकजी के पूछने पर उग्रश्रवा ने कहा—उस यज्ञ में वेदव्यास, शुकदेव, वैशम्पायन, नारद, उद्दालक, असित

देवल आदि सभी वेदज्ञ ऋषि-मुनि सम्मिलित हुए थे। उसमें च्यवन के वंशज़ चण्डभार्गव होता थे, कौत्स ऋषि उद्गाता थे, जैमिनि ब्रह्मा थे, शारंगरव और पिंगल अध्वर्यु थे।

यज्ञ की वात सुनते ही तक्षक इन्द्र की शरण में जा छिपा। इन्द्र ने उसे अपने पास छिपा लिया। वासुकि ने लाखों नागों का संहार देख अपनी बहन जरत्कारु से प्रार्थना की कि अब आस्तीक ऋषि द्वारा बचे हुए नागों की रक्षा करने का प्रबंध करो, नहीं तो मैं और मेरे सब जातिवाले नष्ट होना चाहते हैं।

उग्रश्रवा बोले—जरत्कारु ने अपने पुत्र आस्तीक ऋषि को बुलाकर उन्हें आदि से सब हाल बतलाया और उनसे नागवंश की रक्षा करने को कहा। आस्तीक रक्षा की प्रतिज्ञा करके जनमेजय के यज्ञ में गये। किन्तु यज्ञ-मण्डप के अन्दर जाने से द्वारपाल ने उन्हें रोका। यह देख आस्तीक बाहर से ही ज़ोर-ज़ोर से, ऊँचे स्वर में राजा जनमेजय की, उनके यज्ञ की, यज्ञ करानेवाले ऋषियों तथा अग्नि की स्तुति करने लगे।

अध्याय ५५

आस्तीक द्वारा जनमेजय के यज्ञ की प्रशंसा

आस्तीक ने कहा—हे जनमेजय ! सोम, वरुण और प्रजापति ने जैसे यज्ञ किये थे, तुम्हारा यज्ञ भी उन्हीं के समान है। आपका यह एक यज्ञ ही इंद्र के सौ यज्ञों के बराबर है। यमराज, हरिमेधा, राजा रन्तिदेव, गय, शशिबिन्दु, कुबेर, नृग, अजमीढ़, दशरथ, राम, युधिष्ठिर, व्यासदेव आदि ने जैसे यज्ञ किये थे, आपका यह यज्ञ भी उन्हीं सबकी भाँति श्रेष्ठ और उत्तम है। आपको यज्ञ करानेवाले अपने-अपने विषय में अद्वितीय हैं। हे राजन् ! आप के समान संसार में दूसरा कोई भी नहीं देख पड़ता। आप सूर्य के समान तेजस्वी, भीष्मपितामह के समान सत्यप्रतिज्ञ, वाल्मीकि के समान वीर्यवान, वशिष्ठ के समान दुर्द्धर्ष, इंद्र के समान प्रभुतापूर्ण, नारायण के समान शोभा-युक्त, धर्मराज के समान न्याय-कर्ता, भगीरथ के समान कार्य-तत्पर, परशुराम के समान अस्त्र-शस्त्र-ज्ञाता और श्रीकृष्ण के समान सर्वगुण समन्वित हैं।

अध्याय ५६

तक्षक-सहित इंद्र का आना, आस्तीक को वरदान

आस्तीक की स्तुति से जनमेजय मुग्ध हो गये। उन्होंने कहा—"तुम बालक होकर भी वृद्धों की भाँति विद्वान और चतुर हो। तक्षक की रक्षा को छोड़कर और जो चाहो सो वरदान माँगो।"

राजा को रोककर होता तथा अन्य यज्ञ करानेवालों ने कहा कि आप पहले अपने सब से बड़े शत्रु तक्षक को आकर भस्म हो जाने दीजिये, तब वरदान दीजिये। राजा मान गये। ऋषियों ने तक्षक का नाम लेकर मंत्र पढ़ा। पर तक्षक न आया। तब ऋषियों ने योग-बल से ध्यान करके देखा तो पता चला कि तक्षक इंद्र की रक्षा में है। यह हाल जानकर जनमेजय ने इंद्र-सहित तक्षक को बुलाने के लिए मंत्र पढ़ने को कहा। मंत्र-बल से इंद्र अपने सिंहासन के साथ आकाश में खिंचे चले आये। तक्षक उनकी गोद में छिपा था। जनमेजय ने कहा—यदि इंद्र तक्षक की रक्षा कर रहे हैं तो इंद्र-सहित तक्षक की आहुति दीजिये। नाग-यज्ञ देखकर इंद्र घबरा गये और तक्षक को छोड़कर अपने लोक को भाग गये। तक्षक व्याकुल होकर रोता-चिल्लाता अग्नि

कुण्ड की ओर खिंचने लगा। इसी समय काम पूरा हुआ देख ऋषियों ने राजा से वरदान पूरा कर देने के लिए कहा। राजा ने आस्तीक से वरदान माँगने को कहा। मौक़ा देख आस्तीक ने फ़ौरन वरदान माँगा कि आप नाग-यज्ञ बन्द कर दें। नागों का अग्नि में जलना बन्द होना चाहिए। पर राजा इस बात से प्रसन्न न हुए। उन्होंने धन, रत्न आदि का लोभ दिखलाकर आस्ती को डिगाना चाहा; किन्तु वे अपनी बात पर अड़े रहे

अध्याय ५७, ५८

यज्ञ की समाप्ति, आस्तीक को नागों का वरदान

शौनकजी के सर्पों के नाम पूछने पर उग्रश्रवा बोले—कोटिश, मानदा, शल, हलीमुक, पिच्छल, कौणप, काल वेग, प्रकालन, कच्च, कालदन्त, प्रच्छाण्डक, मण्डलक, रसणक, उच्छिरन, शरभ, शंकुकर्ण, कामठ तथा ऋषभ आदि सर्पों में मुख्य हैं। वैसे तो करोड़ों, अरबों सर्प भस्म हुए थे। सबके नाम लेना संभव नहीं है।

उग्रश्रवा बोले—इधर जिस समय इन्द्र के भाग जाने पर तक्षक मंत्र से खिंचकर अग्नि में गिरने लगा, उस समय आस्तीक ने अपने योग-बल से उसे आकाश

में ही रोक दिया। बहुत प्रयत्न करने पर भी यज्ञ करानेवाले ऋषिगण तक्षक को अग्नि में न गिरा सके। तब जनमेजय बड़े असमंजस में पड़े। वे यज्ञ को इस प्रकार बन्द करना नहीं चाहते थे। पर बात हार चुके थे। आस्तीक को धन-रत्न आदि का बहुत लालच दिखलाया गया, बहुत कुछ समझाया गया, पर वे दूसरी बात सुनने को राज़ी न हुए। अन्त में हारकर जनमेजय को यज्ञ बन्द कर देना पड़ा। नागगण सुखी हो गये। तक्षक मंत्र से छूटकर अपने लोक को चला गया। जनमेजय ने सब को धन, रत्न आदि दे संतुष्ट करके विदा किया। फिर आस्तीक को भी बहुत-सा धन, रत्न देकर और यह वचन लेकर विदा किया कि तुम मेरे अश्वमेध-यज्ञ में आकर योग दोगे।

राजा को वचन देकर आस्तीक नागलोक में अपनी माता के पास गये। नागगण ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और वर माँगने को कहा। आस्तीक ने वरदान माँगा कि जो मेरा और इस कथा का स्मरण करे उसे साँपों में भय न हो। नागगण ने उन्हें मनचाहा वर दे दिया। आस्तीक ने अपनी माता के कुल को नष्ट होने से बचा लिया और अपने पिता के पूर्व-पुरुषों को सद्गत दिलाई।

अंशावतरण पर्व

अध्याय ५९, ६०, ६१

संक्षेप में महाभारत की कथा

उग्रश्रवा बोले—"राजा जनमेजय के नागयज्ञ के अवसर पर महर्षि वेदव्यासजी के कहने से उनके प्रिय शिष्य वैशम्पायन ने महाभारत की कथा सुनाई थी। उसी कथा को अब मैं वर्णन करता हूँ।

पुनः उग्रश्रवा बोले—जिस समय यज्ञ प्रारंभ हुआ उस समय अपने शिष्यों के साथ महर्षि वेदव्यास जी यज्ञ-मण्डप में आये। राजा ने सब के साथ उन्हें आदर-सत्कार से लिया और विधिवत् उनकी पूजा की। फिर अपने पूर्व-पुरुषों की कथा तथा युद्ध का कारण पूछा। व्यास-देव के आदेश से वैशम्पायन ने महाभारत की कथा सुनाई।

वैशम्पायन बोले—"वन में राजा पाण्डु के मरने पर पाँचों पाण्डव हस्तिनापुर को लौट आये और शस्त्र-शास्त्र में निपुण हो गये। उनके गुणों से सभी उनसे प्रेम करते, उनका आदर करते। इससे दुर्योधन आदि कौरवगण उनसे डाह करने लगे। शकुनि से सलाह करके दुर्योधन ने पहले भीमसेन को विष दिया। विष पचा जाने पर एक दिन सोते में हाथ-पैर बाँधकर दुर्योधन ने उन्हें गंगा

में डाल दिया। पर भीम बच गये। फिर उन्हें साँपों से कटवाया। किन्तु भीम फिर भी न मरे। तब उन्हें लाख के घर में रखकर उस घर में ही आग लगा दी गई। विदुर की सलाह से पांडव, अपनी माता कुन्ती के साथ, सुरंग की राह, लाक्षागृह से भाग गये। राह में भीम ने हिडिम्ब राक्षस को मार गिराया और उसकी बहन से विवाह कर लिया। उससे घटोत्कच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

वन को पार करके घूमते-फिरते पाण्डव एकचक्रा नामक नगरी में जा पहुँचे और वहाँ ब्राह्मण के वेष में रहने लगे। कुछ दिन बाद भीम ने नर-भक्षी बक राक्षस को मारकर नगरवालों का संकट दूर किया। बाद में वे पाञ्चाल देश के राजा की कन्या—द्रौपदी—के स्वयंवर में गये और अपने पराक्रम से उन्होंने द्रौपदी को प्राप्त किया। एक वर्ष पाञ्चाल देश में रहने के बाद पाण्डवों ने अपने को प्रकट किया और वे हस्तिनापुर लौट आये। उन्हें हिस्से में खण्डवप्रस्थ मिला। पाण्डव बहुत दिनों तक वहाँ राज्य करते रहे। फिर अर्जुन ने श्रीकृष्णजी की बहन सुभद्रा से विवाह किया और खण्डव-वन को जलाकर अग्नि को संतुष्टकर गाण्डीव धनुष, अक्षय तरकस और दिव्य रथ प्राप्त किये। खण्डव-दहन में अर्जुन ने मयदानव को अग्नि से बचाया था, इस कारण उसने उनके लिए

एक अपूर्व सभा-भवन बना दिया। युधिष्ठिर की विभूति से जलकर दुर्योधन ने छल से उन्हें जुए में हरा दिया और राजपाट छीनकर बारह बरस के लिए वनवास और एक साल का अज्ञातवास दिया। अवधि पूरी करके जब पाण्डव लौटे और उन्होंने अपना हिस्सा माँगा, तो दुर्योधन कुछ भी देने को राज़ी न हुआ। इसी कारण महाभारत का भीषण युद्ध हुआ। कौरवों का नाशकर पाण्डवों ने पृथ्वी का राज प्राप्त किया और वे धर्म-पूर्वक राज्य करने लगे। यही महाभारत की कथा का सारांश है।

अध्याय ६२

महाभारत सुनने का फल

राजा जनमेजय बोले—"मुझे विस्तार से महाभारत की कथा सुनाइये। यह बतलाइये कि धर्मात्मा पाण्डवों ने अवध्य भीष्म, द्रोण आदि की क्यों हत्याएँ कीं और किस कारण उन्हें पाप न लगा? युधिष्ठिर जुआरी थे, तो भी अर्जुन आदि ने उनके साथ रहकर क्यों कष्ट सहे? अपमानित होने पर भी महाबली पाण्डव इतने दिनों तक कौरवों को क्यों क्षमा करते रहे? मारकाट के समय भगवान कृष्ण क्यों अर्जुन के सारथी बने?"

वैशम्पायनजी बोले—"मैं विस्तार से सब कथा सुनाता हूँ। इस पाँचवें वेद—महाभारत—को भगवान वेदव्यास ने तीन वर्ष में बनाया था। इसके एक लाख श्लोकों को जो सुनता, सुनाता अथवा पढ़ता है, उसे अश्वमेध, राजसूय आदि यज्ञों का फल होता है, उसकी सब मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं, वह धन-जन से परिपूर्ण हो जाता है और उसे अनायास ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है। श्राद्ध या सत्कर्म के समय इसके एक श्लोक के पाठ से उसका फल अनेक गुना बढ़ जाता है। महाभारत में भरतवंश के राजाओं का वर्णन है, इसी से इसका नाम महाभारत पड़ा। इसे "जय" भी कहते हैं। इसे पढ़ लेने से वेद आदि सभी का ज्ञान हो जाता है।

अध्याय ६३

राजा उपरिचर की कथा

वैशम्पायनजी बोले—"पुरुवंश में उपरिचर बड़े प्रतापी राजा हुए। इन्द्र के कहने से उन्होंने चेदि देश को जीत लिया। कुछ दिन बाद राजा सब कुछ छोड़कर घोर तप करने लगे। इन्द्र को भय हुआ कि कहीं राजा मेरा इन्द्रासन न ले लें। इस कारण उन्होंने उन्हें समझा-बुझाकर फिर

राज करने को राज़ी कर लिया। इन्द्र ने राजा को आकाश-गामी एक विमान, दिव्य दृष्टि, कभी न मुरझानेवाले कमलों की माला (जिसके पहने रहने पर घाव न लगें) और बाँस की एक लाठी दी। राजा ने उसी लाठी को गाड़कर इन्द्रध्वज की स्थापना करके इन्द्र की पूजा की। तभी से राजा लोग धन-धान्य, विजय, तथा ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिए इन्द्रध्वज गाड़कर इन्द्र की पूजा करने लगे।

राजा ने सचेतन पर्वत के उत्पात से शुक्तिमती नदी को बचाया था, इस कारण उस (नदी) ने उस पर्वत के संयोग से उत्पन्न अपने एक पुत्र और गिरिका नामक सुन्दरी कन्या को लाकर राजा को सौंप दिया। राजा ने गिरिका को अपनी रानी बनाया। एक बार ऋतु-स्नान करके गिरिका पुत्र के लिए राजा के पास आई। पर उसी समय पितृगण ने पवित्र मृग के मांस के लिए राजा को वन में भेजा। राजा वन में चला तो गया, पर गिरिका की सुन्दर आकृति उसकी आँखों के सामने नाचती रही। अन्त में एक सुन्दर स्थान में वह आपे से बाहर हो गया। उसने अपने अंश को एक दोने में रखकर अपने बाज़ के द्वारा गिरिका के पास भेजा। पर रास्ते में दूसरे बाज़ ने उस दोने को मांस समझकर छीनना चाहा। दोनों में छीना-झपटी हुई। दोना नीचे एक नदी में गिर गया।

उस नदी में अद्रिका नामक अप्सरा शाप के कारण मछली के रूप में रहती थी। वह मछली दोने के अंश को निगल गई। दस महीने बाद मल्लाहों ने मछली पकड़ने के लिए जाल डाला। अद्रिका उसमें फँस गई। जब उसका पेट चीरा गया तो उसमें से एक बालक और एक कन्या निकले। राजा उपरिचर ने बालक को तो ले लिया और कन्या को मल्लाहों के मुखिया को दे दिया। वह बालक मत्स्य नामक प्रतापी राजा हुआ। कन्या का नाम मत्स्योदरी पड़ा। बड़ी होने पर वह अपने पालक-पिता के कहने से नाव-द्वारा यात्रियों को नदी के पार उतारा करती थी। एक बार महातपस्वी पराशर ऋषि नाव पर चढ़े। कन्या का रूप देख उनका मन डोल गया। उन्होंने कन्या से कहा—"तुम्हारे रूप ने मुझे व्याकुल कर दिया है। अब तुम मेरी इच्छा पूरी करो!"

कन्या ने कहा—"नदी के तीर पर खड़े हुए लोग सब बातें देख रहे हैं। दूसरे मैं अभी कुमारी हूँ। क्या करूँ?"

पराशर ऋषि ने कुहरा उत्पन्न करके नाव को सब की दृष्टि से छिपा दिया। फिर कन्या को वरदान दिये कि तुम्हारे शरीर से मछली की गंध के स्थान पर सुगंध निकलेगी और तुम्हारा कन्याभाव बना रहेगा।

कन्या ने ऋषि की इच्छा पूरी की। उनके प्रभाव से

उसके एक अत्यंत तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ, जो जन्म लेते ही वन में तप करने चला गया। आगे चलकर वही भगवान वेदव्यास के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने जगत् के कल्याण के लिए वेद के चार भाग किये और महाभारत-संहिता रचकर उसे पाँचवें वेद की तरह प्रकाशित किया।

पराशर ऋषि के आशीर्वाद से सत्यवती के शरीर से सुगंध निकलने लगी। इस कारण उसका नाम गन्धवती पड़ा और चूँकि उसके शरीर की सुगंध एक योजन (चार कोस) तक फैलती थी, इस कारण उसका दूसरा नाम योजनगंधा हुआ।

अध्याय ६४

ब्राह्मणों से क्षत्रियों की उत्पत्ति, देव-असुरों का मनुष्य होना

वैशम्पायनजी बोले—"परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी भर के क्षत्रियों का संहार किया था। क्षत्रिय-कुल को लुप्त होते देख क्षत्राणियों ने ऋषि-मुनियों से वंश चलाया। फिर चारों वर्ण धर्मपूर्वक रहने लगे। सब अपने-अपने धर्म के अनुसार चलते थे। कोई किसी को सताता न था।

इसी काल में देवगण से हारकर दैत्य-दानव गण पृथ्वी पर आये और मनुष्य-योनि में राजाओं, क्षत्रियों

के घर जन्म लेकर पृथ्वी का राज्य करने लगे। वे राजा बनकर अनेक प्रकार से प्राणियों को सताने और त्रास देने लगे। पृथ्वी उनके अन्याय-अत्याचार से दुखी होकर ब्रह्माजी की शरण में गई। उसे बहुत कुछ समझा-बुझाकर ब्रह्माजी ने विदा कर दिया। फिर देवगण को आज्ञा दी कि तुम पृथ्वी के दुखों को दूर करने लिए अपने-अपने अंश से अवतार लो। देवगण ने ब्रह्माजी की आज्ञा मान ली। बाद में सबके प्रार्थना करने पर विष्णु भगवान ने अवतार लेकर पृथ्वी का भार उतारने की प्रतिज्ञा की।

अध्याय ६५, ६६

दक्ष की कन्याओं के वंश

वैशम्पायनजी बोले—"ब्रह्मा के मरीचि, अत्रि, अंगिरा पुलस्त्य, पुलह और क्रतु नामक छः मानस-पुत्र हुए। मरीचि के पुत्र कश्यप ने दक्ष प्रजापति की अदिति, दिति, दनु, कला, सिंहिका, विनता, कद्रू आदि तेरह कन्याओं से असंख्य सृष्टि उत्पन्न की। अदिति से धाता, मित्र, अर्यमा, इन्द्र, वरुण, अंशु, भग, विवस्वान, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु नामक बारह आदित्य उत्पन्न हुए।

पुनः वैशम्पायनजी बोले—"ब्रह्मा के स्थाणु नामक पुत्र से मृग, व्याघ्र, साँप, निऋति, अजैकपोत, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, स्थाणु और भग नामक ग्यारह रुद्र उत्पन्न हुए। अंगिरा के बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त नामक तीन पुत्र। क्रतु से साठ हज़ार बालखिल्य ऋषि उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के दाहनें अँगूठे से दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के बायें अँगूठे से एक कन्या उत्पन्न हुई जिसका विवाह दक्ष से किया गया। दक्ष के ५० कन्याएँ हुईं जिनसे सारी सृष्टि चली। उनमें से दक्ष ने कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा और मति नामक दस कन्याएँ धर्म को; अश्विनी, भरणी आदि सत्ताइस कन्याएँ चंन्द्रमा को; और तेरह कन्याएँ कश्यप को दीं।

ब्रह्मा के हृदय से भृगु, भृगु से शुक्राचार्य और च्यवन उत्पन्न हुए। च्यवन के और्व, और्व के ऋचीक, ऋचीक के जमदग्नि और जमदग्नि के परशुराम हुए।

अध्याय ६७, ६८

अंशावतार, मनु का वंश

वैशम्पायनजी बोले—"विप्रचित्ति नामक राक्षस जरासंध हुआ, हिरण्यकशिपु शिशुपाल हुआ, प्रह्लाद का

छोटा भाई संह्लाद शल्य हुआ, अनुह्लाद धृष्टकेतु हुआ, सूक्ष्मासुर बृहद्रथ हुआ, कालनेमि कंस हुआ, कलि दुर्योधन हुआ, बृहस्पति द्रोण हुए, रुद्र कृपाचार्य हुए, मरुद गण सात्यकि, द्रुपद और विराट हुए, धर्म युधिष्ठिर हुए, वायु भीम हुए, इन्द्र अर्जुन और अश्विनीकुमार नकुल और सहदेव हुए।

कुन्ती वसुदेव की बहन और राजा शूरसेन की कन्या थी। कुन्तिभोज शूरसेन के मित्र थे। कुन्तिभोज ने कुन्ती को लेकर कन्या की तरह पाला। एक बार कुन्तिभोज के यहाँ दुर्वासा ऋषि आये। कुन्ती ने उनकी बड़ी सेवा की। ऋषि ने उसे देवताओं को बुलाने का एक मंत्र बतला दिया। कौतूहल से मंत्र की परीक्षा लेने के लिए कुन्ती ने सूर्य का आवाहन किया। सूर्य आये और उनके अंश से कुन्ती के पेट में बालक रहा गया। कुछ समय बाद बालक के उत्पन्न होने पर कुन्ती ने समाज के भय से उसे नदी में बहा दिया। अधिरथ नामक सूत ने उस बालक को पाकर पाल लिया और उसका नाम वसुषेण रक्खा। बड़े होने पर वही महापराक्रमी, दानी कर्ण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कर्ण की प्रतिज्ञा थी कि किसी माँगनेवाले को "नाहीं" न करूँगा। एक बार इन्द्र ब्राह्मण का वेष

बनाकर आये और उन्होंने कर्ण से कवच और कुण्डल माँगे। ये कवच और कुण्डल कर्ण के जन्म के साथ ही उत्पन्न हुए थे और कर्ण को वरदान था कि जब तक उनके पास ये कवच और कुण्डल रहेंगे तब तक उन्हें कोई न जीत सकेगा। वरदान की कुछ परवा न कर कर्ण ने कुण्डल उतार कर तथा अपने चमड़े को काट कर कवच निकाल कर उन्हें दान कर दिया। इन्द्र ने बदले में एक मनुष्य को मारनेवाली अमोघ शक्ति कर्ण को दी।

भगवान विष्णु श्रीकृष्ण जी के रूप में प्रकट हुए। लक्ष्मी के अंश से रुक्मिणी का और इन्द्राणी के अंश से द्रौपदी का अवतार हुआ।

पुनः वैशम्पायनजी बोले—"सूर्य से मनु और मनु से ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि मनुष्य हुए जो मानव कहलाये। मनु के इक्ष्वाकु आदि नौ पुत्र और इला नामक कन्या हुई। चंद्रमा के पुत्र बुध के संयोग से इला के पुरुरवा हुआ जिससे चंद्र-वंश चला। पुरुरवा के आयु, आयु के ययाति नामक पुत्र हुए। ययाति ने अपने छोटे पुत्र पुरु को राजा बनाया।

अध्याय ६९

कच और देवयानी

वैशम्पायनजी बोले—"देवगण ने बृहस्पति को और दानवों ने शुक्राचार्य को अपना आचार्य बनाया। युद्ध में जो दानव मर-कट जाता उसे शुक्राचार्य अपनी संजीवनी-विद्या से जिला देते थे। यह जानकर देवगण बहुत डरे और बृहस्पति के पुत्र कच से कहा—"तुम देवगण के कल्याण के लिए संजीवनी-विद्या सीख आओ। शुक्राचार्य जी अपनी सुन्दरी कन्या देवयानी को बहुत प्यार करते हैं। तुम देवयानी को किसी तरह से प्रसन्न करलो तो उसके कहने से शुक्राचार्यजी तुम्हें संजीवनी-विद्या सिखला देंगे।

कच शुक्राचार्यजी के यहाँ जाकर रहने लगे। कुछ समय बीतने पर कच के नाचने, गाने, बजाने, हर तरह की सेवा करने और भेंट देने पर देवयानी प्रसन्न हो गई। संजीवनी-विद्या के मिलने का मार्ग सरल हो गया।

दानवों को इसका पता चला। वे नहीं चाहते थे कि कच संजीवनी-विद्या पढ़कर देवगण को जिला दिया करे। उन्होंने उसे मारकर भेड़ियों को खिला दिया। कच के मरने पर देवयानी ने विलाप करते हुए अपने पिता से कह दिया कि बिना कच के मैं जीवित नहीं रह सकती।

अपनी कन्या का दुःख न देख सकने के कारण शुक्राचार्य जी ने संजीवनी-विद्या से कच को जिला दिया। देवयानी प्रसन्न हो गई। दूसरी बार दानवों ने कच को मारकर समुद्र में घोल दिया। देवयानी के कहने से शुक्राचार्य ने उसे फिर जिला दिया। तब दानवों ने कच को जलाकर मदिरा के साथ शुक्राचार्यजी को पिला दिया। कच के बिना देवयानी के प्राण निकलने लगे। शुक्राचार्य ने उसे बहुत समझाया; बतलाया कि बड़े-बड़े देवता, गंधर्व आदि उसके साथ विवाह करने को तरस रहे हैं। पर देवयानी का शोक दूर न हुआ। अन्त में शुक्राचार्यजी ने कहा कि कच के जिलाने से मैं मर जाऊँगा। तब देवयानी ने कहा कि आप कच को जिलाकर संजीवनी-विद्या सिखला दीजिये। फिर वह आपको जिला देगा।

लाचार होकर शुक्राचार्यजी ने कच को जिलाकर संजीवनी-विद्या सिखला दी। कच उनके शरीर से निकल आया। फिर उसने अपने गुरु शुक्राचार्यजी को जिला लिया। शुक्राचार्यजी उसकी कृतज्ञता से प्रसन्न हो गये। उन्होंने दानवों को बुलाकर कह दिया कि कच उनका शिष्य है, वे उसे सताना छोड़ दें। तब देवयानी और कच बहुत आनन्दित हो उठे।

अध्याय ७०

कच और देवयानी, दोनों को शाप

कुछ समय तक गुरु को अपनी सेवा और ब्रह्मचर्य से प्रसन्न करके कच अपने पिता के पास चलने को तैयार हुआ। यह देख, देवयानी के प्राण विकल हो उठे। उसने कच को बहुत तरह से समझाया कि तुम मुझसे विवाह कर लो, पर कच गुरु-कन्या के साथ विवाह करने को राज़ी न हुआ। जब देवयानी सब प्रकार से समझाकर हार गई, तब उसने शाप दिया कि कच को संजीवनी-विद्या सिद्ध न हो। कच ने भी शाप दिया कि तेरा विवाह ऋषि-पुत्र से न हो।

स्वर्ग में लौटने पर इंद्रादि देवगण ने कच का बड़ा आदर-सत्कार किया। कच ने सब को संजीवनी-विद्या सिखला दी।

अध्याय ७१

शर्मिष्ठा और देवयानी का झगड़ा

एक बार देवयानी दानवों के राजा वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा के साथ वनविहार करने गई। वहाँ एक तालाब पर सबने अपने-अपने वस्त्र छोड़कर जलक्रीड़ा

की। स्नान के बाद वस्त्र पहिनते समय शर्मिष्ठा ने धोखे से देवयानी के कपड़े पहिन लिये। इस पर दोनों में झगड़ा हो गया। शर्मिष्ठा ने देवयानी को भिखमंगे की पुत्री कहकर गाली दी और उसे एक कुएँ में ढकेलकर वह अपने महल को चली गई।

कुछ समय बाद वहाँ राजा ययाति शिकार खेलते हुए आये। उन्होंने हाथ पकड़कर देवयानी को कुएँ से निकाला। ययाति के चले जाने पर देवयानी वहीं, वन में, बैठी रही। शुक्राचार्य को जब देवयानी के रूठने की बात मालूम हुई तो वे दौड़े आये। उन्होंने उसे बहुत समझाया। उन्होंने कहा कि तू भिखमंगे की पुत्री नहीं है। सब मेरी स्तुति करते हैं, मुझी से माँगते हैं। मैं किसी से कुछ नहीं माँगता।

अध्याय ७२

शुक्र-देवयानी-संवाद

पुनः शुक्राचार्यजी बोले—हे देवयानी! जो अपनी निन्दा सुनकर उसे शान्तिपूर्वक सहन कर लेता है, वह सब को जीत लेता है। जो क्रोध के वेग को रोक लेता है वही सच्चा जितेन्द्रिय है। जो औरों के द्वारा सताये जाने

पर भी शत्रु को कुछ नहीं कहता, उससे बदला नहीं लेता, वही सच्चा पुरुषार्थी है। उसी को धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्राप्त होते हैं। जो सौ वर्ष तक प्रतिदिन विधिपूर्वक यज्ञ करता है, उससे भी श्रेष्ठ वह पुरुष माना जाता है जो क्रोध नहीं करता। यदि बालक आपस में लड़ पड़ें, तो उस झगड़े में पड़कर बड़ों का आपस में वैर-विरोध करना उचित नहीं होता।

देवयानी ने कहा—मैं धर्म के मर्म और अक्रोध तथा क्षमा के अन्तर को भली भाँति समझती हूँ। ये आपके शिष्य अब शिष्य के ऐसा उचित व्यवहार नहीं करते। इस कारण मैं अब इनके यहाँ न रहूँगी। जो चरित्र और कुलीनता का आदर करना नहीं जानते उनके यहाँ रहना उचित नहीं होता। विपत्ति या संकट में पड़कर धनी शत्रु की सेवा करने से बढ़कर कठिन काम दूसरा नहीं है। इससे अच्छा तो मर जाना है।

अध्याय ७२

कुल को नाश से बचाने के लिए शर्मिष्ठा का दासी होना

वैशम्पायनजी बोले—अपनी प्रिय पुत्री के अपमान से शुक्राचार्यजी को भी क्रोध आ गया। उन्होंने वृषपर्वा से

जाकर कहा—अधर्म धीरे-धीरे बढ़कर अधर्म करनेवाले का नाश करता है। प्रायः पिता के अधर्म का फल पुत्र को और आजा के अपकर्म का फल पोते को भोगना पड़ता है। तुम लोगों ने मेरे शिष्य कच को कई वार मार डाला था। तुम्हारी वेटी ने मेरी पुत्री को मार डालने में कोई वात उठा न रक्खी थी। ऐसी दशा में अव मैं भी यहाँ न रहूँगा।

यह सुनकर दानवगण और उनके राजा वृषपर्वा बहुत घवराये। अन्त में सबके बहुत समझाने पर देवयानी इस शर्त पर दानवों की राजधानी में जाने को राजी हुई कि शर्मिष्ठा अपनी दो हजार सहेलियों के साथ उसकी दासी होकर जीवन भर उसकी सेवा करें। इसी में अपनी जाति की भलाई समझकर अन्त में राज-कन्या शर्मिष्ठा ने देवयानी की सेवा करना स्वीकार कर लिया।

अध्याय ७४, ७५

देवयानी का विवाह, शर्मिष्ठा के पुत्र

कुछ समय बाद राजा ययाति फिर उसी वन में शिकार के लिए आये। देवयानी ने उनसे कहा—"आपने मेरा हाथ पकड़ा है, इस कारण आप मेरे पति हो चुके।

आपको छोड़कर मैं दूसरे से विवाह न करूँगी। इस भ्रम में न रहें कि आप ब्राह्मण-कन्या से विवाह नहीं कर सकते। इस प्रकार के संयोग चल चुके हैं। इसमें दोष नहीं है।"

ययाति राज़ी हो गये। शुक्राचार्यजी ने देवयानी को प्रसन्न रखने के लिए उसका विवाह राजा ययाति से कर दिया। अपनी जाति के कल्याण के विचार से शर्मिष्ठा दो हज़ार सखियों के साथ उसकी सेवा के लिए दासी बनकर देवयानी के साथ चली गई।

देवयानी रानी हुई। कुछ समय विहार करने पर उसके पुत्र हुआ। शर्मिष्ठा की भी विहार करने और पुत्र पाने की लालसा जग उठी। एक बार एकान्त में उसने राजा ययाति से बहुत कुछ प्रार्थना करने के बाद कहा—"आप मुझे पुत्र दीजिये। आप मेरी सखी के पति हैं, इस कारण आप मेरे भी पति हैं। मैं देवयानी की दासी हूँ और आप देवयानी के पति हैं, इस कारण मैं भी आपके भोग की वस्तु हूँ। आपका मुझ पर पूरा अधिकार है। मेरे साथ विहार करने में कोई दोष नहीं है।"

राजा ने कहा—"मैं शुक्राचार्यजी से प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि मैं तुम्हें अपने पास न सुलाऊँगा। तुम्हीं बतलाओ, वचन कैसे तोड़ूँ!"

शर्मिष्ठा ने कहा—"हँसी में, विवाह आदि के समय,

स्त्री के बारे में, प्राणों पर और सम्पत्ति पर संकट आने पर झूठ बोलना बुद्धिमानों द्वारा पाप नहीं माना जाता। यही शास्त्र की मर्यादा है। आपको मेरे साथ विहार करने में कोई पाप न लगेगा।"

शर्मिष्ठा के बहुत समझाने और पीछे पड़ जाने पर राजा मान गये। कुछ समय चुपके-चुपके छिपकर विहार करने पर शर्मिष्ठा के एक पुत्र हुआ।

अध्याय ७६, ७७, ७८

ययाति को शाप, पुत्र से जवानी लेना

यह बात देवयानी को मालूम हुई। किन्तु पूछने पर शर्मिष्ठा ने यह कहकर बात टाल दी कि एक ऋषि से मैंने यह पुत्र प्राप्त किया है। शर्मिष्ठा के द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र हुए और देवयानी के यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र। बहुत समय बीतने पर देवयानी को मालूम हो गया कि ययाति से ही शर्मिष्ठा के तीनों पुत्र हुए हैं। तब वह कोप करके अपने पिता के पास चली गई। राजा उसे मनाने के लिए ससुराल गये। शुक्राचार्यजी ने राजा को शाप दिया कि तू बूढ़ा हो जा। राजा वृद्ध हो गये। फिर राजा

के बहुत प्रार्थना करने पर शुक्राचार्यजी ने वर दिया कि यदि कोई तुम्हें अपनी जवानी दे दे, तो तुम फिर जवान हो सकते हो।

राजा ययाति ने घर लौटकर अपने पुत्रों से जवानी माँगी। किन्तु उनके चारों बड़े पुत्रों ने अपनी जवानी देने से इनकार कर दिया। ययाति उन्हें शाप देकर अपने सबसे छोटे पुत्र पुरु के पास गये। पुरु सब बातें सुनकर अपने पिता को अपना जीवन तक देने को तैयार हो गया। राजा ने उसकी जवानी ले ली और आशीर्वाद दिया कि तुम्हें राज्य प्राप्त होगा।

अपने छोटे पुत्र की जवानी लेकर राजा ययाति ने बहुत दिनों तक देवयानी, शर्मिष्ठा, अप्सरा विश्वाची आदि से दिल खोलकर विहार किया। पर उन्हें तृप्ति न हुई। अन्त में उन्हें ज्ञान हो गया कि भोगविलास से तृप्ति नहीं हो सकती। तब उन्होंने पुरु को उसकी जवानी लौटा दी और उसे राजगद्दी पर बैठाकर आप तप करने चले गये। दूसरे पुत्र बड़े थे, पर पिता की आज्ञा न मानने से उन्हें राजगद्दी न मिल सकी। यदु के वंश में यादव, तुर्वसु के वंश में यवन, अनु के वंश में म्लेच्छ और द्रुह्यु के वंश में भोज हुए। पुरु के वंश में पौरव हुए।

अध्याय ७६, ८०, ८१

ययाति की स्वर्गयात्रा

वैशम्पायनजी बोले—ययाति ने घोर तप करके स्वर्ग प्राप्त कर लिया। पर इन्द्र ने उन्हें वहाँ बहुत दिन तक न रहने दिया। इसका विस्तारपूर्वक वर्णन इस प्रकार है।

राजा ययाति ने घोर तप करके स्वर्ग प्राप्त किया। स्वर्ग में देवगण ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। वे मरुद्गण, वसुगण आदि के साथ सुख से रहने और ब्रह्मलोक आदि में आनन्द से विचरण करने लगे। एक दिन देवराज इन्द्र के पूछने पर उन्होंने कहा—"मैंने आज्ञापालन करने के कारण अपने छोटे पुत्र पुरु को भरतखण्ड का राज्य दे दिया और उसके हित के लिए बतलाया कि क्रोध करना सबसे खराब बात है। जो सबकी बातें सह लेता है वही सब से श्रेष्ठ होता है। जीवों पर दया, सबसे मित्रता, दान और मीठी बातों से बढ़कर वशीकरण का दूसरा उपाय नहीं है। पूज्य पुरुषों की पूजा करने और किसी से कुछ न माँगने से ही मनुष्य को ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

इन्द्र ने कहा—"आपने अपने सभी कर्त्तव्य पूरे करने के बाद वन में तप किया था। अब यह बतलायें कि

आपने किसके समान तपस्या की थी ?"

ययाति ने गर्व में भरकर उत्तर दिया—"देवता, महर्षि, गंधर्व आदि कोई भी मुझे तपस्या में अपने बराबर नहीं देख पड़ता।"

इन्द्र ने कहा—"तुमने औरों का प्रभाव जाने बिना ही अपने को सबसे श्रेष्ठ बतलाकर दूसरों का अपमान किया है। इस कारण तुम्हारा पुण्य क्षीण हो गया। इसलिए अब तुम यहाँ से नीचे गिरोगे। किन्तु तुम सज्जनों के बीच रहकर अच्छी गति और प्रतिष्ठा पाओगे। अब कभी किसी का अपमान न करना।"

इन्द्र के इतना कहते ही ययाति स्वर्ग से नीचे गिरे। उन्हें इस प्रकार गिरते देख आश्चर्य से चकित हो धर्मपरायण राजर्षि अष्टक ने ययाति से उनका नाम तथा गिरने का कारण आदि पूछा।

अध्याय ८२

ययाति का अपना अनुभव बतलाना

ययाति ने आदि से अन्त तक सब बातें बतला कहा—"नम्र रहकर मनुष्य को पुण्य करना चाहिए। अभिमान कभी न करना चाहिए, क्योंकि अभिमान से ह

सब पुण्य नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य को गर्व के कारण सब तरह की यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। मैंने सबको जीतकर पृथ्वी पर साम्राज्य स्थापित किया था। फिर घोर तप करके मैंने स्वर्ग प्राप्त किया और दस हज़ार वर्ष तक मैं इन्द्र की पुरी में रहा। वहाँ से मैं दिव्य ब्रह्मलोक में गया और वहाँ दस हज़ार वर्ष तक सुख भोगा। वहाँ से मैं कैलाश में गया। कैलाश से मनमाना रूप रखने की शक्ति पाकर नन्दन वन में गया और वहाँ दस हज़ार शताब्दी तक मैं अप्सराओं के साथ विहार करता रहा। इसके बाद पुण्यक्षीण होने पर गिर गया। गिरते समय भी मैंने सज्जनों के बीच में पहुँचने की इच्छा की थी इसी कारण इन्द्र के बतलाने पर मैं आप लोगों के पास पहुँचा हूँ।"

अध्याय ८३, ८४

ययाति द्वारा चारों आश्रमों का वर्णन

वैशम्पायनजी बोले—"अष्टक के पूछने पर ययाति ने बतलाया कि जैसे निर्धन हो जाने पर मनुष्य को इष्ट-मित्र, स्वजन, सम्बन्धी सभी छोड़ देते हैं उसी तरह पुण्य-क्षीण होने पर प्राणी को सब देवगण छोड़ देते हैं।

पुण्यक्षीण होने पर प्राणी स्वर्ग से गिरकर पृथ्वीपर माता के गर्भ में जन्म लेता है। यही भौमनरक है। यहाँ उसे स्त्री-पुत्र, शत्रु-मित्र आदि से नाना प्रकार के कष्ट मिलते हैं। यही नरक की यातनाएँ हैं। पुण्यात्मा जीव पवित्र योनि में जन्म पाते हैं, किन्तु पापात्मा कीटपतंग आदि नीच योनियों में जाते हैं। जीव और देह ये दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं। देह को छोड़कर जीव दूसरे शरीर में जाता है। तपस्या, दान, शान्ति, इन्द्रियों और मन का वश में रखना (दमन), लज्जा, सरलता और दया ये स्वर्ग के सात द्वार कहे गये हैं। संसार में अभिमान से सब कुछ नष्ट हो जाता है। जो अभिमान छोड़कर परमात्मा का ध्यान करते हैं वे इस लोक में शान्ति और परलोक में सुख प्राप्त करते हैं।

अष्टक के आश्रमों के सम्बन्ध में पूछने पर ययाति बोले—"ब्रह्मचारी रहकर पहले विनीत, जितेन्द्रिय हो, धैर्य और सावधानी से गुरुकी सेवाकर विद्या पढ़ना चाहिए। फिर धर्मसे धन पैदा करके सब की सेवा तथा रक्षा करते हुए गृहस्थाश्रम को चलाना चाहिए। पापों से बच-कर दूसरों का हित करते हुए वाणप्रस्थाश्रम का निर्वाह करना चाहिए। अन्त में सब ओर से मन के विरक्त हो जाने पर सब को त्यागकर संन्यास लेना चाहिए।

संन्यासी चार प्रकार के होते हैं, कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस।

जो वन में रहकर गाँव की वस्तुओं के पाने और उन्हें काम में लाने का उद्योग नहीं करता, उसे कुटीचक कहते हैं। जो गाँव में रहकर अग्निहोत्र नहीं करता, एक स्थान पर नहीं रहता, केवल कोपीन पहनकर जीवन रखने भर को थोड़ा भोजन करता है उसे बहूदक कहते हैं। जो इच्छाओं को छोड़कर, जितेन्द्रिय हो, मौन धारण करता है उसे हंस कहते हैं। जो तप से शरीर को सुखाकर सुख-दुःख आदि द्वन्द्व भावों को जीत लेता है, उसे परमहंस कहते हैं। परमहंस इसी लोक में ब्रह्म में लीन रहता है।

अध्याय ८५, ८६

ययाति का फिर से स्वर्ग को जाना

वैशम्पायनजी बोले—"अष्टक के पूछने पर राजा ययाति ने बतलाया कि आप लोगों से बातें करने के लिए मैं अन्तरिक्ष में ठहर गया हूँ। बातें समाप्त होते ही पृथ्वी पर गिरकर फिर जन्म-मरण के फंदे में पड़ूँगा। आपने अक्षय पुण्य किया है, आपके लिए अनन्त लोक तैयार हैं।"

अष्टक ने कहा—"तब आप नीचे न गिरिये। मैं अपने धर्म और पुण्य से प्राप्त होनेवाले अपने सभी लोक आप को देता हूँ।" इसी प्रकार महात्मा प्रतर्दन, वसुमान, शिवि ने अपने-अपने पुण्य-कर्मों से प्राप्त होने वाले दिव्य लोक ययाति को देने के लिए कहा। पर अपने को क्षत्री समझकर राजा ययाति ने किसी के लोकों को लेना स्वीकार न किया। तब अष्टक आदि ने उन्हें अपना पुण्य देना चाहा। पर ययाति ने उसे भी लेना स्वीकार न किया।

तब वसुमान ने अपने पुण्य से उपार्जित लोकों को यह कहकर देना चाहा कि यदि आप बिना कुछ दिये हम लोगों से कुछ लेना स्वीकार नहीं कर सकते, तो एक तिनका देकर बदले में हमारे पुण्य को मोल ले लीजिये। ययाति ने कहा कि मैं ऐसा झूठा सौदा नहीं कर सकता। तब वसुमान, अष्टक, शिवि आदि सबने मिलकर अपने-अपने लोक ययाति को दे दिये। पर ययाति किसी से कुछ लेना स्वीकार न किया। उन सब के इस धर्माचरण के कारण अन्त में स्वर्ग से पाँच दिव्य रथ आये और ययाति-सहित सब उन पर चढ़कर दिव्यलोकों में चले गये। राजा ययाति अष्टक के नाना थे। नाती के कारण ही उनको सद्गति प्राप्त हुई।

अध्याय ८७

ययाति का वंश

वैशम्पायनजी बोले—"महाराज पुरु ने धर्मपूर्वक राज्य किया। उनके प्रवीर, ईश्वर और रौद्राश्व नामक तीन पुत्र हुए। प्रवीर के मनस्यु, मनस्यु के शक्त, संहनन और वाग्मी नामक तीन पुत्र हुए। रौद्राश्व के अन्वग्भानु, उनके ऋचेयु, ऋचेयु के अनाधृष्टि, अनाधृष्टि के मतिनार उनके तंसु, तंसु के ईलिन, ईलिन के दुष्यन्त, शूर, भीम, प्रवसु और वसु नामक पाँच पुत्र हुए। दुष्यन्त के—शकुन्तला के गर्भ से—भरत हुए, जिनसे भरत-वंश चला।

अध्याय ८८, ८९, ९०

शकुन्तला और दुष्यन्त की कथा

वैशम्पायनजी बोले—"दुष्यन्य बड़े प्रतापी राजा हुए। समुद्र पर्यन्त म्लेच्छ आदि देश उनके अधीन थे। उनके राज्य में सब सुखी थे, सब अन्न, धन, जन, रत्न आदि से भरे-पूरे थे। सब अपने-अपने धर्म पर दृढ़ रहते थे। राजा बड़े विद्वान, गुणवान, पराक्रमी और बड़े सुन्दर थे। उनसे सभी संतुष्ट रहते थे।

एक बार वे चतुरंगिणी सेना लेकर वन में शिकार

खेलने के लिए गये। वन में पहुँचकर राजा ने अपनी सेना के साथ जंगली पशुओं का शिकार किया। असंख्य जंगली हिरन, हाथी, बाघ, चीते, भालू आदि मारे गये। शिकार करते-करते सब थक गये।

शिकार खेलते हुए राजा अपने एक अनुचर के साथ दूर एक आश्रम में जा पहुँचे। आश्रम की शोभा को देखकर राजा की आँखें तृप्त हो गईं। वह महर्षि कण्व का आश्रम था। दुष्यन्त राजसी ठाठ छोड़कर अपने पुरोहित के साथ कण्व का दर्शन करने आश्रम के अन्दर गये। आश्रम में कहीं वेदपाठ चल रहा था, कहीं वेद-वेदांग आदि का पठन-पाठन हो रहा था, कहीं शास्त्रार्थ, कहीं व्याख्या, कहीं अग्निहोत्र, कहीं यज्ञ, कहीं जप, कहीं ध्यान-धारणा आदि चल रहे थे।

अध्याय ६१, ६२

शकुन्तला के जन्म की कथा

वैशम्पायनजी बोले—राजा अकेले आगे बढ़े। महर्षि कण्व आश्रम में नहीं थे। एक अपूर्व सुन्दरी कन्या ने राजा का अतिथि-सत्कार किया। उसने उनके हाथ-पैर धुलाये, उन्हें उत्तम आसन पर बैठालकर कन्द-

मूलफल खिलाये। फिर पूछा—"मैं आपकी और क्या सेवा करूँ? मैं महर्षि कण्व की पुत्री हूँ?"

राजा उसके रूप पर मोहित हो रहे थे। पूछा—बाल-ब्रह्मचारी महर्षि कण्व की पुत्री कैसे?

युवती ने कहा—मेरा नाम शकुन्तला है। मेरा जन्म ब्रह्मर्षि विश्वामित्र और मेनका से हुआ है। मेनका अप्सरा ने देवराज इन्द्र के कहने से विश्वामित्र जी के तप में विघ्न डालकर मुझे जन्म दिया है। एक बार विश्वामित्रजी घोर तप करने लगे। इन्द्र ने डरकर मेनका को विघ्न डालने के लिए भेजना चाहा। मेनका ने कहा—मैं आप की आज्ञा पालन तो करूँगी। किन्तु मुझे ऋषि के शाप से बचाने का उपाय कीजिये। विश्वामित्र के स्वभाव को तो आप जानते ही हैं। उनसे सब डरते हैं। एक बार जब घोर अकाल पड़ा था, तब मतंग (त्रिशंकु) ने विश्वामित्र की स्त्री को अन्न देकर पाला था। बदले में विश्वामित्र ने मतंग को स्वर्ग-प्राप्ति के लिए यज्ञ कराया था। जब आपने त्रिशंकु को स्वर्ग से ढकेल दिया था तब क्रोधकर विश्वामित्र ने दूसरे स्वर्ग और सृष्टि की रचना की थी।

शकुन्तला ने पुनः कहा—इन्द्र ने बहुत समझाया, बहुत दिलासा दी। तब मेनका विश्वामित्र के आश्रम में

गई। बहुत प्रयत्नकर उसने विश्वामित्र को डिगा पाया। बहुत दिन तक विश्वामित्र उससे विहार करते रहे। अन्त में मेनका के गर्भ से एक कन्या का जन्म हुआ। मेनका उसे वन में फेंककर स्वर्ग को चली गई।

वन में उस कन्या की रक्षा शकुन्त पक्षियों ने की थी, इसी से उसका नाम शकुन्तला पड़ा। कण्व ऋषि शकुन्तला को वन से उठा लाये और उसको अपनी कन्या मानकर उन्होंने उसका पालन किया। वही कन्या मैं हूँ और इसी से वे मेरे पिता हैं।

अध्याय ६३

दुष्यन्त-शकुन्तला का विहार, सर्व-दमन भरत

दुष्यन्त ने शकुन्तला को गान्धर्व विवाह करके विहार करने के लिए राज़ी कर लिया। शकुन्तला राज़ी हो गई। विहार करके राजा अपनी राजधानी को चले गये। जाते समय वचन दे गये कि तुम्हें जल्दी ही रनिवास में बुला लेंगे। विवाह के पहले शकुन्तला ने राजा से प्रतिज्ञा करा ली थी कि उसके पेट से जो बालक जन्म लेगा वही राज्य का अधिकारी होगा।

कुछ समय बाद कण्व अपने आश्रम को लौटे। उन्हें सब हाल मालूम हुआ। शकुन्तला को उनकी नाराज़ी

का भय था। पर ऋषि रुष्ट न हुए। शकुन्तला के प्रार्थना करने पर उन्होंने वर दिया कि तेरा पुत्र चक्रवर्ती होगा।

अध्याय ६४

दुष्यन्त की परीक्षा, शकुन्तला का रानी होना

समय बीतता गया। शकुन्तला के एक सुन्दर, तेजस्वी बालक हुआ। उसके हाथ में चक्र का चिह्न था। कण्व आदि ऋषि-मुनियों ने उसके जात-कर्म आदि संस्कार किये। चन्द्रकला की भाँति बढ़कर बालक छः वर्ष का हो गया। वह आश्रम में घूमता; सिंह, व्याघ्र, हाथी तथा गेंड़ा आदि को वह सहज में पकड़ लेता और उनसे तरह-तरह के खेल करता। उसके बल-पराक्रम के सामने सभी को हार माननी पड़ती। उसे सबका दमन करते देख ऋषि-मुनियों ने उसका नाम सर्वदमन रख दिया।

बालक को बढ़ते देख महर्षि कण्व ने शकुन्तला को राजा दुष्यन्त के पास हस्तिनापुर भेज दिया। कण्व के शिष्य उसे राजा की सभा में पहुँचाकर लौट गये। शकुन्तला ने दुष्यन्त को प्रणाम करके कहा—आपने महर्षि कण्व के आश्रम में मुझ से गान्धर्व विवाह किया

था। उसके फल-स्वरूप आपके अंश से सुन्दर, परमप्रतापी आपका यह पुत्र उत्पन्न हुआ है। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अब आप इसे अपना युवराज बनाइये।

राजा को सब कुछ याद था। पर ऊपर से आश्चर्य और क्रोध दिखलाकर उन्होंने कहा—"तू दुष्टा है। मुझे तुझसे मिलने और ऐसी कोई प्रतिज्ञा करने की कोई भी बात याद नहीं पड़ती। तेरा जहाँ मन चाहे, तू चली जा।"

राजा के वचन सुनकर शकुन्तला के सरपर मानो वज्र टूट पड़ा हो। कुछ देर तक तो उसे तन-बदन की सुधि न रह गई। बाद में सचेत होकर उसने क्रोध से काँपते हुए कहा—आप सब जान-समझकर भी इस तरह भुलावा दे रहे हैं, यह आपको शोभा नहीं देता। आप यह न समझें कि अकेले में आपके साथ मेरा विवाह हुआ था, इस कारण कोई साक्षी नहीं है। आपके अन्तरात्मा में बैठा हुआ सर्वव्यापी ईश्वर इसका साक्षी है। आपका आत्मा स्वयं आपको कोस रहा है। फिर सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल, हृदय, यमराज, दिन, रात, धर्म आदि सदा प्रत्येक प्राणी के कर्मों को देखा करते हैं। आप इनसे कुछ भी छिपा नहीं सकते।

अपनी बातों का असर होते न देख शकुन्तला ने

अपने लाल-लाल नेत्रों से दुष्यन्त को मानो भस्म करते हुए कहा—"मैं आपकी विवाहिता धर्मपत्नी हूँ। आप मेरा इस प्रकार निरादर करके सुखी नहीं रह सकते। पत्नी पुरुष का आधा अंग होती है। पत्नी से ही मनुष्य को सुख, सौभाग्य, धर्म और मोक्ष प्राप्त होते हैं। पत्नी ही पुरुष की सबसे बड़ी हितू, मित्र, सेविका और प्रेम-भक्ति करनेवाली होती है। विना स्त्री के पुरुष को शान्ति-सन्तोष नहीं मिल सकते। अपनी पत्नी में अपने अंश से पुत्र उत्पन्न करके पुरुष अपना और अपने पूर्व पुरुषों का उद्धार करता है, अपने वंश की रक्षा करता है। स्त्री से ही सृष्टि चलती है। ऐसी पत्नी का अपमान करना घोर पाप है। आप अपने इस पुत्र को ग्रहण कीजिये। इससे आपके वंश का प्रताप बढ़ेगा। संसार में पुरुष के लिए पुत्र से बढ़कर प्यारी और दूसरी वस्तु नहीं हो सकती। पुत्र पिता का प्रतिबिम्ब होता है। आप इसे गोद में लेकर अपने हृदय को शीतल करें।"

शकुन्तला ने राजा को बहुत समझाया, पर राजा ने उसे और उसके पुत्र को ग्रहण करना स्वीकार न किया। वे यही कहते रहे कि न तो यह मेरा पुत्र है और न तेरे साथ कभी का मेरा परिचय ही है। तू सरासर झूठ बोल कर मुझे धोखा देना चाहती है।

अन्त में शकुन्तला हारकर वहाँ से वापस जाने लगी। इसी समय उस स्थान पर उपस्थित सभी मनुष्यों को आकाशवाणी सुन पड़ी—"महाराज दुष्यन्त! यह तुम्हारा पुत्र है और शकुन्तला तुम्हारी विवाहिता पत्नी। तुम इनका अनादर मत करो। देवगण के कहने से तुम इसका भरण-पोषण करो। आज से तुम्हारे पुत्र का नाम भरत होगा।"

आकाशवाणी को सुनकर सब आश्चर्य करने लगे। राजा ने प्रसन्न होकर शकुन्तला और उसके पुत्र को स्वीकार करते हुए कहा—मुझे विवाह की बात भूली न थी। किन्तु यदि मैं पहले ही पुत्र अथवा अपनी विवाहिता पत्नी को स्वीकार कर लेता तो प्रजा में न जाने कैसी-कैसी बातें उठतीं। इसी से मैंने पहले वैसा कठोर रूप बनाया था।"

इस पर सब प्रसन्न हो गये। राजा ने शकुन्तला को रानी बनाया और अपने पुत्र भरत को युवराज के पद पर अभिषिक्त कर दिया।

अध्याय ९५

भरत और भरत-वंश

महाराज दुष्यन्त के अनन्तर उनके परम प्रतापी पुत्र भरत राजगद्दी पर बैठे। भरत सब देशों के राजा-महाराजाओं को जीतकर चक्रवर्ती सम्राट हुए। उन्होंने महर्षि कण्व को अपना पुरोहित बनाया और अनेक प्रकार के यज्ञ-याग करके उन्हें (कण्व को) हज़ार पद्म सोने के सिक्के दान-दक्षिणा में दिये। भरत के तीन रानियों से नौ पुत्र उत्पन्न हुए, पर कोई भी पुत्र उन्हें अपने ऐसा न जँचा। इससे दुखी हो रानियों ने अपने पुत्रों की हत्या कर डाली। वंश को चलाने के लिए भरद्वाज ऋषि की कृपा से भरत के भुमन्यु नामक पुत्र प्राप्त हुआ। महाराज भरत के कारण ही उनके वंश का नाम भरत-वंश पड़ा।

भरत के पुत्र राजा भुमन्यु हुए। भुमन्यु के सुहोत्र, सुहोत्र के अजमीढ़, अजमीढ़ के ऋक्ष, दुष्यन्त, परमेष्ठी, जह्नु, व्रजन और रूपी नामक पुत्र हुए। दुष्यन्त और परमेष्ठी से पाञ्चाल देश के राजाओं के वंश चले। जह्नु के वंश में कुशिक हुए। सब से बड़े ऋक्ष थे, इसीसे वे ही अजमीढ़ के सिंहासन पर बैठे। ऋक्ष के पुत्र संवरण हुए, जिन से राजा जनमेजय का वंश चला। संवरण के राज-काल

में अकाल, महामारी आदि से प्रजा नष्ट हो गई। इसी अवसर पर पाञ्चाल देश से शत्रुओं ने चढ़ाई कर दी। अपने राज्य को छोड़कर संवरण सिन्धु नदी के उस पार पहाड़ों के बीच में जाकर रहने लगे। बहुत दिनों बाद वशिष्ठजी ने संवरण की प्रार्थना पर राज-पुरोहित होना स्वीकार किया और तदनन्तर राज-पुरोहित होकर राजा का अभिषेक किया। वशिष्ठजी की नीति के कारण संवरण ने अपने सभी शत्रुओं को हराकर फिर से अपना राज वापस पा लिया।

संवरण की रानी तपती सूर्य की कन्या थीं। उनके कुरु नामक अत्यन्त तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। कुरु ने जांगल प्रदेश में तप किया था इसीसे उसका नाम कुरु-जांगल और कुरुक्षेत्र पड़ गया था। कुरु के पुत्र अविक्षित, उनके परीक्षित, फिर उनके वंश में प्रतीप परम प्रतापी और प्रसिद्ध हुए। प्रतीप के देवापि, शान्तनु और बाह्लीक नामक तीन पुत्र हुए। देवापि ने संन्यास ले लिया।

शान्तनु के गंगा से देवव्रत भीष्म और सत्यवती से चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक पुत्र उत्पन्न हुए। चित्रांगद के गन्धर्व द्वारा मारे जाने पर विचित्र-वीर्य सिंहासन पर बैठे, किन्तु कुछ समय बाद रोग से वे परलोक को सिधार गये। तब सत्यवती के कहने से

व्यासदेव ने उनकी रानियों में धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया। धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुए। पाण्डु के कुन्ती से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा माद्री से नकुल और सहदेव नामक पुत्र उत्पन्न हुए, जो पाण्डव कहलाये। पाण्डु की मृत्यु हो जाने पर दुर्योधन आदि पाण्डवों को कष्ट देने लगे। अन्त में युद्ध में पाण्डवों की विजय हुई। अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से वंश चला। अभिमन्यु के परीक्षित नामक पुत्र हुए। परीक्षित के जनमेजय और जनमेजय के शतानीक और शंकुकर्ण नामक पुत्र हुए। शतानीक के अश्वमेधदत्त नामक पुत्र हुए।

अध्याय ९७

गङ्गा और आठ वसु

वैशम्पायनजी बोले—इक्ष्वाकु वंश में महाभिषक् नामक महाप्रतापी राजा हुए। धर्मपूर्वक राज्य करने तथा हज़ार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ करने के कारण उन्हें ब्रह्मलोक प्राप्त हुआ। एक दिन ब्रह्मसभा में गंगा देवी आईं। वायु के कारण उनके शरीर से वस्त्र उड़ गया। और सबने तो यह देख सर नीचा कर लिया, पर

राजा महाभिषक् उसी ओर देखते रहे। ब्रह्माजी ने क्रोध-कर उन्हें शाप दिया कि तुम इस अपराध के कारण पृथ्वी पर जाकर कुछ दिन रहो और वहीं गंगा तुमसे मिले। शाप के कारण महाभिषक् को राजा प्रतीप का पुत्र शान्तनु होना पड़ा।

गंगा राजा के मन को चलायमान देख ब्रह्मलोक से चलकर भूलोक को जाने लगीं। राह में उन्हें अष्टवसु मिले। वसुओं को उदास देख गंगा ने कारण पूछा। वसुओं ने कहा—"नमस्कार न करने के कारण वशिष्ठजी ने हमें मृत्युलोक में जन्म लेने का शाप दिया है। अब तुम मृत्युलोक में चलकर हमें गर्भ में धारण करो, जिसमें हमें किसी मानवी स्त्री के गर्भ में न जाना पड़े। तुम जन्मते ही हमें जल में डाल देना, जिसमें हमें अधिक दिन तक पृथ्वी पर न रहना पड़े।"

गंगा ने उनकी बात स्वीकार करते हुए कहा—"किन्तु राजा शान्तनु का मुझमें गर्भाधान करना व्यर्थ न जाय,ऐसा भी कुछ निश्चय करना होगा।" वसुओं ने कहा—हम अपने आठवें अंश से पृथ्वी पर शान्तनु के पुत्र के रूप में रहेंगे। पर उस पुत्र के कोई सन्तान न होगी।

गंगाजी ने बात मान ली। सब अपने-अपने स्थान को चले गये।

अध्याय ९८

प्रतीप और गंगा, शान्तनु का जन्म

वैशम्पायनजी बोले—इधर सब का हित चाहनेवाले राजा प्रतीप गंगा (हर) द्वार में तप कर रहे थे। इसी बीच एक दिन परम सुन्दर, मनमोहन रूप धारणकर गंगाजी उनकी जाँघ पर आकर बैठ गईं और बोलीं—'मैं कामवश आपके पास आई हूँ। मेरी इच्छा पूरी कीजिये। मैं दिव्यकन्या हूँ, इस कारण पराई स्त्री नहीं हो सकती। आप मुझे स्वीकार कीजिये।' राजा ने कहा—'तुम मेरी दाहिनी जाँघ पर आकर बैठी हो। यह स्थान पुत्र-कन्या का है। मैं तुम्हें अपनी स्त्री तो नहीं बना सकता, पर पुत्रवधू अवश्य बना सकता हूँ।'

गंगा ने कहा—'आप धर्मज्ञ हैं। भरतवंश सबसे श्रेष्ठ है। मैं आपके पुत्र की स्त्री होना स्वीकार करती हूँ। किन्तु एक शर्त के साथ। मैं जो भी कार्य करूँ, उसमें आपके पुत्र कुछ पूछ-ताँछ न करें।'

गंगाजी के अन्तर्धान होने पर राजा प्रतीप अपनी स्त्री के साथ पुत्र के लिए तप करने लगे। वृद्धावस्था में उनके महाभिषक् नामक पुत्र हुआ। (उसके छूने से रोग शान्त हो जाते थे और प्रतीप के शान्त (निराश) होने के

अनन्तर उसका जन्म हुआ था, इस कारण उसका दूसरा नाम शान्तनु पड़ा ।) जवान होने पर शान्तनु से उनके पिता ने कहा कि तुम्हारे जन्म के पहले एक दिव्यकन्या मेरे पास आई थी । यदि वह तुम्हारे पास आये तो तुम उसकी इच्छा पूरी करना । पर कभी यह न पूछना कि तुम कौन हो ? क्या करती हो ? न उसके किसी काम में बाधा ही डालना ।

शान्तनु को राज्य देकर प्रतीप वन को चले गये । शान्तनु धर्मपूर्वक राज करने लगे । एक बार गंगातट के वन में शिकार खेलते समय उन्हें एक परम सुन्दरी युवती देख पड़ी । शान्तनु उस पर मोहित हो गये । तरुणी भी राजा पर अनुराग प्रकट करने लगी । शान्तनु ने उससे अपनी स्त्री होने की प्रार्थना की ।

अध्याय ६६

शान्तनु, गंगा और पुत्र-बध

वैशम्पायनजी बोले—शान्तनु को मुग्ध देख गंगा ने मुस्कराकर कहा—मैं आपकी इच्छा पूरी करूँगी । मैं सदा आपकी आज्ञा का पालन करूँगी, किन्तु आपको प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी कि मैं आपका चाहे कैसा भी

अच्छा-बुरा काम करूँ, पर आप न तो मुझे रोकेंगे और न कड़ी बात ही कहेंगे। जब आप मुझे किसी काम से रोकेंगे या कोई कड़ी बात कहेंगे तभी मैं आपको छोड़कर चली जाऊँगी। शान्तनु ने तदनुसार प्रतिज्ञा की। गंगा उनके साथ महलों में आकर रहने और विहार करने लगीं। गंगा के आचरण, सेवा-कार्य, रतिकला, प्रणय चातुरी, नृत्यगीत, हावभाव तथा रूप-गुण-कर्म से शान्तनु इतने संतुष्ट हुए कि वे संसार को भूल गये। उन्हें यह भान न रह गया कि कितना समय बीत गया। दीर्घकाल बीतने पर गंगा ने एक-एक करके आठ बालकों को जन्म दिया। पर हर बार उत्पन्न होते ही वे प्रत्येक बालक को गंगा की धारा में बहा आतीं। प्रतिज्ञा में बँधे रहने के कारण शान्तनु हर बार मन मसोसकर रह जाते। जब आठवें बालक को भी गंगा हँसती हुई पानी में फेंकने चलीं तब शान्तनु अपने को न रोक सके। उन्होंने प्रतिज्ञा तोड़ दी और गंगा से कहा—'तुम इस बालक को न मारो। बतलाओ, तुम किसकी कन्या हो? तुम्हारा नाम क्या है? पुत्रों की हत्या तुम क्यों करती हो? तुमको पुत्रों के मारने का घोर पाप लगा है।'

गंगा ने उत्तर दिया—'मैं गंगा हूँ। आठ वसुओं को शाप हुआ था। वे मेरे गर्भ से जन्म ले मनुष्य-योनि

में आना और तुरन्त मरकर शाप से छूटना चाहते थे।' इसी से मैं जन्मते ही पुत्रों को मार डालती थी। पर अब मैं इस आठवें बालक को न मारूँगी। तुम इसका नाम गंगदत्त रखना। यह बड़ा प्रतापी होगा। इससे तुम्हें महान् यश मिलेगा। पर तुमने मेरे काम में बाधा डाल-कर अपनी प्रतिज्ञा तोड़ी है, इससे अब मैं तुम्हारे पास नहीं रहूँगी।'

अध्याय १००

अष्ट-वसुओं को शाप

शान्तनु के पूछने पर गंगाजी ने कहा—'वरुण के पुत्र वशिष्ठ मुनि का दूसरा नाम आपव है। वे सुमेरु-पर्वत पर अपने दिव्यआश्रम में तपस्या करते हैं। दक्ष की कन्या सुरभि ने कश्यप ऋषि के द्वारा नन्दनी नामक कामधेनु उत्पन्न की थी। वशिष्ठजी उसी नन्दनी को प्राप्तकर उससे हवन की सामग्री एकत्र करते हैं।

एक बार जब वशिष्ठजी फल-मूल लेने वन में गये हुए थे, तब अष्टवसु अपनी सुन्दरी स्त्रियों के साथ उस आश्रम में आकर विहार करने लगे। द्यौ नामक वसु की स्त्री नन्दनी गाय को देखकर उस पर मुग्ध हो गई। द्यौ ने

बतलाया कि नन्दनी के दूध को जो पी लेगा, वह दस हज़ार वर्ष तक जवान रह सकेगा। मनुष्यलोक के प्रतापी राजा उशीनर की जितवती नामक सुन्दरी कन्या द्यौ की पत्नी की प्रिय सखी थी। द्यौ की स्त्री ने अपने पति से हठ किया कि नन्दनी को बछड़े-समेत हरकर जितवती को दे आओ, जिससे जितवती दस हज़ार वर्ष तक अपनी जवानी बनाये रख सके। स्त्री के बहकावे में आकर द्यौ अपने अन्य भाइयों के साथ नन्दनी को चुरा ले गये। जब वशिष्ठजी को यह हाल मालूम हुआ तो उन्होंने शाप दिया कि आठों वसु मनुष्य-योनि में जन्म लें। वसु शाप का हाल सुनकर वशिष्ठजी के पास दौड़ गये। पर मुनि शाप को न मेट सके। तब वसु मेरे पास आये। मैंने उन्हें जन्म देने और जन्मते ही मार कर शाप से छुड़ा देने का वचन दिया। इससे मैं जन्मते ही प्रत्येक बालक को मार डालती थी। ये आठवें बालक द्यौ नामक वसु हैं। ये अब बहुत दिनों तक मृत्युलोक में रहेंगे। मैं भी तुम्हारे बुलाने पर समय-समय पर तुम्हारे पास आऊँगी। यह कह गंगा अन्तर्धान हो गईं। तब अतिशय उदास होकर शान्तनु लौट आये।

अध्याय १०१

सत्यवती और भीष्म-प्रतिज्ञा

वैशम्पायनजी बोले—राजा शान्तनु बड़े धर्मात्मा, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, धीर, बुद्धिमान, सर्वगुणसंपन्न और सर्व राजलक्षण-युक्त थे। उनके कर्मों और गुणों पर रीझकर सब राजाओं ने उन्हें अपना सम्राट बनाया। वे प्रजा को सुखी रखने की सब तरह से चेष्टा करते रहते थे। उनके शासन में सब अपना-अपना धर्म पालन करते थे। प्रजा बहुत सुखी और संतुष्ट थी। ३६ वर्ष गृहस्थाश्रम में रहकर शान्तनु वन को चले गये।

एक दिन राजा गंगा के तट पर गये। वहाँ उन्हें कम जल देख पड़ा। फिर उन्होंने आश्चर्य से देखा कि एक बालक अपने बाणों से गंगा के प्रवाह को रोके हुए है। राजा के आते ही बालक अन्तर्धान हो गया। राजा ने गंगा-देवी का स्मरण किया। एक सुन्दर बलवान बालक का हाथ पकड़े हुए गंगा-देवी प्रकट हुईं और मुस्करा-कर बोलीं—"यह वही आठवाँ बालक है, जिसे आपने मुझ से उत्पन्न किया था। इसमें अपार वीर्य और परा-क्रम है। इसने वशिष्ठ से वेदशास्त्र पढ़े हैं और परशुराम जी से शस्त्र और युद्ध-विद्या सीखी है। इसने देव-गुरु

बृहस्पति और दैत्य-गुरु शुक्राचार्य से सब विद्याएँ प्राप्त की हैं। शस्त्र और शास्त्र में कोई इसका सामना नहीं कर सकता। आप अपने इस पुत्र को लीजिये।'

महाराज शान्तनु अपने उस सर्व-गुण-संपन्न पुत्र को पाकर बहुत प्रसन्न हुए। उसे युवराज बनाकर वे सुख से रहने लगे। एक बार शान्तनु यमुना किनारे गये। वहाँ एक ओर से अपूर्व सुगंध आ रही थी। वे उस ओर गये, जहाँ से वह सुगंध आ रही थी। कुछ दूर जाने पर उन्हें एक अपूर्व सुन्दरी कन्या देख पड़ी। उसी के अंगों से वह सुगंध निकल रही थी। पूछने पर पता चला कि वह निषादराज की कन्या है और नाव लेकर लोगों को पार उतारा करती है। शान्तनु ने निषादराज से अपने लिए उस कन्या को माँगा। निषाद-राज ने प्रसन्न होकर कहा—'आप से बढ़कर दूसरा पात्र मैं कहाँ पा सकता हूँ। किन्तु मेरी प्रतिज्ञा है कि इसके गर्भ से जो बालक उत्पन्न हो वही आपके राज्य का अधिकारी हो।'

राजा यह सुनकर वहाँ से चले गये। वे अपने पुत्र देवव्रत के अधिकार को नहीं छीनना चाहते थे। किन्तु वे निषाद-कन्या के न मिलने से दुःखी हो गये। उनकी दशा शोचनीय हो गई। उन्हें इस प्रकार दुःखी देख एक दिन

देव-व्रत गांगेय ने विनम्रभाव से कहा—'सब राजागण आप की आज्ञा में चलते हैं। सारी प्रजा सुखी है। सब जगह आप का यश और प्रताप फैल रहा है। फिर आप इतने दुखी, इतने मलिन क्यों हैं? कौन-सी चिन्ता आप को सता रही है? मैं उसे दूर करने का उपाय करूँगा।'

प्रिय पुत्र के वचन सुन, शान्तनु ने कहा—मैं तुम्हारी ही चिन्ता से व्याकुल हूँ। तुम मेरे इस भरत-कुल में अकेले पुत्र हो। तुम वीर और युद्ध-प्रिय हो। न जाने कब युद्ध में तुम वीरगति को प्राप्त हो जाओ। मुझे यही चिन्ता सदा लगी रहती है। तुम अकेले मेरे सौ पुत्रों से भी अधिक श्रेष्ठ हो। इसी कारण मैं दूसरा विवाह नहीं करना चाहता।'

देवव्रत पिता की चिन्ता का कारण खोजने लगे। वृद्ध मंत्री ने उनसे निषादराज की कन्या का हाल बतलाया। पिता को सुखी करने के उद्देश्य से देवव्रत राजाओं और वृद्धजनों के साथ निषादराज के पास गये और पिता के लिए उन्होंने उनसे कन्या माँगी। निषाद-राज ने अपनी प्रतिज्ञा सुना दी। तब देवव्रत ने प्रतिज्ञा की कि मैं खुद राज्य न लूँगा, जो पुत्र इस कन्या से होगा उसी को मैं राज्य दूँगा। तब निषाद ने कहा—लेकिन आपके पुत्र तो, आपके बाद, राज्य के लिए झगड़ा कर सकते हैं।

इस पर देवव्रत ने आजन्म ब्रह्मचारी रहने और सन्तान न उत्पन्न करने की प्रतिज्ञा की। उनकी ऐसी कठिन प्रतिज्ञा सुनकर देवगण ने उनका नाम भीष्म रख दिया। भीष्म ने दासराज की कन्या सत्यवती को लाकर अपने पिता को सौंप दिया। शान्तनु ने अद्भुत कर्म करनेवाले पुत्र अपने को वर दिया कि बिना इच्छा किये उसकी मृत्यु न होगी।

अध्याय १०२

चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य

वैशम्पायनजी बोले—निषाद-कन्या सत्यवती से शान्तनु का विवाह हुआ। कुछ दिन बाद उसके गर्भ से चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। कुछ काल सुख भोगकर शान्तनु स्वर्ग को सिधारे। भीष्म ने चित्रांगद को राजा बनाया। चित्रांगद ने राजाओं तथा सुर-असुरों को जीतकर अपने वश में कर लिया। कुछ समय बाद चित्रांगद नामक गंधर्वराज ने उन पर चढ़ाई की। तीन वर्ष तक कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध होता रहा। अन्त में गंधर्व के द्वारा चित्रांगद की मृत्यु हुई। भीष्म ने चित्रांगद के छोटे भाई विचित्रवीर्य को गद्दी पर बैठाला। विचित्रवीर्य की अवस्था कम थी, इस कारण भीष्म ही उनकी देख-रेख और रक्षा करते रहे।

अध्याय १०३

विचित्रवीर्य और काशिराज की कन्याएँ

वैशम्पायनजी बोले—यथा समय विचित्रवीर्य जवान हुए। इस बीच काशिराज की कन्याओं का स्वयंवर रचा गया। भीष्म उन कन्याओं को विचित्रवीर्य के लिए लाने के उद्देश्य से अकेले काशी गये। उन्हें स्वयंवर में आया देख सब उनकी हँसी उड़ाने लगे। इससे रुष्ट हो भीष्म ने ज़ोर से कहा—'शास्त्रों में विवाह आठ प्रकार के कहे गये हैं। गुणी पात्र को बुलाकर धन-रत्नों सहित कन्या को देना 'ब्राह्म' विवाह है। एक गाय-बैल लेकर कन्या देना 'आर्ष' विवाह है। धन लेकर कन्या देना 'आसुर' विवाह है। ज़बर्दस्ती कन्या हरकर विवाह करना 'राक्षस' विवाह है। कन्या को राज़ी करके विवाह करना 'गंधर्व' विवाह है। असावधान कन्या से छलकर-के विवाह करना 'पैशाच' विवाह है। कन्या के अभिभावक से उसे माँगना 'प्राजापत्य' विवाह है। यज्ञ में कन्या ग्रहण करना 'दैव' विवाह है। क्षत्रिय के लिए 'राक्षस' विवाह ही उचित है। शत्रु को हराकर, उसकी कन्या को हरणकर, विवाह करना पराक्रम का द्योतक है। मैं कन्याओं को बलपूर्वक हरता हूँ। जिसकी इच्छा

हो, वह मुझसे युद्ध करे।" यह कह वे तीनों कन्याओं को हर ले गये।

काशिराज तथा स्वयंवर में आये हुए अन्य राजागण क्रोधित हो उनके पीछे दौड़े और उन पर अस्त्रशस्त्र चलाने लगे। बड़ा भीषण युद्ध हुआ। सब को हारा हुआ देख शाल्व उनसे भिड़ गया। भीष्म ने उसे भी हराकर पकड़ लिया, किन्तु मारा नहीं। अन्त में सबको हराकर वे तीनों कन्याओं को लेकर हस्तिनापुर पहुँचे और सत्यवती की सलाह से उनका विवाह विचित्रवीर्य से करने लगे। विवाह के पहले काशिराज की सबसे बड़ी कन्या ने भीष्म से कहा कि स्वयंवर के पहले ही मैं सौभराज शाल्व को अपना पति मान चुकी हूँ। भीष्म ने उसे छोड़ दिया। अम्बिका और अम्बालिका नामक शेष दो कन्याओं से विचित्रवीर्य का विवाह हुआ। दोनों ही अत्यन्त सुन्दरी और गुणवती थीं। सात वर्ष तक वे भोगविलास करते रहे। अधिक विलास के कारण उन्हें क्षयरोग हो गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी वे न बचे। भीष्म ने विधिपूर्वक उनकी अन्तेष्टि-क्रिया कराई।

अध्याय १०४

सत्यवती का भीष्म से वंश चलाने को कहना

वैशम्पायनजी बोले—पुत्रशोक से संतप्त सत्यवती ने भीष्म से कहा—'तुम परम धार्मिक हो और वेद-शास्त्रों के तत्वों को जानते हो। शुक्राचार्य और अंगिरा की तरह संकट के समय धैर्य धारणकर तुम उचित उपाय कर सकते हो। इस समय भरत-कुल केवल तुम्हीं पर निर्भर है। विचित्रवीर्य की रानियाँ पुत्र उत्पन्न करना चाहती हैं। तुम या तो उनमें पुत्र उत्पन्नकर वंश की रक्षा करो, अथवा स्वयं राज्यगद्दी पर बैठो और विवाह करके वंश चलाओ।

भीष्म ने कहा—'मैं तीनों लोकों और स्वर्ग के राज्य के लिए भी अपनी प्रतिज्ञा और सत्यको नहीं छोड़ सकता। सूर्य तेज को, चन्द्रमा शीतलता को और धर्म-राज अपने धर्म को छोड़ दें, तो भी मैं सत्य को न छोड़ूँगा।'

भीष्म के वचन सुनकर सत्यवती ने कहा—मैं तुम्हारे सत्य और तुम्हारी दृढ़ता को जानती हूँ। किन्तु इस समय आपत्काल के धर्म को देखकर वंश की रक्षा करो।

भीष्म ने विनीत-भाव से कहा—'सत्य छुड़ाकर अधर्म से हम सबका नाश न कराओ। मैं धर्म के सम्बन्ध

में जो कहता हूँ उसे सुनो और आपद्धर्म के जानने-वालों की सम्मति लो।'

अध्याय १०५

दीर्घतमा और क्षत्रिय-वंश

भीष्मजी बोले—पूर्वकाल में जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी ने अपने पिता की हत्या से कुपित होकर सहस्रबाहु-अर्जुन का नाशकर इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया था। पृथ्वी क्षत्रियों से शून्य हो गई थी। उस काल में विधवा क्षत्राणियों ने वंश-रक्षा के लिए वेदज्ञ ब्राह्मणों के द्वारा नियोग करके पुत्र उत्पन्न किये थे और क्षत्रिय-वंश को लुप्त होने से बचाया था। ब्राह्मणों के द्वारा क्षत्राणियों में उत्पन्न किये गये वे बालक क्षत्रिय ही माने गये थे। इस प्रकार क्षत्रिय-वंश चला है। इस सम्बन्ध में एक कथा भी है।

उतथ्य बृहस्पति के भाई थे। ममता उतथ्य की स्त्री थी। एक दिन बृहस्पति काम-वश अपनी भौजाई ममता के पास गये। ममता ने कहा कि 'इस समय मेरे पेट में तुम्हारे भाई के अंश से एक ऐसा तेजस्वी बालक है, जिसने गर्भ में ही वेद पढ़ लिये हैं। तुम्हारा वीर्य भी

अमोघ है। मेरे गर्भ में दूसरे बालक के लिए स्थान नहीं है। इससे तुम इस समय शान्त हो जाओ।' ममता के समझाने पर भी बृहस्पति न माने। गर्भ के बालक ने भी उन्हें समझाया, तो भी वे अपने को न रोक सके। तब गर्भ के बालक ने अपने पैरों से बृहस्पति के वीर्य को रोका। बृहस्पति ने क्रोध करके शाप दिया कि तुमने मेरे आनन्द में विघ्न डाला है, इस कारण तुम सदा अंधकार में रहोगे। इसी से वह बालक अंधा हुआ और दीर्घतमा उसका नाम पड़ा। दीर्घतमा बड़े ज्ञानी और वेदज्ञ थे। विद्या के बल पर उन्होंने प्रद्वेषी नामक ब्राह्मण-कन्या से विवाह किया और सुरभी के पुत्र से गोधर्म सीखकर प्रकाश रूप से स्त्री-संग करने लगे। समाज की मर्यादा का उल्लंघन करने के कारण अन्य ऋषि-मुनि उनसे नाराज हो गये और निलज्ज कहकर उन्हें आश्रम से निकालने की सलाह करने लगे। इधर उनके गौतम आदि कई बेटे हुए। पर उनके भरण-पोषण का कोई प्रबन्ध न था। इस कारण उनकी स्त्री उन्हें छोड़कर दूसरा पति करने को तैयार हो गई। उसने कहा कि जो स्त्री का भरण-पोषण करता है वह भर्ता कहलाता है और जो रक्षा करता है वह पति। किन्तु तुम्हारा भरण-पोषण तो स्त्री होकर मैं स्वयं करती हूँ। इस कारण मैं तुम्हें छोड़कर किसी अन्य

को अपना पति बनाऊँगी। यह सुनकर दीर्घतमा ऋषि ने सामाजिक मर्यादा बाँध दी कि कोई स्त्री मरते दम तक दूसरा पति नहीं कर सकती, पति के मरने पर स्त्री कोई भोग नहीं कर सकती; उसे पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहना होगा। प्रद्वेषी ने क्रोध करके अपने पुत्रों से दीर्घतमा को एक बेड़े पर रखाकर गंगा में डलवा दिया। दीर्घतमा को लेकर बेड़ा बहता हुआ अनेक देशों को पार कर गया। एक स्थान पर बलि नामक राजा ने उन्हें देख, जल से निकाला और अपने महलों में ठहराया। फिर राजा ने दीर्घतमा से अपनी रानी में पुत्र उत्पन्न करने को कहा। पर रानी ने अंधे वृद्ध ऋषि के पास खुद न जाकर अपनी दासी को भेज दिया। दासी के दीर्घतमा से ग्यारह वेदपाठी पुत्र उत्पन्न हुए।

जब राजा को यह मालूम हुआ कि उनकी रानी सुदेष्णा ऋषि के पास नहीं गई तो उन्होंने रानी को समझाकर दीर्घतमा के पास भेजा। ऋषि ने रानी सुदेष्णा के गर्भ से अंग, बंग, कलिंग तथा सुह्म नामक चार ऐसे प्रतापी पुत्र उत्पन्न किये जिन्होंने अपने-अपने नाम से चार देश बसाये। राजा बलि का वंश ऋषि के उत्पन्न किये हुए उन्हीं पुत्रों से चला। इसी प्रकार अनेक क्षत्रिय वंश ब्राह्मणों के अंश से चले हैं। अब जैसा तुम उचित समझो, करो।

अध्याय १०६

वेदव्यास के जन्म की कथा, व्यास का आना

भीष्म ने कहा—माता! वंश की वृद्धि के लिए किसी गुणवान ब्राह्मण को धन देकर बुलाओ और उसी से विचित्रवीर्य की स्त्रियों में पुत्र उत्पन्न कराओ।

सत्यवती ने तनिक लजाकर कहा—इस समय आपद्धर्म समझकर तुम मेरा कहना मानो। तुम्हीं इस समय भरतकुल के लिए धर्म, सत्य और गति हो। मेरे पिता ने धर्म के कारण बिना पैसे लिए बटोहियों को नदी पार उतारने के लिए मुझे नाव खेने के लिए नियुक्त किया था। एक बार महर्षि पराशर जीने नदी के बीच में मुझ से संग करने को कहा। शाप के डर से और उनकी अलौकिक शक्ति पर मुग्ध होकर मैं नाहीं न कर सकी। उनके प्रभाव से मेरे अंगों से मछली की गंध के स्थान में सुगंधि निकलने लगी। उनके अंश से मेरे द्वैपायन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वेदों के विभाग करने से उसी पुत्र का नाम व्यास हो गया। उनका रंग काला है इसी कारण उन्हें लोग कृष्ण भी कहते हैं। वे बड़े तपस्वी हैं। मेरे स्मरण करने पर वे आजायँगे और विचित्रवीर्य की रानियों में पुत्र उत्पन्न करेंगे।

भीष्म के स्वीकार करने पर सत्यवती ने व्यासदेव का स्मरण किया। व्यासदेव ने आकर माता को प्रणाम किया। भीष्म तथा भरत-कुल के पुरोहित ने विधि-पूर्वक उनकी पूजा की। फिर सत्यवती ने सब हाल बतलाकर उनसे विचित्रवीर्य की स्त्रियों में पुत्र उत्पन्न करने को कहा। व्यासदेव ने कहा कि इस प्रकार पुत्र उत्पन्न करना सनातन धर्म है। किन्तु उन स्त्रियों को एक वर्ष तक व्रत करना होगा। सत्यवती राजाहीन प्रजा में अनर्थ फैलने की आशंका से शीघ्र पुत्र उत्पन्न कराने के लिए ज़ोर देने लगीं। तब व्यासदेव ने कहा कि जो स्त्री मेरे रूप, वेश और गंध से घृणा न करे उसे मैं पुत्र दे सकता हूँ। विचित्रवीर्य की रानी कौशल्या (अम्बिका) शृंगार करके मेरे समागम की इच्छा करे। यह कह वे अन्तर्धान हो गये। इधर सत्यवती ने जाकर अम्बिका को बहुत समझाया और व्यासदेव के द्वारा पुत्र उत्पन्न-कर वंश चलाने को तैयार किया और फिर शुभदिन में देवपूजन कर ब्राह्मणों, ऋषियों तथा अभ्यागतों को भोजन कराया।

अध्याय १०७

धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर का जन्म

वैशम्पायनजी बोले—यथा समय कौशल्या के ऋतु-स्नान करने पर व्यासदेवजी उसके पास गये। उनके वेश, रूप आदि से डरकर अम्बिका ने नेत्र मूँद लिये और अन्त तक न खोले। गर्भाधान के बाद माता के पूछने पर व्यासदेव ने बतलाया कि अम्बिका के जो पुत्र होगा वह बड़ा बुद्धिमान और दस हज़ार हाथियों के बराबर बल वाला होगा, किन्तु माता के आँखें बन्दकर लेने के कारण अंधा होगा।

अन्धा पुत्र राज्य करने योग्य न होगा, यह समझकर सत्यवती ने व्यासदेव से दूसरा पुत्र उत्पन्न करने को कहा। यथा समय व्यासदेव दूसरी रानी अम्बालिका के पास गये। उसने नेत्र तो न मूँदे, किन्तु वह डरकर पीली पड़ गई। इस कारण उसका बालक पाण्डु रंग का हुआ। माता के अनुरोध से व्यासदेव ने तीसरी बार पुत्र उत्पन्न करना स्वीकार किया। इस बार सत्यवती ने अम्बिका को ऋतुस्नान के बाद व्यासदेव के पास जाने को कहा। पर अम्बिका खुद न जा सकी। उसने अपनी सुन्दरी दासी को व्यासदेवजी के पास भेज दिया।

दासी ने व्यासदेव की पूजा की और उन्हें संतुष्ट किया। उन्होंने दासी को वर दिया कि तू दासीपने से छूट जायगी और तेरे परम धार्मिक और बुद्धिमान पुत्र होगा। इसी दासी से व्यवहार-कुशल परम नीतिज्ञ विदुर उत्पन्न हुए। अणी माण्डव्य ऋषि के शाप से धर्मराज ने विदुर के रूप में, शूद्र योनि में, जन्म लिया था। माता से दासी के भेजे जाने, तथा धर्म के शाप का सब हाल बतलाकर व्यासदेव चले गये। उनके अंश से विचित्रवीर्य की रानियों में देवकुमार तुल्य बालक हुए।

अध्याय १०८

अणी माण्डव्य की कथा

जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायनजी बोले—माण्डव्य नामक एक सत्यवादी तपस्वी ब्राह्मण थे। वे एक वृक्ष के नीचे हाथ ऊपर उठाकर मौन धारण किये तप कर रहे थे। कुछ समय बाद कुछ चोरों ने चोरी की और राज-कर्मचारियों के पीछा करने पर वे भागे और माण्डव्य ऋषि के पास धन गाड़कर वहीं छिप गये। राज कर्मचारियों को चोरी के धन के साथ चोर मिल गये। बहुत पूछने पर जब मौन धारण किये रहने के कारण माण्डव्य न बोले, तो

चोरों का साथी समझकर राजकर्मचारी उन्हें भी सब के साथ पकड़ ले गये। राजा ने सब को सूली पर चढ़ा देने का हुक्म देकर धन को राज के खजाने में भेज दिया। सूली पर चढ़ाये जाने पर भी तपोबल के कारण माण्डव्य मरे नहीं, वे निराहार रहकर सूली पर टँगे-टँगे तप करने लगे। अनेकानेक ऋषि-मुनि उनके पास आये और उनकी दशा देखकर दुःखी हुए। फिर सबने उनसे पूछा कि आपने ऐसा कौन-सा अपराध किया था जिससे आपको सूली का कष्ट भोगना पड़ा?

अध्याय १०६

धर्मराज को शाप

वैशम्पायनजी बोले—ऋषि-मुनियों के पूछने पर भी माण्डव्य ने किसी को दोष नहीं दिया। बहुत समय बीतने पर जब सूली पर लटके रहने पर भी माण्डव्य न मरे तो सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा डरकर उनके पास गया, उसने उनकी स्तुति की और उन्हें सूली पर से उतरवा लिया। किन्तु सूली की नोंक (अणी) उनके शरीर से न निकल सकी। माण्डव्य के शरीर में अणी रह गई, इस कारण उसका नाम अणीमाण्डव्य

पड़ गया। सूली से उतरने के बाद माण्डव्य ने घोर तप करके अनेक लोक जीत लिये। एक बार वे धर्मराज के पास गये और उनसे सूली पर चढ़ाये जाने का कारण पूछा। धर्मराज ने कहा कि तुमने लड़कपन में एक सींक में कई टिड्डियों को छेदा था, उसी का यह फल भोगना पड़ा। माण्डव्य ने कहा कि बारह वर्ष तक बालक जो कुछ करता है उसका पाप-पुण्य उसे नहीं लगता। तुमने व्यर्थ मुझे दण्ड दिया, इस कारण तुम्हें मृत्युलोक में सौ वर्ष तक शूद्र-योनि में रहना पड़ेगा।

इसी शाप के कारण धर्मराज को विदुर के रूप में प्रकट होना पड़ा।

अध्याय ११०

पाण्डु का राजा बनाया जाना

वैशम्पायनजी बोले—धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर के उत्पन्न होने से कुरु वंशियों में खूब उन्नति होने लगी। सब धनधान्य, सुख-संपति से पूर्ण हो गये। चोर डाकुओं का भय जाता रहा। सब लोग उचित धर्म, कर्म, उत्सव, विहार, ऐश्वर्य-भोग में संलग्न रहते थे। भीष्म के प्रबंध से सब सुखी, संतुष्ट और कर्तव्य-रत थे। इधर तीनों कुमारों का

उचित लालन-पालन हो रहा था। यथासमय उनके सब संस्कार किये गये। धीरे-धीरे तीनों जवान हुए। शस्त्रों और शास्त्रों में वे पारंगत हो गये। धृतराष्ट्र शारीरिक बल में, पाण्डु धनुर्विद्या में और विदुर धर्म-ज्ञान में सब से बढ़े-चढ़े थे। भारतवर्ष भर में यह कहावत मशहूर हो गई कि वीरों को उत्पन्न करनेवाली स्त्रियों में अम्बिका-अम्बालिका श्रेष्ठ हैं, देशों में कुरु-जांगल देश सब से उत्तम है, धर्मात्माओं-धर्मज्ञों में भीष्म सर्वोच्च हैं और नगरों में हस्तिनापुर सर्वोत्तम है। धृतराष्ट्र अन्धे थे और विदुर थे दासी-पुत्र, इस कारण पाण्डु हस्तिनापुर की गद्दी पर बैठाये गये। एक दिन भीष्म ने विदुर से कहा।

अध्याय १११

धृतराष्ट्र का गांधारी से विवाह

भीष्म बोले—कुरुवंश के धर्मात्मा राजाओं के वंश को नष्ट होने से बचाने के लिए ही मैंने और माता सत्यवती ने व्यासदेव के द्वारा तुम तीनों को उत्पन्न कराया है। अब तुम लोग ऐसा उपाय करो जिसमें यह कुरुवंश समुद्र की तरह बढ़े। मैं तुम लोगों के लिए राजा

शूरसेन, राजा सुबल और मद्र-नरेश की सुन्दरी कन्याओं को माँगना चाहता हूँ।

विदुर बोले—आप हमारे गुरु और पिता हैं। आप जो उचित समझें, करें।

इसी बीच गान्धार देश के राजा सुबल की पुत्री गान्धारी ने शिवजी से सौ पुत्र होने का वर प्राप्त किया। भीष्म ने धृतराष्ट्र के लिए गान्धारी को माँगा। राजा सुबल राज़ी हो गये। गांधारी को जब मालूम हुआ कि उसके पति अन्धे हैं, तब पातिव्रत धर्म का विचारकर उसने अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली। गांधारी के भाई शकुनि ने धन-रत्न आदि के साथ अपनी बहन को हस्तिनापुर लाकर धृतराष्ट्र के साथ उसका विवाह कर दिया। पतिव्रता, सुशीला गांधारी ने अपने सद्व्यवहार से सबको मोह लिया।

अध्याय ११२

कुन्ती को मंत्र, कर्ण की उत्पत्ति

वैशम्पायनजी बोले—यादवों के राजा शूरसेन के पृथा नामक कन्या हुई। शूरसेन ने उसे अपनी बुआ के लड़के कुन्तिभोज को दे दिया। कुन्तिभोज पृथा को अपनी

लड़की की तरह पालनें लगे। बड़ी होने पर पृथा अभ्यागत ऋषि-मुनियों का आदर-सत्कार और सेवा करने लगी। एक बार उसने दुर्वासा ऋषि की बड़ी तत्परता से सेवा थी। जाते समय दुर्वासा ने उसे एक मंत्र बतलाकर कहा कि तुम जिस देवता को चाहोगी, उसे बुलाकर पुत्र उत्पन्न कर सकोगी। दुर्वासा के चले जाने पर पृथा ने कुतूहलवश सूर्यदेव को बुलाया। मंत्र पढ़ते ही सूर्यदेव प्रकट हुए और उन्होंने पृथा से सहवास करना चाहा। पृथा ने हाथ जोड़कर कहा—मैंने मंत्र की परीक्षा के लिए आप को बुलाया था। आप मेरा कन्या-भाव दूषित न करें। स्त्री जान आप मेरा अपराध क्षमा करें।' पर सूर्यदेव ने कहा कि 'मेरा आना व्यर्थ नहीं जा सकता। मेरे सहवास से तुम्हारा कन्या-भाव दूषित न होगा।' सूर्यदेव के अंश से पृथा के एक बड़ा तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। जन्म के समय ही वह कवच और कुण्डल धारण किए हुए था। पुत्र को देख, पृथा बहुत डरी। लोकनिंदा के कारण उसने बालक को एक संदूक में रखकर नदी में बहा दिया। बहते-बहते वह बालक राधा के पति सूतपुत्र अधिरथ को मिला। अधिरथ ने उसे पाल लिया और उसका नाम वसुषेण रक्खा। वसुषेण बड़े होने पर अस्त्र-शस्त्र चलाने में बड़े निपुण हो गये। वे दोपहर

से संध्या तक सूर्य के सामने खड़े होकर मंत्र जपते। उस समय कोई ब्राह्मण उनसे जो माँगता वे उसे वही वस्तु दे देते। एकबार इन्द्र ने अपने पुत्र अर्जुन के हित के लिए ब्राह्मण रूप धरकर वसुषेण से उनके कुण्डल और कवच माँगे। वसुषेण ने उसी समय अपने शरीर से काटकर कुण्डल और कवच दे दिये। तब इन्द्र ने प्रसन्न होकर उन्हें 'एक-घातिनी' अमोघ शक्ति दी। वसुषेण ने अपने शरीर से काटकर कवच-कुण्डल दिये थे, इस कारण उनके नाम "वैकर्त्तन" और "कर्ण" पड़ गये।

अध्याय ११२

पाण्डु का कुन्ती से विवाह

वैशम्पायनजी बोले—पृथा का दूसरा नाम कुन्ती था। वे अद्वितीय सुन्दरी थीं। अनेक राजाओं ने उनसे विवाह करना चाहा। इस कारण राजा कुन्तिभोज ने स्वयंवर का प्रबन्ध कर दिया। अनेकानेक राजा उस स्वयंवर में गये। पाण्डु भी गये। महापराक्रमी, बड़ी-बड़ी आँखों और चौड़ी छातीवाले पाण्डु के आगे सब राजा फीके पड़ गये। कुन्ती ने उन पर रीझकर उन्हें वर-माला पहना दी। राजा कुन्तिभोज ने दोनों का

विवाह कर दिया। तब पाण्डु कुन्ती को अपने महलों में ले आये।

अध्याय ११४

पाण्डु का माद्री से विवाह

वैशम्पायनजी बोले—भीष्म ने पाण्डु का एक और विवाह करना उचित समझा। वे चतुरंगिणी सेना लेकर वाह्लीकवंशी मद्र-नरेश की राजधानी को गये। मद्र-नरेश ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। भीष्म ने पाण्डु के लिए राजा शल्य की बहन को माँगा। मद्र-नरेश शल्य ने कहा कि हमारे वंश में कन्या के बदले में धन लिया जाता है। भीष्म ने बहुत सा सोना, मणि, मोती, रत्न, हाथी तथा घोड़े आदि देकर शल्य को संतुष्ट कर माद्री को लाकर पाण्डु से उसका विवाह कर दिया।

कुछ काल तक कुन्ती और माद्री से विहार करने के बाद पाण्डु चतुरंगिणी सेना लेकर दिग्विजय को निकले। पहले उन्होंने दशार्ण देश के राजाओं को जीता, फिर राजगृह में मगध-राज को मारा, फिर मिथिला जाकर विदेह-नरेश को पराजित किया। फिर काशी, सुह्म और पुण्ड्र देश के राजाओं को जीतकर

और नाना प्रकार की वस्तुएँ भेंट में लेकर वे हस्तिनापुर को लौट आये। सबने बड़े आनन्द से उनका स्वागत किया। विजयी महाराज पाण्डु ने बड़ी धूमधाम से नगर में प्रवेश किया।

अध्याय ११५

विदुर का विवाह

वैशम्पायनजी बोले—पाण्डु ने दिग्विजय में प्राप्त असीम धन लाकर भीष्म, सत्यवती और बन्धुबान्धवों को दे दिया। सब उनसे परम संतुष्ट हुए। पाण्डु के बल पर धृतराष्ट्र ने सौ अश्वमेध यज्ञ किये और लाखों मोहरें दक्षिणा में दीं। कुछ समय बाद पाण्डु अपनी दोनों पत्नियों को लेकर हिमालय के दक्षिण के शाल-वन में रहने और विहार करने लगे। इधर भीष्म ने महाराज देवक की एक कन्या से विदुर का विवाह करा दिया, जिससे विदुर के अनेक पुत्र उत्पन्न हुए।

अध्याय ११६

गांधारी से सौ पुत्र

वैशम्पायनजी बोले—धृतराष्ट्र के गांधारी से एक सौ एक पुत्र उत्पन्न हुए और दूसरी स्त्री से केवल एक।

कुन्ती और माद्री के देवताओं के अंश से पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। एक बार भूखे और थके हुए व्यास-देव महलों में पहुँचे। गांधारी ने उनकी बड़ी सेवा की और उन्हें प्रसन्न करके वर प्राप्त किया कि मेरे सौ पराक्रमी पुत्र हों। धृतराष्ट्र के अंश से उसके गर्भ रह गया। पर दो वर्ष बीत जाने पर भी कुछ नहीं हुआ। इसी समय उसे समाचार मिला कि कुन्ती के एक बहुत ही सुन्दर और तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ है। डाह से व्याकुल होकर गांधारी ने अपने गर्भ पर ज़ोर से हाथ मारा। चोट लगते ही एक बड़ा मांस का पिण्ड बाहर निकल आया। गांधारी ने क्षोभ से उसे फेंक देना चाहा। पर उसी समय व्यासदेव वहाँ प्रकट हो गये और गांधारी से बोले—'इसे मत फेंको। मैंने कभी हँसी में भी झूठ नहीं बोला। मेरा वर असत्य नहीं हो सकता। तुम्हारे अवश्य ही सौ पुत्र होंगे। तुम शीघ्र सौ घड़े घी भर-कर किसी गुप्त और सुरक्षित स्थान में रखवा दो और इस मांस-पिण्ड पर निरंतर थोड़-थोड़ा जल छिड़कती रहो।' ऐसा ही किया गया। कुछ दिन बाद उस मांस के सौ भाग हो गये। व्यासदेव ने प्रत्येक टुकड़े को घी के एक-एक घड़े में रखा दिया और कह दिया कि दो वर्ष बाद घी के घड़ों को खोलना। यथा समय उन घड़ों में से दुर्योधन

आदि उत्पन्न हुए। कुन्ती के पुत्र युधिष्ठिर दुर्योधन से पहले उत्पन्न हुए थे। दुर्योधन और भीम ने एक ही दिन जन्म लिया था। दुर्योधन जन्मते ही गधे की तरह ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा था। उसी समय अनेक प्रकार के अपशकुन भी होने लगे थे। भय की आशंका से धृतराष्ट्र ने भीष्म आदि को बुलाकर कहा कि पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिर बड़े हैं; इस कारण वे राज्य के अधिकारी हैं। किन्तु युधिष्ठिर के बाद क्या यह मेरा बड़ा पुत्र राज्य का अधिकारी हो सकेगा? उस समय के भयंकर अपशकुनों को देख वेदज्ञ ब्राह्मणों ने धृतराष्ट्र से कहा कि लक्षणों से पता चलता है कि आपका यह पुत्र वंश के नाश का कारण होगा, इस कारण इसे आप त्याग दीजिये। नीति का वचन है कि कुल की भलाई के लिए एक पुरुष को, गाँव की भलाई के लिए एक कुल को, राष्ट्र के हित के लिए एक गाँव को और अपनी भलाई के लिए पृथ्वी भर को छोड़ देना उचित होता है। किन्तु लोगों के बहुत समझाने पर भी धृतराष्ट्र पुत्र-स्नेह के कारण दुर्योधन को न छोड़ सके। दुर्योधन के जन्म के अनन्तर एक-एक दिन का अन्तर देकर धृतराष्ट्र के अन्य सभी पुत्र उत्पन्न हुए। गांधारी के एक कन्या ने भी जन्म लिया। धृतराष्ट्र की सेवा में एक वैश्य-कन्या रहती थी। उसने भी

युयुत्सु नामक पुत्र को जन्म दिया। इस प्रकार धृतराष्ट्र के एक सौ एक पुत्र और एक कन्या का जन्म हुआ।

अध्याय ११७

दुःशला की उत्पत्ति

वैशम्पायनजी बोले—जिस समय व्यासदेव जी उस मांस-पिण्ड के भागों को घी के घड़ों में रखा रहे थे उस समय गांधारी के मन में कन्या की इच्छा हुई। उन्होंने सोचा कि यदि नाती होता तो मेरे पति को सद्गति अवश्य मिलती। फिर स्त्रियों को दामाद के मिलने से अपार हर्ष होता ही है। यदि मैंने सत्कर्म किये हैं, पति और ब्राह्मणों की सेवा सच्चे मन से की है, तो मुझे कन्या अवश्य मिले।' गांधारी इस प्रकार सोच ही रही थी कि व्यासदेव को गिनने पर एक टुकड़ा अधिक जान पड़ा। गांधारी के मन की बात समझकर उन्होंने कहा कि तुम्हारी इच्छा कन्या की है। इस टुकड़े से कन्या ही होगी। यह कह उन्होंने एक घी का घड़ा और मंगवाया और उसमें उस टुकड़े को भी रख दिया। उसीसे दुःशला नामक कन्या का जन्म हुआ।

अध्याय ११८

धृतराष्ट्र के पुत्रों के नाम

वैशम्पायनजी बोले—बड़े-छोटे के क्रम से धृतराष्ट्र के पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं, दुर्योधन, युयुत्सु, दुःशासन, दुःसह, दुःशल, जलसंध, सम, सह, विन्द, अनुविन्द, दुर्धर्ष, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण, विविंशति, विकर्ण, शल, सत्व, सुलोचन, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, दुर्मद, दुर्विगाह, विवित्सु, विकटानन, अर्णनाभ, सुनाभ, नन्द, उपनन्द, चित्रबाण, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्विमोचन, अयोबाहु, महाबाहु, चित्रांगद, चित्रकुण्डल, भीमवेग, भीमबल, बलाकि, बलवर्द्धन, उग्रायुध, सुषेण, कुण्डधार, महोदर, चित्रायुध, निषङ्गी, पाशी, वृन्दारक, दृढ़वर्मा, दृढ़क्षत्र, सोमकीर्ति, अनूदर, दृढ़संध, जरासंध, सत्यसंध, सदःसुवाक, उग्रश्रवा, उग्रसेन, सेनानी, दुष्पराजय, अपराजित, कुण्डशायी, विशालाक्ष, दुराधर, दृढ़हस्त, सुहस्त, वातवेग, सुवर्चा, आदित्यकेतु, बह्वाशी, नागदत्त, अग्रयायी, कवची, क्रथन, कुण्डी, कुण्डधर, धनुर्धर, उग्रभीमरथ, वीरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा, दृढ़रथ, अनाधृष्य, कुण्डभेदी, विरावी, प्रमथ, प्रमाथी, दीर्घरोमा, दीर्घबाहु, व्यूढ़ोर

कनकध्वज और कुण्डाशी ।

धृतराष्ट्र ने सुन्दरी राजकुमारियों से हरएक का विवाह कर दिया । राजा जयद्रथ के साथ दुःशला का विवाह हुआ ।

अध्याय ११६

पाण्डु को मृगरूपी ऋषि

जनमेजय के प्रश्न करने पर वैशम्

पाण्डु अपनी रानियों के साथ शालवन में शिकार खेलने गये थे । एक बार एक मृग को मृगी के साथ सहवास करते देख उन्होंने पांच बाण मारे । मृग मृगी के साथ घायल होकर गिर पड़ा और पाण्डु का तिरस्कार करने लगा । पाण्डु ने कहा कि तेरा तिरस्कार करना व्यर्थ है । शिकार में छिपकर भी मारना शास्त्र-सम्मत है । मृग ने कहा कि जब शत्रु व्यसन में हो या निःशस्त्र हो तब उस पर वार नहीं करना चाहिए ।

पाण्डु ने उत्तर दिया—शास्त्रों का मत है कि शत्रु को कभी किसी भी दशा में न छोड़ना चाहिए, चाहे वह सावधान हो अथवा असावधान, रक्षित हो अथवा अरक्षित ।

मृग ने कहा—आपको उचित था कि आप मेरे सहवास समाप्त होने तक रुके रहते। मैं किंमद नामक मुनि हूँ। पुत्र की इच्छा से मृगी रूपी अपनी पत्नी से रमण कर रहा था। आपने मेरी इच्छा पूरी न होने दी। इस कारण आप भी जब स्त्री-सहवास करेंगे तभी आपकी मृत्यु हो जायगी।' यह कह उसने अपने प्राण त्याग दिये। पाण्डु को बड़ा दुःख हुआ।

अध्याय १२०

पाण्डु का वानप्रस्थ होना

वैशम्पायनजी बोले—मृग के मारने से पाण्डु को इतना खेद हुआ कि वे सब कुछ छोड़कर संन्यास लेने को तैयार हो गये। कुन्ती और माद्री ने उन्हें समझा कर संन्यास के बजाय वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने और दोनों स्त्रियों सहित इंद्रियों को वश में करके तप करने के लिए राजी कर लिया। पाण्डु ने अपने साथवाले ब्राह्मणों तथा अनुचरों को अपने तथा कुन्ती, माद्री के सब गहने तथा कपड़े देकर हस्तिनापुर भेज दिया और वे वनवासियों की तरह रहने लगे। धृतराष्ट्र आदि को इस समाचार से बड़ा दुःख हुआ। इधर पाण्डु कुन्ती-माद्री

के साथ पहले नागशत पर्वत पर तप करते रहे; फिर चैत्ररथ, कालकूट और हिमालय को पार करके वे गंधमादन पर्वत पर गये। कुछ समय बाद वहाँ से भी आगे बढ़े और अनेक दुर्गम और रम्य स्थानों में बसते हुए, इन्द्रद्युम्न सरोवर और हंस-कूट पर्वत को पारकर शतशृंग पर्वत पर जाकर तप करने लगे।

अध्याय १२१

पाण्डु का पुत्रों के लिए उपाय करना

वैशम्पायनजी बोले—तप में लगे हुए पाण्डु को सिद्ध-चारण प्रेम, स्नेह और आदर की दृष्टि से देखने लगे। पाण्डु ने घोर तप करके स्वर्ग जाने का अधिकार प्राप्त कर लिया। वे ब्रह्मर्षि तुल्य हो गए। एक अमावस को उस स्थान के सब ऋषि ब्रह्माजी का दर्शन करने के लिए जाने लगे। पाण्डु भी दोनों पत्नियों के साथ उसके पीछे-पीछे चले। ऋषियों ने उन्हें मना करते हुए कहा—'आगे का मार्ग बड़ा कठिन है। वहाँ सदा बर्फ जमी रहती है। पक्षी तक नहीं जा सकते। केवल सिद्ध महर्षि वहाँ जा सकते हैं। वह देवताओं और अप्सराओं की क्रीड़ा-भूमि है। आपकी कोमलांगी रानियाँ वहाँ न जा सकेंगी। आप हमारे साथ न चलें।'

पाण्डु समझ गये। वे बोले—"मेरे सन्तान नहीं है। इस कारण मैं स्वर्ग में नहीं जा सकता। प्रत्येक मनुष्य पर चार ऋण रहते हैं। उन्हें चुकाये बिना किसी की सद्गति नहीं होती। मैंने वेद पढ़कर और तप करके ऋषियों का ऋण, यज्ञ करके देव-ऋण और सब प्राणियों पर दया करके मनुष्य-ऋण चुका दिये हैं। पर पुत्र उत्पन्न करके चौथा पितरों का ऋण नहीं चुका सका। पुत्र न होने से मेरे पितर सद्गति को प्राप्त न होंगे। यही मुझे सोच है। भगवान वेदव्यास ने मुझे उत्पन्न करके मेरे पिता विचित्रवीर्य का पितृ-ऋण पूरा कर दिया था। क्या उसी तरह मेरी स्त्रियों के पुत्र उत्पन्न किये जा सकते हैं, और इस प्रकार क्या मेरा पितृ-ऋण चुकाया जा सकता है?"

ऋषियों ने उनको धीरज देते हुए कहा—"आप के परम प्रतापी, कल्याणकारी, निष्पाप देवपुत्र उत्पन्न होंगे। आप सोच छोड़कर उपाय कीजिये।"

पाण्डु ने ऋषियों के मतानुसार कुन्ती से कहा—धर्मशास्त्र में बारह तरह के पुत्र बतलाये गये हैं, (१) औरस। (अपनी धर्म-पत्नी में स्वयं उत्पन्न किया हुआ पुत्र) (२) प्रणीत (अन्य उत्तम पुरुष द्वारा पत्नी में उत्पन्न पुत्र) (३) परिक्रीत (दूसरे पुरुष को धन देकर उससे अपनी

पत्नी में उत्पन्न कराया हुआ पुत्र) (४) पौनर्भव (पति की मृत्यु के बाद विधवा के द्वारा दूसरे के संसर्ग से उत्पन्न कराया हुआ पुत्र) (५) कानीन (क्वाँरेपन में ही पत्नी द्वारा उत्पन्न कराया हुआ पुत्र) (६) कुण्ड (मनमाना संसर्ग करती रहनेवाली पत्नी में उत्पन्न पुत्र) (७) दत्तक (गोद लिया हुआ पुत्र) (८) क्रीत (दाम देकर खरीदा हुआ बालक) (९) उपक्रीत (पाला हुआ पुत्र) (१०) स्वयं-उपस्थित (खुद पुत्र बनने के लिए आया हुआ पुत्र) (११) ज्ञाति-रेतस होढ़ (जो स्त्री जातिवाले किसी दूसरे पुरुष के द्वारा पहले गर्भवती हो चुकी हो उससे विवाह करने पर उत्पन्न होने वाला पुत्र) (१२) हीनयोनिधृत (नीच जाति की स्त्री में उत्पन्न किया हुआ पुत्र) इन में से पहले छः बाप-दादों की संपति को पाने के हक़दार माने गये हैं। इनकी श्रेष्ठता क्रम से मानी जाती है, अर्थात् सबसे बढ़ कर औरस पुत्र माना जाता है। उसके बाद प्रणीत का दर्जा माना जाता है। हीनयोनिधृत सबसे निकृष्ट माना जाता है। मनु आदि शास्त्रकारों की आज्ञा है कि पति से पुत्र न होने पर स्त्री अपने देवर से अथवा अन्य श्रेष्ठ पुरुष से पुत्र उत्पन्न कराकर पति को पुत्र-ऋण से मुक्त कर सकती है। पूर्व समय में वीरशिरोमणि शरदण्ड ने अपनी रानी को पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा दी थी।

पति की आज्ञा पाकर रानी ऋतु-स्नान के बाद रात को चौरास्ते पर खड़ी हुई। उसी समय एक सिद्ध ब्राह्मण वहाँ होकर निकला। रानी ने उससे दुर्जय आदि तीन महारथी पुत्र उत्पन्न किये। मैं मृग के शाप के कारण स्त्री-प्रसंग नहीं कर सकता। इस कारण तुम किसी श्रेष्ठ पुरुष के द्वारा पुत्र उत्पन्न करो।

अध्याय १२२

राजा व्युषिताश्व

पाण्डु को अधीर देख कुन्ती ने कहा—धर्म के तत्व को जानकर भी आप मुझे ऐसी आज्ञा देते हैं ? यह उचित नहीं है। मैं आपको छोड़कर दूसरे के साथ सहवास नहीं कर सकती। मेरे लिए आपसे अधिक श्रेष्ठ दूसरा है ही नहीं। पूर्व समय में व्युषिताश्व नामक बड़े प्रतापी राजा हो गये हैं। उनके अश्वमेध यज्ञ में स्वयं इन्द्र आदि देवगण ने उपस्थित होकर यज्ञ में भाग लिया था। यज्ञ से देवताओं, ब्राह्मणों को संतुष्टकर राजा ने समुद्रपर्यन्त पृथ्वी जीतकर धर्म से शासन किया। उनकी रानी भद्रा बहुत अधिक सुन्दरी थी। दोनों में प्रेम भी बेहद था। विहार में अति करने के कारण राजा को क्षय

रोग से मृत्यु हो गई। शोक में विकल हो रानी सती होने चली। तब आकाशवाणी हुई कि इसी शव के सहवास से भद्रा के पुत्र उत्पन्न होंगे। आकाशवाणी को सच मान ऋतु-स्नान के बाद रानी ने पति के शव से सहवास किया और सात पुत्र उत्पन्न किये। इसी प्रकार आप भी अपने तपोबल से मेरे पुत्र उत्पन्न करें।

पाण्डु बोले—कुन्ती! तुमने जो कहा, वह ठीक है। शास्त्रों का मत है कि पूर्व समय में स्त्रियाँ पूर्ण स्वाधीन थीं। वे जिसके साथ चाहतीं रहतीं, जिस-जिसके साथ चाहतीं, सहवास करतीं। क्वाँरेपन में भी वे सहवास करती रहती थीं। उनका यह काम बुरा न समझा जाता था। यही सामाजिक नियम था। उत्तर-कुरु में इस समय भी इसी नियम का पालन होता है। यह नियम प्राचीन और प्राकृतिक है। पशु-पक्षी सभी इसी नियम को मानते हैं। भारत में इस नियम के विरुद्ध तपस्वी श्वेतकेतु ने दूसरी मर्यादा बाँधी। श्वेतकेतु उद्दालक ऋषि के पुत्र थे। एक दिन वे पिता-सहित अपनी माता के पास बैठे थे। उसी समय एक ब्राह्मण आया और उनकी माता को सहवास के लिए उठकर ले गया। श्वेतकेतु को बड़ा बुरा लगा। उन्हें कुपित होते देख उनके पिता ने समझाते हुए कहा—"श्वेतकेतु! तुम व्यर्थ क्रोध न करो।

सभी स्त्रियों का यही नियम है कि वे जिसके साथ चाहती हैं, स्वच्छन्द होकर सहवास करती रहती हैं। यही सामाजिक नियम है। जो जिसके चाहता है सहवास करता है। इसमें बुरा मानने का कोई कारण नहीं है।'

विद्वान और तपस्वी पिता के समझाने पर भी श्वेतकेतु का मन शान्त न हुआ। श्वेतकेतु ने यह मर्यादा बाँध दी कि एक स्त्री एक ही पुरुष के साथ सहवास कर सके और रह सके। दूसरे पुरुष के साथ सहवास करना पाप और निन्दनीय माना जाय। इसी प्रकार जो पुरुष अपनी पत्नी को छोड़कर दूसरी स्त्री के साथ सहवास करे वह भी पाप का भागी हो। किन्तु पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा यदि पति दे और पत्नी उसे न माँगे तो भी उसे पाप होगा। उसी समय से पर-पुरुष और पर-स्त्री-गमन बुरा और पाप माना जाने लगा। किन्तु पशु-पक्षी आदि अभी तक उसी प्राचीन नियम का पालन करते हैं। राजा कल्माषपाद की रानी दमयन्ती ने अपने पति की आज्ञा से वशिष्ठ ऋषि के सहवास से अश्मक नामक पुत्र उत्पन्न किया था। हमारे कुरु-वंश में ही हम तीनों भाई व्यासदेव-द्वारा उत्पन्न किये गये हैं। धर्म-विरुद्ध होने पर भी पति की आज्ञा मानना स्त्री का परम धर्म है। मैं तुमसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि तुम किसी श्रेष्ठ तपस्वी ब्राह्मण

से पुत्र उत्पन्न कर वंश की रक्षा करो। इससे मुझे भी सद्‌गति प्राप्त होगी।'

पति को प्रसन्न करने के लिए कुन्ती ने उनसे दुर्वासा ऋषि द्वारा प्राप्त मंत्र की बात बतलाई और पूछा कि मैं किस देवता को बुलाकर उससे पुत्र उत्पन्न करूँ। पाण्डु ने प्रसन्न होकर कहा—तुम पहले धर्मराज को बुलाओ। उनके अंश से जो पुत्र होगा वह धर्मात्मा होगा।

अध्याय १२४

युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन का जन्म

वैशम्पायनजी बोले—जब गांधारी का गर्भ एक वर्ष का हो चुका था तब पति की आज्ञा से कुन्ती ने धर्मराज का आह्वान किया। उनके अंश से क्वाँर सुदी पंचमी, सोमवार, ज्येष्ठा नक्षत्र, दोपहर के समय अभिजित मुहूर्त में युधिष्ठिर का जन्म हुआ। पाण्डु के कहने से कुन्ती ने वायुदेव के द्वारा महाबली भीम को उत्पन्न किया। वे इतने बली थे कि एक बार जब कुन्ती की गोद से गिर पड़े थे तो उनकी चोट से एक भारी शिला चूर-चूर हो गई थी। भीम के बाद पाण्डु ने घोर तपकर देवराज इन्द्र को प्रसन्न किया। कुन्ती ने नियमपूर्वक व्रत-अनुष्ठान

किया। उसके बाद इंद्र के सहवास से कुन्ती के अर्जुन उत्पन्न हुए। अर्जुन के उत्पन्न होने पर सब देवगण सिद्ध, चारण, किन्नर, गंधर्व, अप्सरा, ऋषि, मुनि, नक्षत्र आदि के साथ पाण्डु के यहाँ उपस्थित हुए। उस पर्वत पर अद्‌भुत नृत्य-गीत हुआ। यह देख, वहाँ वालों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

पुत्र-लोभ में पड़कर पाण्डु ने कुन्ती से फिर एक और पुत्र उत्पन्न करने को कहा। कुन्ती ने कहा—शास्त्र की मर्यादा है कि पुत्रहीन होने पर स्त्री केवल तीन पुत्र उत्पन्न कर सकती है। चौथा पुत्र उत्पन्न करने पर वह कुलटा और पाचवाँ पुत्र उत्पन्न करने की चेष्टा करने पर वेश्या मानी जाती है। आप धर्म-शास्त्रों को जानने पर भी मुझसे फिर पुत्र उत्पन्न करने के लिए कैसे कहते हैं?

अध्याय १२५

नकुल-सहदेव का जन्म

वैशम्पायनजी बोले—कुन्ती और गांधारी के पुत्रों के कारण माद्री के मन में भी पुत्र की लालसा प्रबल हो उठी। उसने एकान्त में पाण्डु से कहा—'मुझे कुन्ती

और गांधारी के पुत्रों के कारण डाह नहीं है। मेरा मान कम होता है इसकी भी मुझे परवा नहीं है। पर दुःख केवल इतना ही है कि आपके शाप के कारण मैं पुत्रों का मुँह नहीं देख सकती। यदि कुन्ती चाहें तो मैं पुत्र पा सकती हूँ। पर खुद मैं उनसे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकती। वे मेरी सौत हैं।' पाण्डु ने माद्री से कहा—'मैं भी इसी चिन्ता में रहता था। पर मुझे पता न था कि तुम इस प्रकार पुत्र उत्पन्न करने के लिए राज़ी हो जाओगी। अब तुम्हारे मन की बात जानकर मैं इसका उपाय करूँगा।' पाण्डु के कहने से कुन्ती ने माद्री से किसी देवता का ध्यान करने को कहा। माद्री ने अश्विनीकुमारों का ध्यान किया। कुन्ती के मंत्र के प्रभाव से अश्विनीकुमारों ने आकर माद्री से नकुल, सहदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। इस प्रकार पाण्डु के पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। महर्षियों और सिद्धों ने आकर उनके नामकरण आदि संस्कार किये। एक बार पाण्डु ने कुन्ती से कहा कि तुम माद्री के और भी पुत्र उत्पन्न करने का उपाय करो। कुन्ती ने कहा कि माद्री बड़ी धूर्त है। उसने पहली ही बार ऐसे देवता को चुना, जिससे दो पुत्र उत्पन्न हों। मैं यह नहीं जानती थी, नहीं तो मैं भी इसी प्रकार फ़ायदा उठाती। अधिक

पुत्र होने से माद्री मेरा अपमान भी कर सकती है, क्योंकि बुरी स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा होता है। इस कारण आप अब इस सम्बन्ध में आगे कुछ न कहें।

पाण्डु के पाँचों पुत्र हैमवत पर्वत पर दिन-दिन चढ़ने लगे। इधर धृतराष्ट्र के भी पुत्र समर्थ होने लगे।

अध्याय १२६

पाण्डु की मृत्यु

वैशम्पायनजी बोले—पाँचों पुत्रों के मनोहर मुखों को देखकर पाण्डु के मन में फिर से उत्साह भर गया। वे अपनी रानियों को लेकर फिर नवीन-नवीन स्थानों की सैर करने लगे। एक बार वसन्त ऋतु में माद्री को लेकर वे वन की शोभा देखने निकले। चारों ओर फूलों की भरमार थी। भौंरे गूँज रहे थे। पक्षी मीठी-मीठी बोली बोल रहे थे। शीतल-मन्द-सुगन्ध-समीर अंग-अंग में उमंग भर रही थी। ऐसे समय में परम सुन्दरी माद्री को एकान्त में पाकर पांडु काम से विह्वल हो उठे। शाप की बात को याद करके माद्री डर से सिहर उठी। उसने पाण्डु को बहुत रोका, पर वे न माने। अन्त में सहवास करते ही उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। माद्री उनके शव से लिपट

कर ज़ोर-ज़ोर से विलाप करने लगी। सब ने आश्चर्य और शोक से देखा, पाण्डु मरे पड़े हैं। कुन्ती ने विलाप करते हुए कहा—मैं शाप के बाद से सदा महाराज को दूर ही रखती थी। आज यह कैसे हो गया! रो-धोकर अन्त में वे सती होने के लिए उद्यत हुईं। पर माद्री ने रोककर कहा—मेरे कारण स्वामी परलोक सिधारे हैं। इस कारण मैं ही उनके पास जाऊँगी। और मैं शायद तुम्हारे पुत्रों को अपने पुत्रों की तरह न पाल सकूँ। मेरी यही प्रार्थना है कि तुम मेरे भी पुत्रों को अपना मानकर पालना और मेरी देह को स्वामी की चिता पर जला देना। इतना कह माद्री ने प्राण छोड़ दिये।

अध्याय १२७

पुत्रों सहित कुन्ती का हस्तिनापुर आना

वैशम्पायनजी बोले—यह सब हाल देखकर वहाँ के सब ऋषि-मुनियों ने आपस में सलाह की कि महाराज पाण्डु के पुत्र और उनकी पत्नी हमारे यहाँ अब धरोहर की तरह हैं। इन्हें हस्तिनापुर पहुँचाना चाहिए। यह सोच वे पाँचों पाण्डवों के साथ कुन्ती को और पाण्डु तथा माद्री के शवों को लेकर हस्तिनापुर गये। उनके

आने का समाचार पाकर नगर के स्त्री-पुरुष और भीष्म, धृतराष्ट्र, विदुर, दुर्योधन आदि कौरव तथा सत्यवती, गांधारी, अम्बिका आदि रानियाँ उन्हें लेने नगर के बाहर गईं। सब यथास्थान वनवासी ऋषियों के पास बैठे। भीष्म ने सबका आदर-सत्कार किया और राज्य का कुशल-मंगल बतलाया। इसके अनन्तर ऋषियों के मुखिया ने उच्चस्वर से सब को सुनाकर कहा—महाराज पाण्डु वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करके तप करने के लिए हमारे बीच में शतशृंग पर्वत पर निवास करते थे। उन्होंने अपने वंश को नष्ट होने से बचाने लिए देवताओं से पाँच-पुत्र प्राप्त किये। सब से बड़े युधिष्ठिर धर्मराज के अंश से, भीम पवनदेव के अंश से, अर्जुन देवराज इंद्र के अंश से और नकुल-सहदेव अश्विनीकुमारों के अंश से उत्पन्न हुए हैं। आज पाण्डु को मरे सत्तरह दिन हुए हैं। आप माद्री के साथ उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया कीजिये और कुन्ती सहित इन पाँचों बालकों को ग्रहण कीजिये। इसीमें आप का मंगल होगा। यह कहकर वे ऋषि-मुनि यत्नों के साथ अन्तर्धान हो गये।

अध्याय १२८

पाण्डु की अन्त्येष्टि क्रिया

धृतराष्ट्र विदुर से बोले—महाराज पाण्डु और रानी माद्री की अन्त्येष्टिक्रिया विधिपूर्वक और धूमधाम से की जाय। पाण्डु धन्य हैं क्योंकि वे देवतुल्य पाँच पुत्र छोड़ गये हैं।

विदुर ने शीघ्र ही सब उचित प्रबन्ध कर दिया। फूलों से सजी हुई पालकी में रखकर, छत्र लगाकर, चँवर ढलते हुए शव ले जाया गया। चारों ओर बाजे बजाये जारहे थे और धन, रत्न, कपड़े लुटाये जारहे थे, दान दिया जा रहा था। अग्निहोत्र की अग्नि लेकर पुरोहित लोग आगे-आगे जारहे थे। भीष्म, धृतराष्ट्र आदि के साथ सब बन्धु-बांधव और नगरवासी विलाप करते हुए पीछे-पीछे चले। गंगा-तट पर दोनों शवों को स्नान कराकर चन्दन लगाया गया; फिर उत्तम वस्त्र पहनाये गये। इसके बाद विधिपूर्वक दाह किया गया। अन्त में रोते-रोते तिलांजलि दी गई। बारह दिन तक सब ने शोक-चिह्न धारणकर दुःख प्रकट किया।

अध्याय १२६

सत्यवती का तप, भीम को विष

वैशम्पायनजी बोले—यथा समय पिण्डदान और श्राद्ध किया गया, नाना प्रकार के दान दिये गये, भोजन कराया गया। अशौच पूरा होने पर सब लोग पांडवों को लेकर नगर में आये। इसी अवसर पर व्यासदेव ने सत्यवती से कहा—'माता! अब तुम्हें वन में जाकर तप करके सद्गति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। तुम्हारे पोतों के अन्याय-अनाचार के कारण कौरव-कुल का नाश हो जायगा। तुम उस दुखद घटना को देखकर संतप्त होने के लिए यहाँ मत रहो।' सत्यवती वन जाने को तैयार हो गईं। उनके समझाने से अम्बिका और अम्बालिका भी उनके साथ गईं। तीनों ने घोर तप करके सद्गति पाई।

इधर पाण्डव दिन-दूने रात-चौगुने बढ़ने लगे। छोटी-बड़ी सभी बातों में वे धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों से सदा बढ़े रहते। दुर्योधन आदि सौ भाई भी अकेले भीम से पेश न पा सकते। वे कभी दो-दो, तीन-तीन कौरवों (धृतराष्ट्र के पुत्रों) के सर पकड़कर लड़ा देते, कभी कई को एक साथ पकड़कर घसीटते, कभी दस-दस कौरवों को पकड़कर पानी में गोता लगाते और दसों को बेदम

करके छोड़ते, कभी कौरवों के किसी वृक्ष पर चढ़े रहने पर भीम उस वृक्ष को पकड़कर ऐसा हिला देते कि सब-के-सब कौरव मुँह-के बल पृथ्वी पर गिर पड़ते! कुश्ती, दौड़ आदि किसी भी काम में दुर्योधन आदि सौ भाई भीम की बराबरी न कर सकते। इस कारण दुर्योधन मन-ही-मन भीम से वैर मानने लगा। उसने सोचा कि यदि मैं भीम को मार डालूँ तो फिर दूसरे पांडवों को क़ैद करके अकेले निष्कंटक राज्य कर सकूँगा।

निश्चय के अनुसार दुर्योधन ने 'जल-विहार' का प्रबंध किया। नदी के तीर प्रमाणकोटि नामक स्थान पर नाना प्रकार के सजे हुए तम्बू खड़े कराये, उनमें रंग-विरंगी पताकाएँ लगवाईं और विविध प्रकार के भोजन-पेय आदि तैयार कराये। उस स्थान को सुख-भोग की सभी तरह की सामग्रियों से भर दिया। सब प्रबंध हो जाने पर दुर्योधन अपने भाइयों और पांडवों को लेकर बड़ी धूम-धाम से वहाँ गया। फिर पाण्डवों-कौरवों को छोड़कर और सबको उसने वहाँ से लौटा दिया। इसके बाद पाण्डव-कौरव वहाँ की शोभा देखने और वन-विहार करने लगे। वे सुन्दर बैठकों, बँगले-दार अटारियों, चित्रकारी और बेल-बूटे के कामों, जाली दार झरोखों, रंग-विरंगे फुहारों, नहरों, क्यारियों, तथा कमल के फूलों से सुशोभित सरोवरों का आनन्द लेने लगे।

फिर सभी मनमाने पक्कान्न, मिष्ठान्न, फल और नाना देशों से आई हुई तरह-तरह की सामग्री का उपभोग करने लगे। बड़ा प्रेम दिखलाते हुए दुर्योधन ने भीम को विष मिली हुई स्वादिष्ट मिठाई अपने हाथों से बहुत परिमाण में खिलाई। फिर सब ने जल में उतरकर खूब जल-विहार किया। जल-विहार के समय सबसे अधिक परिश्रम भीम ने किया। विहार के बाद सब ने सूखे वस्त्र पहने। पर थके रहने के कारण वे वहीं सो रहे। भीम भी लेट गये। एक तो थकान, दूसरे विष का प्रभाव। वे बेहोश हो गये। दुर्योधन इसी मौक़े की ताक में था। उसने भीम के हाथ-पैर कसकर मज़बूती से बाँध दिये और उन्हें गंगा के अथाह जल में डाल दिया। वे बहते-बहते नागलोक जा पहुँचे और विषधर नागकुमारों के ऊपर जा गिरे। सैकड़ों भयंकर विषधर नाग उनके शरीर से लिपट गये और चारों ओर से उन्हें डसने लगे। सर्पों के विष ने भीम के शरीर में फैलकर मिठाई के विष को दूर कर दिया। दोनों प्रकार के विष एक दूसरे के प्रभाव के कारण शान्त होगये। कुछ देर बाद भीम को होश आया। उन्होंने अपने बन्धन तोड़ डाले। फिर उठकर वे सर्पों को पटक-पटककर मारने लगे। जो सर्प किसी तरह बच गये, उन्होंने जाकर नागराज वासुकि से सब

हाल बतलाया। अनेक नागों के साथ वासुकि उस स्थान पर आये। उनके साथ आर्यक नामक नाग भी था। आर्यक मथुरा के राजा शूरसेन का नाना था। उसने अपने नाती के नाती भीमसेन को पहचाना और दौड़कर उन्हें गले से लगा लिया। वासुकि ने प्रसन्न होकर भीम का स्वागत किया और वे उन्हें (भीम को) प्रसन्न करने के लिए बहुत-सा धन-रत्न देने का उपक्रम करने लगे। तब आर्यक ने कहा कि भीम को धन-रत्न की कमी नहीं है। यदि इन्हें प्रसन्न करना है तो इन्हें कुण्ड से सिद्ध-रस पीने दीजिये, जिसमें ये महाबली हो जायँ। वासुकि ने भीम को सिद्ध-रस पीने की आज्ञा दे दी। भीम ने पवित्र हो देखते-देखते पहले एक कुण्ड का सारा रस पी लिया, फिर दूसरे का। इसी तरह वे एक-एक करके पूरे आठ कुण्डों का सिद्ध-रस पी गये। फिर बड़े आदर से दिये हुए नागों के दिव्य पलंग पर वे सो गये।

अध्याय १३०

भीम का नागलोक से आना

वैशम्पायनजी बोले—जल-विहार के बाद विश्राम करके सब कौरव और चार पाण्डव हस्तिनापुर लौटे

युधिष्ठिर को कपट का हाल कुछ भी मालूम न था, इससे उन्होंने सोचा कि भीम पहले ही नगर को चले गये हैं। इधर दुर्योधन अपने षडयंत्र को सफल होते देख मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ। युधिष्ठिर ने घर आकर भीम को खोजा। जब वे कहीं न मिले तो पाण्डव माता के साथ भाई के लिए विलाप करने लगे। विदुर ने आकर सबको धीरज बँधाया। कुन्ती ने कहा—"दुर्योधन भीम से जलता है। वह लोभी और नीच प्रकृति का है। कहीं उसने घात पाकर भीम को मार तो नहीं डाला ?"

विदुर जी ने कहा—व्यासदेव के वचन झूठे नहीं हो सकते। तुम्हारे पुत्र अवश्य दीर्घजीवी होंगे। तुम शंका न करो। इस समय दुर्योधन पर दोष लगाने से वह तुम्हारे दूसरे पुत्रों पर भी वार कर सकता है। इससे शान्त रहना ही अच्छा है। भीम जल्दी आकर मिलेंगे। तुम सोच न करो।

इधर भीम नागलोक में आठ दिन बाद जागे। आठ कुण्डों के सिद्ध-रस को पचा लेने के कारण उनको अपने शरीर में अपार बल जान पड़ने लगा। उन्हें जागा हुआ देख नागगण उनके पास आये और बोले—तुमने वीर्य-वर्द्धक सिद्ध-रस पिया है, इस कारण तुम्हारे शरीर में हजार हाथियों का बल आ गया है। नागों के कहने से भीम ने

दिव्य पाताल-गंगा में स्नान किया, दिव्य भोजन किये, विष-नाशक औषधियाँ खाईं और फिर नागों की सहायता से हस्तिनापुर में आकर वे अपनी माता और भाइयों से मिले। विदुरजी के कहने से पांडवों ने यह हाल किसी पर भी प्रकट नहीं किया। इसके बाद भी दुर्योधन ने भीम को विष देने और अनेक उपायों से मारने की चेष्टा की, पर विदुर की सहायता से वे सभी वारों से बचते रहे। पुत्रों को बड़े होते देख धृतराष्ट्र ने कृपाचार्य को उन्हें धनुर्वेद की शिक्षा देने के लिए नियुक्त किया।

अध्याय १३१

कृपाचार्य के जन्म की कथा

जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायनजी बोले—महर्षि गौतम के शरद्वान नामक पुत्र हुए थे। वे बाण के सहित उत्पन्न हुए थे और धनुर्विद्या से उन्हें अत्यंत प्रेम था। वे धनुर्वेद और युद्ध-विद्या में इतने पारंगत हो गये कि इन्द्र को भय होने लगा कि कहीं अपने शस्त्र-बल से ये मुझसे इन्द्रासन न छीन लें। इस कारण इन्द्र ने जानपदी नामक अप्सरा को शरद्वान के तप में विघ्न डालने को भेजा। जानपदी सज-धजकर उस स्थान पर गई, जहाँ शरद्वान धनुषबाण

लेकर धनुर्वेद का अध्ययन और तप कर रहे थे। अप्सरा के हाव-भाव और सुन्दर रूप से शरद्वान का मन चलायमान हो गया। किन्तु अपने ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मचर्य के कारण उन्होंने अपने को सँभाल लिया और वहाँ से वे अन्यत्र चले गये। किन्तु उनके बिना जाने ही उनका वीर्य उसी वन में शरस्तम्ब (सरकंडों में) गिर गया। उससे एक बालक और एक बालिका का जन्म हुआ। उसी अवसर पर शिकार खेलते हुए राजा शान्तनु वहाँ जा पहुँचे और बालक-बालिका को अपने साथ ले आये। इधर शरद्वान को जब पता चला कि मेरा वीर्य स्खलित हुआ और उससे एक बालक और एक बालिका का जन्म हुआ है तो वे राजा शान्तनु के पास गये और उनसे सब हाल बतला दिया। बालक का नाम कृपाचार्य पड़ा और बालिका का कृपी। शरद्वान ने अपने पुत्र को चार प्रकार की धनुर्विद्या, समस्त अस्त्र-शस्त्रों के चलाने की विधि तथा शस्त्रों का मर्म बतला दिया। कृपाचार्य धनुर्वेद के आचार्य हो गये। दूर-दूर से यादव आदि राजकुमार उनके पास धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आने लगे।

अध्याय १३२

द्रोणाचार्य

वैशम्पायनजी बोले—भीष्म ने पाण्डवों-कौरवों को युद्ध और शस्त्र-विद्या की विशेष शिक्षा दिलाने के विचार से द्रोणाचार्यजी को नियुक्त किया। द्रोणाचार्य जी भरद्वाज ऋषि के पुत्र थे। एक बार भरद्वाजजी अपने हरिद्वार के आश्रम में तप कर रहे थे। उसी समय परम सुन्दरी घृताची अप्सरा को देखकर उनका वीर्य स्खलित हो गया, जिसे ऋषि ने द्रोणकलश नामक यज्ञ-पात्र में रख लिया। उसीसे द्रोण का जन्म हुआ। द्रोण ने थोड़े समय में वेद-वेदांग पढ़ लिये। भरद्वाजजी अस्त्र विद्या जाननेवालों में श्रेष्ठ थे। कश्यपजी ने उन्हें आग्ने-यास्त्र दिया था। भरद्वाज ने वही अस्त्र अपने शिष्य अग्नि-वेश को और अग्निवेश ऋषि ने द्रोण को दिया। उत्तर-पाञ्चाल देश के पृषत नामक राजा भरद्वाज के मित्र थे। पृषत के पुत्र द्रुपद, द्रोण के मित्र थे। दोनों एक साथ खेलते और धनुर्विद्या सीखते थे। पृषत के मरने पर द्रुपद राजा हुए। इधर भरद्वाज के मरनेपर द्रोण पिता के आश्रम में रहकर तप करने लगे। कुछ समय बाद संतान की इच्छा से उन्होंने शरद्वान की कन्या कृपी से विवाह किया और

अश्वत्थामा (अश्व = घोड़ा, स्थाम = शब्द) नामक पुत्र उत्पन्न किया। इसी बीच में उन्होंने सुना कि परशुराम जी ब्राह्मणों को सर्वस्व दान कर रहे हैं। यह सुन द्रोणाचार्य भी अपने शिष्यों के साथ महेन्द्र पर्वत पर गये। परशुरामजी ने उनका स्वागत किया और उनका अभिप्राय जानकर कहा—"मैं अपना सब कुछ दान कर चुका हूँ। केवल अस्त्र और शरीर बचे हैं। जो चाहो उसे मैं दूँ।' द्रोण ने प्रयोग, उपसंहार और रहस्यसहित सब अस्त्र माँगे। परशुरामजी ने उन्हें सब अस्त्र दे दिये। प्रसन्न-चित्त द्रोण अपने मित्र राजा द्रुपद के पास गये।

अध्याय १३३

द्रुपद द्वारा द्रोण का अपमान

वैशम्पायनजी बोले—द्रोण ने पाञ्चाल-राज द्रुपद के पास जाकर कहा—'मित्र! तुमने मुझे पहचाना?' द्रुपद ने क्रोध से झिड़ककर उत्तर दिया—"अभी तुम्हें समझ नहीं आई। कहीं राजा तुम्हारे ऐसे कँगले से मित्रता कर सकते हैं? ग़रीब मनुष्य धनी का, मूर्ख विद्वान का और शक्तिहीन वीर पुरुष का मित्र नहीं हो सकता। जो धन और बल में समान होते हैं उन्हीं में मित्रता, शत्रुता और

विवाह हो सकता है। बुरी अवस्था में पड़ा हुआ मनुष्य भाग्यवान पुरुष के साथ मित्रता या शत्रुता नहीं कर सकता। राजा का मित्र राजा ही हो सकता है, कंगाल नहीं।"

द्रुपद की बातें सुनकर द्रोणाचार्य क्रोध से काँप उठे। फिर कुछ सोचकर वे हस्तिनापुर की ओर चल दिये।

अध्याय १३४

भीष्म का द्रोण को अपने यहाँ रखना

वैशम्पायनजी बोले—द्रोणाचार्य हस्तिनापुर आये और गुप्त रूप से कृपाचार्य के पास रहने लगे। एक दिन कौरव-पाण्डव मैदान में गुल्ली खेल रहे थे। अचानक गुल्ली कुएँ में गिर गई और बहुत प्रयत्न करने पर भी न निकली। बालकों के पास ही एक काला, दुबला, झुर्रियाँ पड़े हुए शरीरवाला ब्राह्मण देख पड़ा। वे उस से गुल्ली निकाल देने का आग्रह करने लगे। ब्राह्मणने अपनी अँगूठी कुएँ में डालकर कहा—'मैं अँगूठी के साथ गुल्ली भी निकाले देता हूँ।' यह कह उसने धनुष पर एक सींक चढ़ाकर गुल्ली को बेधा, फिर उस सींक में दूसरी सींक बेधी। इस प्रकार अनेक सींकों को एक में जोड़कर उसने गुल्ली निकाल दी। फिर अँगूठी को भी सींक से बेधकर निकाल दिया। यह सब देख कुमारों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

कुमारों ने कहा—आप अद्वितीय अस्त्रज्ञाता हैं। आप कौन हैं ? हम आपकी क्या सेवा करें ?

ब्राह्मण ने कहा—तुम लोग मेरे रूप और कार्य का वर्णन भीष्मजी से जाकर करो। वे मुझे पहचान लेंगे।

लड़कों की बातों से भीष्म समझ गये कि वे द्रोणाचार्य हैं, इस कारण वे प्रसन्न होकर स्वयं द्रोणाचार्य के पास गये और उन्हें आदर से अपने घर ले आये। सत्कार-पूजा के बाद भीष्म ने द्रोण से हस्तिनापुर आने का कारण पूछा। द्रोणाचार्य ने सब हाल बतलाते हुए कहा—'जब अश्वत्थामा कुछ बड़ा हुआ तो एक दिन अन्य ऋषिकुमारों को दूध पीते देख उसने भी दूध पीने के लिए हठ किया। मेरे पास गाय न थी। मैं बड़ी दूर तक ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मण की खोज में भटका जिसके पास अग्निहोत्र के कार्य से अधिक गायें हों और जिससे मैं धर्मानुकूल गोदान ले सकूँ। पर कहीं ऐसा ब्राह्मण न मिला। तब मैंने पिसे हुए चावलों को पानी में घोलकर पुत्र को पिलाया। वह अज्ञान बालक मारे ख़ुशी के यह कह कर नाचने-कूदने लगा कि मैंने भी दूध पिया है। पड़ोस के ऋषि-कुमार मेरी स्थिति जानते थे, इस कारण वे अश्वत्थामा पर हँसने लगे। उधर पड़ोसी भी मुझे धनहीन होने के कारण धिक्कारने लगे। यह सब मुझसे न

सहा गया। मैं ऐसे पड़ोसियों के पास रहने का साहस न कर सका। पर सेवावृत्ति भी न करना चाहता था। इसी बीच सुना कि द्रुपद को पांचाल देश का राज्य मिला है। द्रुपद मेरे साथ पढ़ते और रहते थे। हम दोनों में बड़ी मित्रता थी। द्रुपद ने अनेक बार सौगंध खाकर कहा था कि जब पिता राज्य देंगे तब मेरे साथ तुम (द्रोण) भी मौज करना। राज्य, सम्पत्ति सभी तुम्हारी होगी। द्रुपद की बातें याद करके मैं स्त्री-पुत्र के साथ उनके यहाँ गया। पर उन्होंने तिरस्कार करके कहा—'एक ग़रीब मनुष्य राजा का मित्र नहीं हो सकता। बहुत करो तो एक दिन इच्छा-भोजन कर लो।' ऐसी बातें सुन, मैं वहाँ से एक प्रतिज्ञा करके चल खड़ा हुआ।

भीष्म ने कहा—'आप यहाँ रहकर बालकों को दिव्य अस्त्रों की शिक्षा दीजिये। यह धन, राज्य आपका ही है। हम सब आपकी आज्ञा का पालन करेंगे। आपने यहाँ आकर हमारे ऊपर बड़ी कृपा की है।'

अध्याय १३५

कौरवों-पाण्डवों की शिक्षा

वैशम्पायनजी बोले—बहुत-सा धन-रत्न पाकर और पूजित होकर द्रोण कौरवों-पाण्डवों को अस्त्र-शस्त्र

की शिक्षा देने लगे। एक दिन द्रोण ने सब को बुलाकर कहा—मेरे मन में एक इच्छा है। तुम लोग प्रतिज्ञा करो कि अस्त्र-विद्या सीख लेने पर तुम उसे पूरी करोगे। इसपर सब चुप रह गये। तब अर्जुन ने आगे बढ़कर इसकी प्रतिज्ञा की। द्रोण ने उन्हें प्रसन्न हो गले से लगा लिया।

अब द्रोण से अस्त्र-विद्या सीखने यादव तथा अन्यान्य वंश के राजकुमार दूर-दूर से आने लगे। दुर्योधन का आश्रय पाकर सूत-पुत्र कर्ण भी द्रोण से अस्त्र-विद्या सीखने लगे। किन्तु सब बातों में अर्जुन ही सबसे बढ़कर निकले। वे सदा भक्ति से गुरु की सेवा भी करते थे। इस कारण द्रोण ने केवल उन्हीं को युद्ध-विद्या के गूढ़ रहस्यों को जानने योग्य समझा। प्रति दिन द्रोणाचार्यजी शिक्षा प्रारम्भ करने के पहले अपने प्रत्येक शिष्य को नदी से जल लाने के लिए भेजते। अपने पुत्र अश्वत्थामा को उन्होंने कलश दे रक्खा था और बाक़ी सबको एक-एक कमण्डल। कलसे का मुँह चौड़ा था, इस कारण वह जल्दी भर जाता और अश्वत्थामा सब से पहले गुरु के पास पहुँच जाते। दूसरों के आने तक द्रोण उन्हें श्रेष्ठ प्रयोग बतला देते। अर्जुन चतुर थे। वे यह बात ताड़ गये। तब वे वरुणास्त्र की सहायता से अपने कमण्डल को शीघ्र भर कर प्रतिदिन अश्वत्थामा के साथ गुरु के पास पहुँचने

और श्रेष्ठ प्रयोग सीखने लगे। अर्जुन खूब मन लगा कर अस्त्र-विद्या सीखते, गुरु की सेवा करते और दिन-रात अभ्यास करते रहते। इससे गुरु को वे बहुत प्रिय होगये। अर्जुन की लगन, परिश्रम और बुद्धि देख गुरु ने चुपके से अपने रसोइये से कह दिया कि तुम कभी अँधेरे में अर्जुन को भोजन न देना और न उनसे बतलाना कि गुरु ने ऐसा कहा है। किन्तु एक बार रात में भोजन करते समय दीपक बुझ गया। अर्जुन ने देखा कि अँधेरे में भी अभ्यास के कारण उनका कौर ठीक मुँह में ही जाता है। इससे उन्होंने यह समझ लिया कि अभ्यास करने पर अँधेरे में भी बाण ठीक निशाने पर मारा जा सकता है। फिर तो वे रात को अँधेरे में निशाना बेधने का अभ्यास करने लगे। द्रोण धनुष के चलने का शब्द सुनकर वहाँ आये और अर्जुन को अभ्यास करते देख प्रसन्न होकर बोले—'मैं तुम्हें सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनाने की चेष्टा करूँगा।' वे हाथी पर, रथ पर, घोड़े पर, पैदल युद्ध करने; गदा, तलवार, तोमर, प्रास तथा शक्ति चलाने की शिक्षा सबको देने लगे। पर अर्जुन को वे सब बातें विशेष रूप से समझाते। उनकी इतनी कीर्ति फैली कि दूर-दूर से राजकुमार उनके पास युद्ध और धनुर्विद्या सीखने के लिए आने लगे।

एक दिन हिरण्यधनु नामक निषाद-राज का पुत्र एकलव्य द्रोणाचार्यजी के पास धनुर्विद्या सीखने के लिए आया। शूद्र होने के कारण और इस भय से भी कि वह कहीं राजकुमारों से अस्त्र-विद्या में बढ़ न जाय, द्रोणाचार्य ने उसे शिक्षा देने से इनकार कर दिया। मन मसोसकर एकलव्य पास के वन में चला गया और द्रोण की मिट्टी की मूर्ति बनाकर उनके सामने बाण चलाने का अभ्यास करने लगा। लगन और अभ्यास के कारण वह शीघ्र ही बहुत अच्छा धनुर्धर हो गया।

एक दिन कौरव-पाण्डव दल-बल सहित वन में शिकार खेलने गये। राजकुमारों का एक कुत्ता वहाँ जा निकला, जहाँ एकलव्य एकाग्र मनसे बाण चलाने का अभ्यास कर रहा था। उसे देखकर कुत्ता भूकने लगा। एकलव्य ने फ़ुर्ती से सात बाण कुत्ते के मुँह में भर दिये। कुत्ता भागकर कुमारों के पास गया। उसकी दशा देखकर बाण चलाने वाले की हस्त-लाघवता और शब्दवेध के अभ्यास की सब तारीफ़ करने लगे। खोजते-खोजते उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति सब कुछ भूले हुए, एकाग्रमन से केवल बाण चलाने का अभ्यास कर रहा है। पूछने पर उसने बतलाया कि मैं द्रोणाचार्य का शिष्य एकलव्य हूँ। उसके अभ्यास को देख सब चकित रह गये। घर लौटने पर सबने गुरु

से एकलव्य का हाल बतलाया। अर्जुन ने एकांत में गुरू से कहा—आप की बात झूठी पड़ रही है। आपने प्रतिज्ञा की थी कि अर्जुन से बढ़कर दूसरा कोई धनुर्धर न होगा। आप का शिष्य एकलव्य तो मुझसे बढ़कर है।"

गुरु को बात लग गई। वे अर्जुन को लेकर उसी वन में गये। एकलव्य ने भक्ति-भाव से गुरु की पूजा की। द्रोणाचार्य ने कहा—यदि मुझे गुरु मानते हो तो मुझे गुरु दक्षिणा दो।'

एकलव्य ने कहा—'आपकी जो आज्ञा हो उसे मैं देने को तैयार हूँ।'

दोणाचार्य ने उससे उसके दाहिने हाथ का अँगूठा माँगा। एकलव्य तनिक भी विचलित न हुआ। उसने हँसते-हँसते दाहिने हाथ का अँगूठा काटकर दे दिया। अँगूठा देने के बाद एकलव्य ने अँगुलियों के सहारे बाण चलाये। पर अब न तो वह फ़ुर्ती रह गई थी और न वह ठीक निशाना ही। अर्जुन संतुष्ट होकर चले गये।

द्रोण के शिष्यों में भीम और दुर्योधन गदायुद्ध में, युधिष्ठिर रथ के युद्ध में, नकुल-सहदेव तलवार चलाने में, अश्वत्थामा सब अस्त्रों के रहस्यों के ज्ञान में सबसे बढ़कर निकले। किन्तु अर्जुन सभी बातों में सब से श्रेष्ठ थे। इसी कारण वे अतिरथ माने जाते थे। भीम के बल और

अर्जुन की धनुर्विद्या के कारण दुर्योधन उनसे द्रोह करने लगा।

शिक्षा पूरी होते देख द्रोण ने परीक्षा लेनी चाही। गुरु ने वृक्ष पर एक पक्षी रखा दिया और कौरवों-पाण्डवों से कहा—तुम लोग अपने-अपने धनुष लेकर तैयार रहो। जब मैं कहूँ तब उस पक्षी के सर का निशाना लगाना।'

सब से पहले गुरु ने युधिष्ठिर को बुलाकर बाण चढ़ा लेने को कहा और पूछा—तुम उस वृक्ष पर उस पक्षी को देखते हो!' युधिष्ठिर ने कहा हाँ मैं पक्षी को देखता हूँ।' फिर गुरु ने पूछा—"तुम वृक्ष को, मुझे, अपने भाइयों को और उस पक्षी भी देखते हो?' युधिष्ठिर ने कहा—'हाँ। मैं सब को देखता हूँ।' द्रोणाचार्य ने झिड़ककर कहा—तुम निशाना नहीं मार सकते। तुम हट जाओ।" इसके बाद उन्होंने दुर्योधन आदि सब को बारी-बारी से बुलाया और उनसे भी वैसे ही प्रश्न किये। सब ने वही उत्तर दिये जो युधिष्ठिर ने दिये थे। गुरु ने सब को झिड़ककर हटा दिया।

अध्याय १३६

अर्जुन का ब्रह्मास्त्र प्राप्त करना

वैशम्पायनजी बोले—अन्त में द्रोण ने अर्जुन को बुलाया और उनसे धनुष पर बाण चढ़वाकर कहा—'अर्जुन! तुम इस सामनेवाले वृक्ष को, पक्षी को और मुझको देख रहे हो?' अर्जुन ने उत्तर दिया—'मुझे केवल पक्षी देख पड़ रहा है और कुछ भी नहीं।' द्रोण ने फिर पूछा—'तुम पक्षी का कैसा आकार देख रहे हो?' अर्जुन ने कहा—'मैं केवल उसके सर को देख रहा हूँ। उसका बाक़ी शरीर मुझे नहीं देख पड़ता।' द्रोण ने प्रसन्न होकर आज्ञा दी—'बाण छोड़ो'। अर्जुन ने बाण छोड़ा। पक्षी का सर कटकर गिर पड़ा। द्रोण को विश्वास हो गया कि केवल अर्जुन ही द्रुपद को जीत कर उनकी प्रतिज्ञा पूरी कर सकते हैं।

कुछ समय बाद एक दिन सब शिष्यों के साथ द्रोण नदी-स्नान करने गये। वहाँ उन्हें एक मगर ने पकड़ लिया। गुरु ने चिल्लाकर शिष्यों से बचाने को कहा। पर सब घबराकर जैसे-के-तैसे खड़े रह गये। पर अर्जुन ने बात-की-बात में पाँच बाण चलाकर मगर को मार डाला और गुरु को छुड़ा लिया। अब द्रोण को दृढ़ विश्वास हो

गया कि अर्जुन ही सब से श्रेष्ठ हैं। उन्होंने प्रसन्न होकर अर्जुन को ब्रह्मशिर नामक दिव्य-अस्त्र दिया और कहा—'यह अस्त्र अमोघ है। इसे विरला-ही-कोई जानता है। पर तुम इसका प्रयोग मनुष्य पर न करना। इस अस्त्र में सारे जगत को जला डालने की शक्ति है। पृथ्वी पर तुम्हारे समान धनुर्धर दूसरा न होगा।'

अध्याय १३७

कुमारों की अस्त्र-परीक्षा

वैशम्पायनजी बोले—कौरवों-पाण्डवों की अस्त्र-शिक्षा समाप्त हुई। द्रोणाचार्य के कहने से उनकी परीक्षा के लिए एक बढ़िया रंगभूमि बनाई गई। उसमें भिन्न-भिन्न श्रेणी के लोगों के बैठने के लिए उचित स्थान तैयार किये गये। उत्सव के दिन व्यासदेव, भीष्म, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र, विदुर आदि कुरु-वंशी गांधारी, कुन्ती आदि रनिवास की स्त्रियों आदि को लेकर प्रेक्षागार में जा बैठे। नगर और राज्य के निवासी भी यथास्थान आ-आकर बैठे।

सफ़ेद वस्त्र, जनेऊ, माला, चन्दन से सुशोभित हो गुरु द्रोण ने मन्त्र-पाठ तथा स्वस्त्ययन के अनन्तर कार्य आरम्भ

किया। युधिष्ठिर, दुर्योधन आदि ने क्रम से अस्त्र-शस्त्र और घोड़ा, रथ आदि चलाने का अपना-अपना कौशल दिखलाया। सबने उनकी प्रशंसा की। फिर भीम और दुर्योधन गदा लेकर अखाड़े में उतरे और दोनों गदायुद्ध का कौशल दिखलाने लगे।

अध्याय १३८

अर्जुन का कौशल

वैशम्पायनजी बोले—भीम और दुर्योधन का युद्ध देख, दर्शक दो दलों में बँट गये। कुछ लोग तो भीम की जय मनाने लगे और कुछ दुर्योधन की। झगड़े की आशंका देख द्रोणाचार्य ने गदा-युद्ध जल्दी समाप्त कर दिया। फिर उन्होंने अर्जुन को अपना कौशल दिखलाने के लिए आगे बढ़ाया। अर्जुन को देख सब प्रसन्न होकर जयध्वनि करने और कहने लगे—'ये इन्द्र के पुत्र हैं। इनके समान धनुर्धर पृथ्वी पर दूसरा नहीं है।' अर्जुन की प्रशंसा सुन कुन्ती को बड़ा हर्ष हुआ। अर्जुन ने आग्नेय-अस्त्र से अग्नि प्रकट की, वरुण-अस्त्र से जल प्रकटकर उसे बुझाया। पर्जन्य-अस्त्र से बादल प्रकट किये, वायव्य-अस्त्र से वायु प्रकटकर उन्हें उड़ा दिया। इसी प्रकार उन्होंने अस्त्रों के

अनेक अद्भुत कौशल दिखलाकर सब को मुग्ध कर दिया। पाण्डवों की प्रशंसा सुन दुर्योधन झगड़ा करने को तैयार हो गया, पर द्रोण ने उसे रोक दिया।

अध्याय १३६

कर्ण का कौशल, अंग देश के राज्य की प्राप्ति

वैशम्पायनजी बोले—इसी समय घोर शब्द हुआ और दर्शकों के बीच से एक सूर्य के समान तेजस्वी, कवच-कुण्डल धारण किये, अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित कर्ण वहाँ आये और बोले—अर्जुन ! तुम घमंड मत करो। तुमने जो-जो कौशल दिखलाये हैं उन्हें मैं और भी सफ़ाई से दिखलाये देता हूँ।' यह कह कर्ण ने अपने कौशल से सबको आश्चर्य-चकित कर दिया। दुर्योधन ने प्रसन्न हो उन्हें गले लगाया और कहा—तुम्हारा आना मेरे लिए सौभाग्य की बात है। यह राज्य, ऐश्वर्य सब तुम्हारे ही हैं। मैं तुम्हारे वश में हूँ। तुम शत्रुओं के सर पर पैर रखकर मेरे साथ मित्र बनकर रहो। कर्ण ने कहा—'मैं आपकी मित्रता चाहता हूँ। मेरी इच्छा अर्जुन से द्वन्द्व-युद्ध करने की है। अर्जुन ने इन बातों से अपना अपमान समझकर कहा—'जो लोग बिना बुलाये आते और बक-

वाद करते हैं उन्हें नरक प्राप्त होता है। मैं अपने बाणों से तुम्हें वहीं भेजूँगा।

कर्ण ने उत्तर दिया—रंगभूमि सब के लिए है। राजा लोग बल-विक्रम को ही श्रेष्ठ समझते हैं। क्षत्रिय बल को ही श्रेष्ठ मानते हैं। वचनों से आक्षेप करना कमज़ोरों का काम है। तुम बाणों से बातें करो। मैं अभी तुम्हारा सर काटे लेता हूँ।'

गुरु की आज्ञा लेकर अर्जुन द्वन्द्व-युद्ध के लिए आगे बढ़े। दुर्योधन ने कर्ण का पक्ष लिया। इस युद्ध को देखने देवराज इंद्र और सूर्य भगवान भी उपस्थित हुए। इधर अपने दोनों पुत्रों को इस प्रकार आपस में लड़ते देख कुन्ती घबराकर बेहोश होगईं। विदुर ने उपचार कराकर उन्हें स्वस्थ कराया। कुन्ती यद्यपि मन-ही-मन तड़प रही थीं; पर कुछ कह न सकती थीं। इधर संयोगवश अर्जुन-कर्ण आमने-सामने आ गये। फिर क्या था! इसी समय बुद्धिमान कृपाचार्य ने अर्जुन के वंश का परिचय देकर कर्ण से कहा—हे वीर! तुम भी अपने वंश का परिचय दो। राजकुमार अज्ञात या नीच वंशवाले के साथ द्वन्द्व-युद्ध नहीं कर सकते।' कृपाचार्य की बातें सुनकर कर्ण ने लज्जा से मुख नीचा कर लिया। तब दुर्योधन ने आगे बढ़कर कहा—'शास्त्रों में लिखा है कि

राजवंश या अच्छे कुल में उत्पन्न पुरुष वीर पुरुष और सेनापति ये तीनों राजा हो सकते हैं। इसके अलावा यदि अर्जुन राजा को छोड़कर दूसरे से युद्ध नहीं कर सकते तो मैं वीर शिरोमणि कर्ण को अंगदेश का राजा बनाये देता हूँ।' यह कह उसने उसी स्थान पर विधिपूर्वक सोने के सिंहासन पर बैठाकर कर्ण को अंग देश का राजा बना दिया और उनसे मित्रता कर ली।

अध्याय १४०

रङ्गभूमि में सारथी अधिरथ

वैशम्पायनजी बोले—उसी समय कर्ण का पालने वाला सूत अधिरथ वहाँ आया। कर्ण ने आदर के साथ उसके चरणों में सर रख दिया। कर्ण को राजा होते देख उसे बड़ा आनन्द हुआ। इधर भीम ने यह जानकर कि अधिरथ सारथी ही कर्ण का पिता है, हँसकर कर्ण से कहा—तुम सारथी के लड़के हो, इस कारण युद्ध में अर्जुन के हाथों से मारे जाने योग्य भी नहीं हो। तुम अंगदेश का राज्य करने योग्य भी नहीं हो।' ऐसे वचन सुन कर्ण क्रोध से काँपने लगे। तब दुर्योधन ने बिगड़कर कहा—भीम! क्षत्रियों में बल का ही आदर किया जाता है।

शूरों और नदियों के जन्म का निश्चय नहीं रहता। वज्र हड्डियों से बना है, द्रोणाचार्य ने कलशे से, कृपाचार्य ने सरकंडों से जन्म लिया है। देव-सेनापति स्वामिकार्तिक के जन्म का कोई निश्चय नहीं कर सका। पाण्डवों के जन्म का हाल भी मुझे मालूम है। कवच-कुण्डलधारी कर्ण पृथ्वी-मंडल का राज्य कर सकते हैं। ये अंगदेश के राजा हैं। जो इनको राजा न माने, वह आकर युद्ध करे।' इन्हीं बातों में सूर्य डूब गये। दुर्योधन कर्ण का हाथ पकड़कर रंगभूमि से चला गया। अन्य सब लोग भी अपने-अपने घर गये। कुन्ती ने अपने पुत्र कर्ण को कवच-कुण्डलों से पहचान लिया था। उन्हें अंग-देश का राज्य पाते देख वे बहुत संतुष्ट हुईं। कर्ण को पाकर दुर्योधन को अर्जुन का भय जाता रहा। युधिष्ठिर ने कर्ण के कौशल से समझ लिया कि उनके समान धनुर्धर दूसरा नहीं है।

अध्याय १४१

गुरु द्रोण की गुरु-दक्षिणा, राजा द्रुपद बन्दी

वैशम्पायनजी बोले—द्रोणाचार्यजी ने कौरवों-पाण्डवों से कहा—मेरी गुरु-दक्षिणा यही है कि तुम पाञ्चाल-नरेश द्रुपद को हराकर उन्हें बाँध लाओ।' तब

अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो कौरव-पाण्डव द्रुपद पर चढ़ दौड़े। घोर युद्ध होने लगा।

अर्जुन ने गुरु से कहा—हम बाद में द्रुपद को हराकर पकड़ लेंगे। पहले कर्ण-सहित कौरवों को युद्ध कर लेने दीजिये। यह कह अर्जुन अपने भाइयों को लेकर कुछ दूर पीछे रुक गये। इधर घनघोर युद्ध के बाद द्रुपद ने कौरवों को हराकर भगा दिया। तब अर्जुन ने युधिष्ठिर को वहीं छोड़, भीम तथा नकुल-सहदेव के साथ आगे बढ़कर द्रुपद से युद्ध करना शुरू किया। भीषण युद्ध के बाद द्रुपद को पकड़कर अर्जुन गुरु के पास ले गये। द्रोणाचार्य ने बन्दी द्रुपद को अभय देकर कहा—मैं ब्राह्मण हूँ। मैं तुम्हें मारूँगा नहीं। तुम मेरे मित्र थे और अब भी मित्र ही हो। तुम केवल राजा से मित्रता करना चाहते थे, इस कारण मैं राजा होने के लिए गंगा के उत्तर किनारे का तुम्हारा आधा राज्य लिये लेता हूँ।' यह कह उन्होंने द्रुपद को बंधन से मुक्तकर गले लगा लिया। द्रुपद हारकर माकन्दी नामक देश के काम्पिल्य नगर में रहकर चर्मण्य-वती नदी तक गंगा के दक्षिण प्रदेश का राज्य करने लगे। अर्जुन ने द्रुपद को जीतकर गुरु को अहिच्छत्र देश का राज्य अर्पण कर दिया।

अध्याय १४२

पाण्डवों की उन्नति, धृतराष्ट्र की चिन्ता

वैशम्पायनजी बोले—युधिष्ठिर सहनशील, स्थिरमति दया-पूर्ण, क्षमावान, प्रजा और सेवकों से सद्व्यवहार करनेवाले, जितेन्द्रिय तथा सच्चरित्र थे, इस कारण सभी प्रजा उन्हें चाहने लगी। पाण्डु से भी अधिक उनका यश फैल गया। धृतराष्ट्र ने उनके गुणों के कारण उन्हें एक वर्ष बाद युवराज बनाने का निश्चय किया। इसी बीच बलदेवजी से भीम गदायुद्ध सीखकर निपुण हो गये। नकुल चित्र-युद्ध में अतिरथ माने जाने लगे। सहदेव नीति के पंडित हो गये। अर्जुन से द्रोणाचार्य ने प्रतिज्ञा करा ली कि वे उन से कभी युद्ध न करेंगे। संसार भर में यह बात फैल गई कि अर्जुन के समान दूसरा धनुर्धर नहीं है। उन्होंने गंधर्वों को हरानेवाले सौवीर देश के राजा को मारा, जिस यवनराज को पाण्डु भी न हरा सके थे उसे परास्त कर अपने अधीन कर लिया। फिर उन्होंने पूर्व देश और दक्षिण देश को भी जीता। इस प्रकार पाण्डव शत्रुओं को जीतकर राज्य बढ़ाने लगे। उनको इस प्रकार उन्नति करते, यश फैलाते और राज्य बढ़ाते देख एकाएक धृतराष्ट्र के मन में उनके प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया।

अध्याय १४३

नीतिज्ञ कणिक की कुटिल-नीति

वैशम्पायनजी बोले—पाण्डवों की उन्नति से धृत-राष्ट्र के मन में उनके प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया। उन्होंने नीतिज्ञों में श्रेष्ठ कणिक नामक ब्राह्मण-मन्त्री को बुलाकर सब हाल बतलाया और पूछा—पाण्डवों से मेल रखना उचित होगा अथवा झगड़ा करना?

कणिक ने कहा—राजा को प्रजा और शत्रुओं को दबाने के लिए दण्ड से और पौरुष से काम लेना चाहिए। अपने पर चोट करने का मौक़ा दूसरों को न दे, खुद सदा दूसरों पर चोट करने का मौक़ा ढूँढ़ते रहना चाहिए। मौक़े पर कभी न चूकना न चाहिए। शत्रु से अपने दोष छिपाये रहे, पर खुद शत्रु के दोष जान ले। जो काम शुरू करे उसे ज़रूर पूरा करे। यदि साधारण काँटे का भी कुछ अंश शरीर में रह जाता है, तो उससे सदा दुःख मिलता है। इस कारण शत्रु को निर्मूल करके ही छोड़ना चाहिए। जैसे कछुआ अपने अङ्गों को छिपा लेता है, उसी तरह राजा सदा अपने सहाय, साधन, उपाय आदि अङ्गों को छिपाकर रक्खे। यदि शत्रु बलवान हो तो उस पर उस समय आक्रमण करे, जब वह (शत्रु) किसी आपत्ति

में पड़ा हो। शत्रु का नाश करना ही परम धर्म है। एक नन्हीं-सी चिनगारी भी समय पाकर सारे जङ्गल को जला देती है। इस कारण छोटे-से-छोटे और निर्बल-से-निर्बल शत्रु को भी तुच्छ न समझना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो क्षत्रियधर्म का गर्व छोड़कर शत्रु के यहाँ भिखारी या सेवक बनकर काम बनाने में कोई दोष नहीं होता। विश्वास दिलाकर भी शत्रु को मारना पाप नहीं है। शरण में आये हुए शत्रु को भी नष्टकर डालना अनुचित नहीं होता। शत्रु के ऐश्वर्य, मंत्र, उत्साह, मंत्री, राज्य, दुर्ग, खज़ाना, सेना को साम, दान, दण्ड, भेद, उद्बन्धन, विषतथा वह्नि द्वारा नष्ट करते रहना चाहिए। यज्ञ, धर्म-कर्म आदि के द्वारा छलकर शत्रु को नष्ट करना चाहिए। शत्रु के क्षमा मांगने पर भी न पिघलना चाहिए। जिस तरह हो, शत्रु को नष्ट ही कर डालना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक उपाख्यान है।

व्याघ्र, चूहा, सियार, नेवला और भेड़िया ये पाँच मित्र एक वन में रहते थे। उसी वन में एक तेज और मोटा हिरन रहता था। व्याघ्र उसे मारना चाहता था, पर मार न सकता था। एक बार जब हिरन सो गया तब सियार के कहने से चूहे ने उसके पैर का मांस काट डाला। इससे वह भाग न सका। तब व्याघ्र

ने उसे मार डाला। सियार उस हिरन का सब मांस ख़ुद खाना चाहता था इस कारण उसने सब को स्नान करने के लिए भेज दिया। सब से पहले व्याघ्र लौटा। सियार ने चिन्ता से उदास होकर उससे कहा—'मित्र! मुझे इस हिरन के मांस को खाने की इच्छा नहीं है। चूहे ने अभी आकर कहा था कि मैंने (चूहे ने) इस हिरन को मारा है। अब मेरे मारे हुए शिकार को व्याघ्र भी खायेगा। उसके बलपौरुष को धिक्कार है।' व्याघ्र यह सुनकर यह कहता हुआ वहाँ से चला गया कि आज से मैं अपने पराक्रम से मारा हुआ ही शिकार खाऊँगा।' कुछ देर बाद चूहा आया। सियार ने उससे कहा कि नेवले ने अभी आकर मुझे कहा था कि मैं (नेवला) इस हिरन के माँस को न खाऊँगा, क्योंकि इसमें व्याघ्र के दाँतों का विष फैल गया होगा। मैं तो चूहे को खाकर अपना पेट भरूँगा।' चूहा यह सुन, डरकर भाग गया। इसके बाद भेड़िया आया। सियार ने उससे कहा कि व्याघ्र तुम से बहुत नाराज़ हैं। अब तुम जिसमें अपना कल्याण देखो, वही करो।' डरकर भेड़िया भी वहाँ से भाग गया। सब के बाद नेवला वहाँ आया। सियार ने उससे कहा—'मैंने व्याघ्र, चूहा, भेड़िया इन तीनों को अपने बाहुबल से भगा दिया है। यदि तुम इस मृग का मांस

खाना चाहते हो तो मुझसे लड़ो।' नेवला डरकर वहाँ से भाग गया। तब सियार ने अकेले उस मृग के मांस का मज़ा लूटा। सियार की नीति से चलनेवाला राजा सदा अधिक-अधिक सुख भोगता है। कायर को डरा-कर, वीर को विनय के द्वारा, लोभी को धन देकर तथा बराबरी वाले और नीच को अपना तेज दिखला कर बुद्धिमान को अपना काम सिद्ध करना चाहिए।

उन्नति चाहनेवाले राजा को चाहिए कि गुरु, पिता, भाई, मित्र, पुत्र भी यदि शत्रुता करें या शत्रुपक्ष में मिले हों, तो उन्हें मार ही डाले। जो पूज्य गुरुजन विरुद्ध मार्ग पर चलें या अच्छे-बुरे का विचार छोड़ दें तो उन्हें भी दण्ड देना उचित है। राजा को क्रोध की स्थिति में ऊपर से प्रसन्नता दिखलानी चाहिए, हँस-हँसकर बातें करनीं चाहिए। वार करते समय, उसके पहले और वार कर चुकने के बाद भी मीठे वचन बोलने चाहिए।

अपने वार से दूसरे का सर्वनाश होते देख स्वयं अन-जान-सा बनकर उससे सहानुभूति दिखलाना, शोक प्रकट करना और रोनी सूरत बना लेना चाहिए। शत्रु को बहुत समय तक सान्त्वना देकर, लाभ की बातें बतलाकर, अपनी धर्मनिष्ठा दिखलाकर अपने ऊपर विश्वास दिलाना चाहिए और फिर मौक़ा देखकर घात करना चाहिए।

जो नित्य धर्मनिष्ठा दिखलाता है, यदि वह कभी घो कर्म भी कर डालता है, तो भी उसका पापकर्म छिप जात है। जिसे मारना हो, उसका ख़ूब आदर करना चाहिए, उसे बढ़िया-चढ़िया वस्तुएँ भेंट देना चाहिए, उससे मीठी-मीठी और रहस्य की बातें करनी चाहिए। जिससे कुछ भय हो, और जिससे कुछ भय न हो, दोनों से ही सदा साव-धान रहना चाहिए। जिससे कुछ भय नहीं है उसके वार करने पर समूल-नाश हो जाता है, क्योंकि मनुष्य उससे प्रायः असावधान रहता है। किसी का भी अत्यधिक विश्वास न करे, क्योंकि जिसका अत्यधिक विश्वास किया जाता है उसकी चोट मर्म-स्थल पर पड़ती है। मित्रों और शत्रुओं के भेदों को जानने के लिए ख़ूब समझ-बूझकर, जाँचकर जासूस रखने चाहिए। अच्छे या बुरे, जिसी भी उपाय से हो, अपनी दीनता दूर करके अपना उद्धार, श्री-लाभ करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। लक्ष्मी पाकर धर्म का आचरण करे। जो किसी पर संदेह नहीं करता, उसकी भलाई नहीं होती। शोक में नल, राम आदि के उदाहरण देकर, लोभ में आगे के लाभ की आशा बँधा-कर, पंडित को धन-मान देकर वश में करना चाहिए। शत्रु से मेल करके निश्चिंत हो जाने से हानि उठानी पड़ती है।

अपने शत्रु के मर्मस्थल को बिना काटे राजा को सम्पत्ति नहीं मिलती। शत्रु की सेना जब थकी हुई हो, कमजोर हो गई हो, सांक्रामक रोग से पीड़ित हो, खाने-पीने के पदार्थों से हीन हो, किसी के विश्वास दिलाने के कारण धीमी पड़ गई हो, असावधान हो गई हो; उस समय उस पर वार करके उसे नष्ट कर देना चाहिए। सम्पत्ति प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले दो पुरुषों में कभी मित्रता नहीं रह सकती। सम्पत्ति पा जाने पर लोग मित्रता नहीं निभाते। इस कारण किसी की इच्छा पूरी तरह से पूरी न कर देना चाहिए, उसे थोड़ा-थोड़ा देकर लटका रखना चाहिए। इस प्रकार छिपाकर काम करे कि शत्रु-मित्र को तभी उसका पता चले जब वह पूरा हो जाय। जब तक विपत्ति न आये, उससे डरकर ऐसा प्रयत्न करता रहे कि वह (विपत्ति) न आने पाये, किन्तु जब विपत्ति के टलने का कोई उपाय न रह जाय तो निडर होकर और डटकर उसका सामना करना चाहिए। दैव जिसके प्रतिकूल है उस शत्रु को छोड़ देना अपनी मृत्यु बुलाना है। हरएक कार्य के कारण को पहले से ही देख-सुनकर निश्चित कर लेना चाहिए; क्योंकि एकाएक किसी काम के आ पड़ने पर बुद्धि-भ्रम हो सकता है। उन्नति चाहनेवाले राजा को चाहिए कि देश और काल का विचार करके उत्साह

के साथ यत्न करे। छोटे से शत्रु की भी कभी उपेक्षा न करे, क्योंकि अग्नि की चिनगारी की तरह वह बढ़कर सर्वनाश कर सकता है।

हे धृतराष्ट्र! इस समय आप प्रधान राजा माने जाते हैं। आपके भतीजे पाण्डव बड़े बली हैं। उनसे अपनी और अपने ऐश्वर्य की रक्षा का उपाय कीजिये। ऐसा कीजिये जिससें बाद में पछताना न पड़े।

यह कह, कणिक अपने घर चला गया। उसके उपदेश को सुनकर धृतराष्ट्र चिन्ता में डूब गये।

अध्याय १४४

दुर्योधन का पाण्डवों से जलना

वैशम्पायनजी बोले—शकुनि, दुर्योधन, कर्ण और दुःशासन ने सलाहकर कुन्ती-सहित पाण्डवों को वारणावत नगर में भेज दिया और उन्हें लाक्षागृह में जलाकर मार डालने का जाल रचा। किन्तु विदुर ने इस दुष्ट विचार को जानकर पाण्डवों को सावधान कर दिया और उनके भागने के लिए एक मज़बूत नाव भी तैयार करा दी। दुर्योधन के सेवक पुरोचन ने रात को पाण्डवों के घर में आग लगा दी। घर जलकर भस्म हो गया। उसी में पुरोचन तथा एक निषाद स्त्री और उसके पाँच पुत्र जल

कर भस्म हो गये। किन्तु सावधान रहने के कारण पाण्डव कुन्ती के साथ निकल भागे।' यह कथा विस्तार-पूर्वक इस प्रकार है।

पाण्डवों की उन्नति से जलकर कर्ण और शकुनि के साथ दुर्योधन, उन्हें मार डालने के उपाय सोचने लगा। युधिष्ठिर के गुणों से प्रसन्न होकर प्रजा उन्हीं को राजा बनाना चाहती थी। जगह-जगह यही चर्चा होने लगी कि अंधे होने के कारण धृतराष्ट्र को पहले भी राज्य नहीं मिला था, इस कारण अब वे राज्य के अधिकारी नहीं हो सकते। युधिष्ठिर पाण्डु के बड़े पुत्र हैं। कौरवों, पाण्डवों में सबसे जेठे हैं, धर्मात्मा और बुद्धिमान हैं। वे सबका उचित आदर-सत्कार, पालन और रक्षा कर सकेंगे। इस कारण उन्हीं को राजा बनाना उचित होगा।

यह सुन दुर्योधन ईर्ष्या से जलता हुआ धृतराष्ट्र के पास गया और सब बातें सुनाकर बोला—यदि पाण्डव राज्य पा जायँगे तो हमारे वंशवाले सदा दुःख ही भोगेंगे। आप कुछ ऐसा उपाय कीजिये जिससे हमें दूसरे के दिये हुए अन्न से अपना पेट न पालना पड़े। यदि पहले आप राजा होते तो राज्य हमें मिलता। फिर प्रजा की रुचि की बात ही न उठती।

अध्याय १४५

पाण्डवों को वारणावत नगर में भेजने का विचार

वैशम्पायनजी बोले—दुर्योधन की बातें सुनकर धृतराष्ट्र को कणिक की नीति याद हो आई। वे गहरी चिन्ता में पड़ गये। कर्ण, शकुनि, दुःशासन ने अवसर देखकर उनसे कहा—आप किसी तरह पाण्डवों को वारणावत नगर भेज दीजिये। पाण्डवों के यहाँ से चले जाने पर हमारा काम बन जायगा।

धृतराष्ट्र ने चिन्तित होकर कहा—पाण्डु तो नाम मात्र के राजा थे। वे मुझसे पूछकर सब काम करते थे। वे मेरा और सबका बड़ा सम्मान करते थे और सबको धन-मान से संतुष्ट रखते थे। पाण्डु के दिये हुए धन और वृत्ति से आज भी मंत्री, सेनापति, सैनिक और उनके पुत्र-पौत्र पल रहे हैं। मंत्री, प्रजा और सेना पाण्डु के धर्मात्मा पुत्र युधिष्ठिर के पक्ष में है। यदि पाण्डवों को हम बलपूर्वक उनके पिता के अधिकार से वंचित करेंगे तो सेना और प्रजा हमारे विरुद्ध हो जायगी और हमें राज्य और प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा।

दुर्योधन ने कहा—इस बात को समझकर ही मैं धन-मान से प्रजा को अपनी ओर करनेकी चेष्टा में लगा

हुआ हूँ। इस समय राज्य का धन-खज़ाना मेरे हाथों में है, मंत्री मेरे वश में हैं। यदि एक बार पाण्डव यहाँ से दूर चले जायँ तो मैं सिंहासन पर बैठकर अपनी जड़ जमा लूँ। फिर पाण्डवों का कोई भय न रह जाय। आपका यह कहना ठीक नहीं है कि भीष्म द्रोण, विदुर, कृप हमारा विरोध करेंगे। भीष्म सबको बराबर मानते हैं, इससे वे तो इस झगड़े से उदासीन ही रहेंगे। अश्वत्थामा मेरे साथ हैं, इस कारण द्रोण और कृप हमारे पक्ष में रहेंगे। अकेले विदुर पाण्डवों के पक्ष में होकर भी कुछ न करेंगे। उनका भय नहीं है। आप निश्चिन्त होकर पाण्डवों को शीघ्र वारणावत नगर को भेजकर मेरी चिन्ता दूर कीजिये।

अध्याय १४६

वारणावत जाने की तैयारी

वैशम्पायनजी बोले—इधर दुर्योधन धन-मान से प्रजा को अपने वश में करने लगा। उधर धृतराष्ट्र के सिखलाने से मंत्री पाण्डवों के सामने वारणावत की प्रशंसा करके उनको वहां जाने के लिए उत्सुक करने लगे। धीरे-धीरे पाण्डवों का मन वारणावत जाने को लल-

चने लगा। उनकी इच्छा जान धृतराष्ट्र ने कुछ दिन बाद उन्हें बुलाकर कहा—सब लोग वारणावत की बड़ी प्रशंसा करते हैं। सुना है, तुम वहाँ जाने को उत्सुक हो। इस समय वहाँ एक बड़ा मेला भी लगनेवाला है और उत्सव भी होगा। यदि तुम्हारा जी चाहे तो कुछ समय तक वहाँ रहकर सैर कर आओ। वहाँ के जो गुणी, गवैये, ब्राह्मण आदि तुम्हारे पास आयें उन्हें धन-मान से संतुष्ट करना। इससे तुम्हारा यश बढ़ेगा। फिर जब जी चाहे हस्तिनापुर चले आना।

युधिष्ठिर धृतराष्ट्र की चाल ताड़ गये। किन्तु समय को देखकर उन्होंने वारणावत जाना ही उचित समझा। भीष्म आदि से मिलकर वे यात्रा की तैयारी करने लगे।

अध्याय १४७

पुरोचन का लाक्षा-भवन बनवाने के लिए जाना

वैशम्पायनजी बोले—इधर दुर्योधन ने पुरोचन नामक मंत्री से कहा—'इस धन-धान्य-संपन्न पृथ्वी पर हमारा और तुम्हारा दोनों का ही समान रूप से अधिकार है। तुम से बढ़कर मेरा विश्वासपात्र सहायक और हितू दूसरा नहीं है। तुम जड़-मूल से मेरे शत्रुओं का

नाश कर दो। फिर हम तुम दोनों ऐश्वर्य और राज्य का उपभोग करेंगे। तुम अभी शीघ्रगामी रथ पर बैठकर वारणावत जाओ। वहाँ नगर के किनारे पर अग्नि में जल्दी जलनेवाले सरकंडे, लकड़ी आदि सामान का सुन्दर घर बनवाकर घी, तेल, चरबी, लाख आदि मिट्टी में मिलाकर ऊपर से ऐसा लेप करा दो कि कोई जान न सके। घर में स्थान-स्थान पर गुप्त रीति से आग भड़कानेवाले पदार्थों के ढेर इस प्रकार से जमाकर देना जिसमें कोई जान न सके। मकान सुखोपभोग की सामग्री और बढ़िया-बढ़िया वस्तुओं से भर देना। जब पाण्डव आ जायँ तो उन्हें ख़ूब आदर से सुखपूर्वक रखना। कुछ समय बाद जब पाण्डवों को तुम पर विश्वास हो जाय, तब रात को घर में आग लगाकर उन्हें जला देना। लोग समझेंगे कि अचानक आग लग गई होगी। इस प्रकार हमारा काम भी बन जायगा और निन्दा भी न होगी।'

दुर्योधन की आज्ञा से बहुत-सा धन लेकर पुरोचन वारणावत गया और वहाँ उसने सुन्दर लाक्षागृह तैयार करा दिया।

अध्याय १४८

विदुर का पाण्डवों को उपदेश

वैशम्पायनजी बोले—यथासमय धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर पाण्डव भीष्म आदि से मिलकर कुन्ती सहित वारणावत नगर को रवाना हुए। बहुत से नगरवासी और ब्राह्मण यह कहते हुए उनके साथ चले कि न्याय और धर्म के अनुसार तो युधिष्ठिर ही हमारे राजा हैं, क्योंकि वे राजा पाण्डु के जेष्ठ पुत्र हैं। अंधे धृतराष्ट्र अपने दुष्ट पुत्र दुर्योधन की बुरी सलाह में पड़कर धर्मात्मा पाण्डवों को यहाँ से बाहर भेज रहे हैं, वे उनका हक़ छीनना चाहते हैं। युधिष्ठिर ने उन्हें समझा-बुझाकर लौटा दिया।

तब विदुर ने यवनभाषा में युधिष्ठिर से कहा—मनुष्य को शत्रुओं के विचार को जानकर अपनी रक्षा का उपाय करना चाहिए। एक अस्त्र (अग्नि) है जो लोहे का न होने पर भी तीक्ष्ण है और शरीर का नाश कर देता है। जो उसे जानता है वह शत्रु के वार से बच जाता है। बिलों में रहने वाले जीव अग्नि से बच जाते हैं। (अर्थात् तुम सुरंग से होकर भाग जाना)। जिसके आँखें नहीं वह राह नहीं पा सकता। उसे दिशा का भ्रम हो जाता है (यानी तुम पहले से ही सब राह-घाट जाना

लेना।) स्वयं अस्त्र का प्रयोग करके ख़ुद बचना और शत्रु को नष्ट करना उचित होता है। (यानी ख़ुद मौक़ा पाकर पहले से आग लगाकर पुरोचन को नष्ट कर देना और आप बच जाना।) घूमने से राहों और नक्षत्रों का ज्ञान हो जाता है। जो अपनी इन्द्रियों को वश में रखता है उसे शत्रु कुछ हानि नहीं पहुँचा सकता।'

यह उपदेश दे विदुर लौट गये। कुन्ती के पूछने पर युधिष्ठिर ने उन्हें सब बतला दिया। यथासमय पाण्डवों ने वारणावत पहुँचकर नगर निवासियों से भेंट की।

अध्याय १४६

पाण्डव वारणावत में

वैशम्पायनजी बोले—पुरवासियों ने पाण्डवों का बड़े समारोह से स्वागत किया, उन्हें नाना प्रकार की भेंटें दीं। पाण्डवों ने सब का यथोचित आदर-सम्मान किया। फिर पुरमें जाकर पहले वे वेदपाठी ब्राह्मणों के यहाँ गये। फिर यथाक्रम सबके यहाँ जा-जाकर उन्होंने प्रजा और अधिकारियों को संतुष्ट किया। पुरोचन ने पाण्डवों को बड़े आदरसे लिया और उत्तमोत्तम वस्तुओं से उनको संतुष्ट करने की चेष्टा की। पाण्डव वहाँ सुख से रहने

लगे। दस दिन बाद पुरोचन पाण्डवों को लाक्षागृह में ले गया। युधिष्ठिर ने घर को देखकर समझ लिया कि उसमें ऐसे पदार्थ लगाये गये हैं जिनसे आग भड़क सकती है। भीम ने कहा—'तब हम क्यों न अपने उसी पहले-वाले स्थान पर रहें।' युधिष्ठिर ने कहा—'इस समय हम असहाय हैं। पुरोचन हमें ज़बर्दस्ती मार सकता है। हमें इस प्रकार रहना चाहिए जिसमें उसे यह मालूम न हो कि हमें आशंका हो गई है। बाद में चुपचाप भाग चलना चाहिए।

अध्याय १५०, १५२

लाक्षाभवन में सुरंग; लाक्षा-गृह-दाह

वैशम्पायनजी बोले—युधिष्ठिर उस मकान में रहकर उसमें सुरंग खोदने का विचार करने लगे। इसी बीच गुप्त रूप से विदुर का भेजा हुआ सुरंग खोदने में चतुर एक मनुष्य उनके पास आया। पाण्डवों ने जाँच-कर विश्वास कर लिया कि वह मनुष्य यथार्थ में विदुर जी का ही भेजा हुआ है। तब उन्होंने उसे गुप्त रूपसे सुरंग खोदने के काम में लगा दिया। पुरोचन दिन-रात उस मकान के द्वार पर बैठा रहता था। पर उसे सुरंग का

कुछ भी पता न चला। रात को पाण्डव अस्त्र-शस्त्र से लैस होकर सोते, सदा सावधान रहते, दिन में शिकार खेलते और सैर करते। कोई यह न जान सका कि उन्हें दुर्योधन की चाल का पता चल गया है। पुरोचन या नगर-वासी कोई भी उनके मन के भावों का पता न पा सके।

एक वर्ष वहाँ रहने के बाद युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा—'अब पुरोचन को विश्वास हो गया है कि हम लोगों को उसके विचारों का कुछ भी पता नहीं है। अब समय आ गया है कि हम लोग अपने स्थान पर छः मनुष्यों को जलने के लिए छोड़ दें, घर में आग लगाकर पुरोचन को जला दें और भाग चलें।' यह विचारकर एक दिन उन्होंने उत्सव करके सबको निमंत्रण दिया। दिन भर ख़ूब भीड़-भाड़ रही। रात को सब अपने-अपने घर चले गये। उस दिन एक मल्लाहिन अपने पाँच पुत्रों के साथ वहाँ आई थी। कुन्ती ने उन्हें ख़ूब भोजन कराया और रात को उन्हें वहीं आश्रय देकर सुला लिया। आधी रात को भीम ने पहले उस घर में आग लगाई जिसमें पुरोचन रहता था, फिर सब घर में आग लगाकर वे सुरंग से भाग निकले। पाण्डवों के घर में आग लगी देख नगरवासी हाय-हाय करते हुए दौड़े आये और घर के चारों ओर घूम-घूमकर रोने-कलपने लगे। उन्हें षडयंत्र

की आशंका हो गई थी, इस कारण वे दुर्योधन और पुरोचन को भला-बुरा कहने लगे। इधर पाण्डव सुरंग से निकलकर वन में पहुँचे। माता के कारण उन्हें चलने में देर होने लगी। तब भीम ने माता को कंधे पर चढ़ाया, नकुल-सहदेव को गोद में लिया और युधिष्ठिर तथा अर्जुन को बाहुओं पर बैठाकर वेग से चलना प्रारंभ किया।

वन में कुछ दूर जाने पर विदुर का भेजा हुआ एक मनुष्य पाण्डवों को मिला। उसने संकेत बतलाकर पाण्डवों को अपना विश्वास दिला दिया और कहा कि विदुर जी ने कहा है कि पाण्डव ज़रूर कर्ण, दुर्योधन को हरा कर राज्य पायँगे। पाण्डव उसके साथ गंगा के तीर पर पहुँचे और विदुरजी की भेजी हुई नाव पर सवार होकर पार उतर गये। वह मनुष्य उनसे विदा हो, उनके कुशल समाचार ले, विदुरजी के पास चला गया। गंगा के दूसरे किनारे पर पहुँच पाण्डवगण जल्दी-जल्दी वन में आगे बढ़ने लगे।

अध्याय १५३

धृतराष्ट्र का पाण्डवों के लिए शोक मनाना

वैशम्पायनजी बोले—वारणावतवासी पाण्डवों के शील और गुणों से उनको बहुत प्यार करने लगे थे।

उन्हें जला हुआ देख सब शोक करने और दुर्योधन को षडयन्त्र रचने के कारण कोसने लगे। घर के साथ उन्हें छः मनुष्यों की जली हुई लाशें देख पड़ीं, इस कारण उन्हें विश्वास हो गया कि कुन्ती सहित पाँचो पाण्डव जल गये। सुरंग खोदनेवाले मनुष्य ने सबके साथ मिल कर इस प्रकार राख आदि को हटाया कि उससे सुरंग पट गई और उसका किसी को पता तक न चला।

धृतराष्ट्र ने जब यह सब हाल सुना तो सबके साथ उन्होंने बड़ा शोक मनाया, खूब विलाप किया। फिर कुटम्बियों को वारणावत भेजकर खूब धन खर्च कराते हुए कुन्ती और पाण्डवों का विधिवत् क्रिया-कर्म कराया और शोक मनाया।

इधर गङ्गा के उस पार जाकर पाण्डव फिर जल्दी-जल्दी दक्षिण की ओर भागने लगे। पर थकान, नींद और उबड़-खाबड़ भूमि तथा लता-वृक्षों के कारण वे जल्दी चल न सके। तब युधिष्ठिर के कहने से भीमसेन फिर सब को लादकर तेज़ी से भागने लगे।

भीमसेन सबको लेकर बड़े वेग से चले। उनके वेग से लता-वृक्ष टूट-टूटकर इधर-उधर गिर पड़ते और पत्थर-चट्टान चूर-चूर हो जातीं। कुछ समय बाद वे एक स्थान पर जाकर ठहर गये। सब नींद और प्यास से

व्याकुल हो रहे थे। उन्हें एक वृक्ष के नीचे छोड़कर भीम पानी की खोज में चले। वन में जल-पक्षियों के शब्द के सहारे वे एक तालाब पर गये और वहाँ से जल लेकर अपने भाइयों के पास आये। तालाब दो कोस दूर था। भीम के लौटने तक सब सो गये थे। जल रख, वे माता और भाइयों की दुर्दशा देख, विलाप करने और दुष्ट दुर्योधन को कोसने और सबकी रक्षा के विचार से जागकर वहाँ पहरा देने लगे।

अध्याय १५५

भीमसेन और हिडिम्बा राक्षसी

वैशम्पायनजी बोले—पाण्डव जिस वृक्ष के नीचे पड़े सो रहे थे उससे कुछ ही दूर हिडिम्ब नामक एक महाबली, भयंकर, भीषण आकृतिवाला दुष्ट राक्षस बैठा हुआ था। मनुष्यों की गंध पाकर उसने उस ओर देखा और छः मनुष्यों को सोते देख हिडिम्बा नामक अपनी बहन को उन्हें मारकर लाने के लिए भेजा। हिडिम्बा पाण्डवों के पास गई। बलवान भीम को देखते ही वह उन पर मोहित हो गई। भीम के साथ विहार करने की लालसा से उसने अत्यन्त सुन्दर रूप बना, उनके सामने आकर

कहा—हे वीर ! तुम क्यों इस प्रकार यहाँ निर्भय होकर सो रहे हो ? यहाँ मनुष्यों को खानेवाले राक्षस रहते हैं। मेरे राक्षस भाई ने तुम लोगों के मारने के लिए मुझे भेजा है। पर मैं तुम पर मोहित हो गई हूँ। मैं तुमको अपना पति बनाकर आनन्द से विहार करना चाहती हूँ। तुम डरो नहीं। मैं तुम्हें अपने भाई से बचा लूँगी। तुम मुझे अपनी स्त्री बनाकर मेरे साथ विहार करो। मैं आकाश मार्ग से तुमको दिव्य स्थानों में ले जाकर विहार करूँगी। तुमको मेरे साथ बड़ा आनन्द आयेगा।

भीम ने उत्तर दिया—मैं अपने भाइयों तथा माता को यहाँ राक्षसों के मुँह में छोड़कर नहीं जा सकता।

हिडिम्बा ने विनीत भाव से कहा—तुम जो कहोगे मैं वैसा ही करूँगी। तुम इन्हें जगा दो। मैं सब को यहाँ से ले जाकर राक्षस से बचा लूँगी।'

भीम ने कहा—'तू चाहे यहाँ रह, चाहे चली जा। मैं अपने भाइयों को इस समय न जगाऊँगा। मुझे किसी का भी भय नहीं है।'

अध्याय १५६, १५७

हिडिम्ब दानव से युद्ध और उसका वध

वैशम्पायनजी बोले—देर होती देख राक्षस हिडिम्ब ख़ुद पाण्डवों की ओर बढ़ा। उसे आते देख हिडिम्बा ने भीम से कहा—'मेरा दुष्ट भाई आपको मारने आ रहा है। आप अपने भाइयों तथा माता के साथ मेरी पीठ पर सवार हो जाइये। मैं आकाश-मार्ग से सबको लेकर भाग जाऊँगी और अपने दुष्ट भाई से सब की रक्षा कर लूँगी। अब देर करने का समय नहीं है।'

हिडिम्बा ने भीम को भाग चलने के लिए बहुत तरह से समझाया, पर वे न माने। इसी समय हिडिम्ब वहाँ आ पहुँचा। बहन को देख वह उसकी दशा समझ गया। क्रोध से दाँत पीसकर उसने कहा—'तू मनुष्य-संग की इच्छा करके राक्षस-कुल में कलंक लगाना चाहती है। इन सब को मारकर मैं तुझे भी मारूँगा।

भीम नहीं चाहते थे कि उनकी माता तथा भाई जाग जायँ, इससे उन्होंने उसे आगे से जाकर रोका। एक-दूसरे को बुरा-भला कहते हुए वे भिड़ गये। भीम उसे और दूर वन में खींच ले गये। दोनों में घोर युद्ध होने लगा, जिसका शोर सुनकर कुन्ती और चारों पाण्डव भी जाग पड़े।

जागने पर कुन्ती ने अपने सामने परम सुन्दरी हिडिम्बा को देखा। पूछने पर उसने सारा हाल बतला दिया। चारों पाण्डव दौड़कर वहाँ जा पहुँचे, जहाँ युद्ध हो रहा था। अर्जुन ने युद्ध में भीम का साथ देना चाहा। पर भीम उन्हें दूर रहकर तमाशा देखने को कह, भीषण-युद्ध करते रहे। अन्त में उन्होंने राक्षस की कमर तोड़ दी और उसे मार डाला। सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। सवेरा होते देख वे वहाँ से जल्दीजल्दी आगे बढ़े। हिडिम्बा भी उनके साथ-साथ चलने लगी।

अध्याय १५८

भीम और हिडिम्बा से घटोत्कच का जन्म

वैशम्पायनजी बोले—हिडिम्बा को अपने साथ आते देख भीम ने खीझकर कहा—"राक्षस-कुलवाले वैर नहीं भूलते। वे हर प्रकार की माया रचकर बदला चुकाते हैं। तू भी अपने दुष्ट भाई के साथ यमलोक को जा।"

भीम को इस प्रकार क्रोधित देख युधिष्ठिर ने उन्हें शांत किया। तब हिडिम्बा ने कुन्ती से कहा—माता, आप से छिपा नहीं है कि स्त्रियों के लिए कामवेदना कितनी असह्य होती है। मैंने भीमसेन को अपना पति बना लिया

है। यदि वे मुझे स्वीकार न करेंगे तो मैं अपने प्राण दे दूँगी। आप मुझे मूढ़, अंधभक्त या अनुगत चाहे जो समझकर मुझपर कृपा करें और भीमसेन को मेरे लिए राज़ी कर दें। मैं दिनभर उन्हें दिव्य स्थानों में ले जाकर विहार करूँगी और नित्य रात को आपके पास पहुँचा जाया करूँगी। इसमें किसी प्रकार का धोखा न होगा। मैं आपकी भी हर तरह से सेवा करूँगी।

कुन्ती और युधिष्ठिर के कहने से भीम ने पुत्र उत्पन्न होने तक के लिए हिडिम्बा को ग्रहण किया। हिडिम्बा उनके साथ नाना प्रकार के दिव्य, सुन्दर, रमणीक स्थानों में जा-जाकर विहार करने लगी। कुछ दिन बाद भीमसेन के अंश से हिडिम्बा के एक बहुत ही पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके बाल ऊपर को उठे हुए थे और मुँह घड़े के समान था, इस कारण उसका नाम घटोत्कच पड़ा। प्रतिज्ञा के अनुसार पुत्र उत्पन्न होने पर हिडिम्बा उत्तर दिशा को चली गई। वीर शिरोमणि, अस्त्र-शस्त्र में निपुण घटोत्कच भी पाण्डवों से आज्ञा ले और यह प्रतिज्ञा कर चला गया कि 'स्मरण करते ही मैं आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा।'

अध्याय १५९

व्यास के कहने से पाण्डव एकचक्रा नगरी में

वैशम्पायनजी बोले—जटा-मृगछाला-वल्कल धारण कर पाण्डव वन में घूमते हुए आगे बढ़े। मार्ग में उन्होंने मत्स्य, त्रिगर्त, पाञ्चाल, कीचक आदि देशों के बनों को पार किया। रास्ते में उन्हें व्यासदेव मिले। उन्होंने सान्त्वना देते हुए कहा—तुम लोग दुष्ट दुर्योधन द्वारा अन्यायपूर्वक निकाल दिये गये हो। पर अन्त में तुम्हें सुख ही होगा। मैं तुम्हें अधिक प्यार करता हूँ। दो सन्तानों में से निर्बल और पीड़ित सन्तान पर ही लोग विशेष कृपा करते हैं, उसीसे अधिक सहानुभूति रखते हैं। इसी से मैं तुम्हारा शुभचिन्तक हूँ। तुम सामनेवाली एकचक्रा नामक नगरी में जाओ। जब तक मैं तुम से न मिलूँ तब तक तुम वहीं रहना। फिर उन्होंने कुन्ती से कहा—'तुम सोच न करो, शीघ्र ही ये तुम्हारे पाँचों महारथी पुत्र सब को जीतकर बड़े-बड़े यज्ञ करेंगे, ख़ूब दान देंगे, सुख-ऐश्वर्य भोगेंगे, राज्य करेंगे।' यह कह व्यासदेव उनके रहने का प्रबन्ध एक ब्राह्मण के यहाँ करके चले गये।

अध्याय १६०–१६२

ब्राह्मण के रोने से कुन्ती को दया

वैशम्पायनजी बोले—महापराक्रमी पाण्डव एकचक्रानगरी में रहने और भिक्षा माँगकर अपनी जीविका चलाने लगे। अपने गुणों से वे सबके प्यारे हो गये। सब जो भिक्षा लाते उसमें से आधी तो कुन्ती भीम को खिला देतीं और आधी में सब मिलकर गुज़र करते। एक दिन भीम भीख माँगने न गये। कुछ समय बाद एकाएक ब्राह्मण-ब्राह्मणी के रोने की आवाज़ सुन पड़ी। कुन्ती ने भीम से कहा—'इन पर कुछ विपत्ति पड़ी है। इनके यहाँ हम सुख से रह रहे हैं। इनके उपकार का बदला चुकाना चाहिए। जो सत्पुरुष हैं वे उपकार का बदला ज़रूर चुकाते हैं।'

कुन्ती ने देखा, ब्राह्मण विलाप करता हुआ कह रहा है—इस जीवन को धिक्कार है। इसमें नाना प्रकार की घटनाओं का सामना करना पड़ता है, अनेक दारुण दुःख सहने पड़ते हैं। धर्म-अर्थ-काम के अभाव से आत्मा को अनन्त दुःख भोगने पड़ते हैं। मुझे इस संसार से अनुराग है, इस कारण मुझे मोक्ष भी नहीं मिल सकता। जीवन में अर्थ आवश्यक है। परन्तु अर्थ के उपार्जन में अत्यन्त कष्ट उठाने

पड़ते हैं, फिर अर्थ यदि प्राप्त होकर नष्ट हो गया तो दारुण पीड़ा होती है। धन के कारण अपने सगे भी शत्रु बन जाते हैं। मैं किसी अन्य स्थान में भाग जाना चाहता था, पर मेरी प्रिय पत्नी को अपने बाप-दादों का यह स्थान इतना प्रिय है कि उसने मुझे जाने न दिया। सेवा करने और सुख देने वाली प्रिय-भार्या को छोड़कर मैं यहाँ से जा भी न सका। इस समय प्रेम के कारण पुत्र को तो छोड़ नहीं सकता। कन्या के जो पुत्र होता है उसी से प्राणी की सद्‌गति होती है; इस कारण मैं अपनी प्रिय कन्या को भी नहीं छोड़ सकता। मुझे ख़ुद मरने का डर नहीं है। पर मेरे मर जाने पर मेरे इन प्रियजनों का पालन-पोषण कौन करेगा? मैं न तो मर ही सकता हूँ और न जीवित रह सकता हूँ।

ब्राह्मणी ने विलाप करते हुए कहा—स्वामी! आपको कन्या-पुत्र देकर मैं आपके पितृ-ऋण को पूरा कर चुकी। मैं आपकी कृपा से सब भोग भी भोगकर संतुष्ट हो चुकी हूँ। विधवा होकर रहना सुरक्षित नहीं है; क्योंकि जैसे गीध मांस के ऊपर टूटते हैं उसी तरह लोग विधवा पर टूटते हैं। फिर मैं आपकी कन्या की रक्षा दुष्ट लोगों से न कर सकूँगी। आपत्ति से रक्षा पाने के लिए धन का संचय करना चाहिए, धन से स्त्री की रक्षा करनी चाहिए, किन्तु अपनी रक्षा स्त्री और धन लगाकर भी करनी

चाहिए। वंश भर की अपेक्षा अपनी रक्षा करना अधिक उचित है। मैं अपनी बलि देकर सब को बचाऊँगी।

ब्राह्मण की कन्या ने कलपते हुए कहा—एक-न-एक दिन आपको मुझे अपने से दूर करना ही पड़ेगा। तब आज ही मुझे त्यागकर सबकी रक्षा क्यों न होने दें। पुत्र से इस लोक और परलोक दोनों में ही मनुष्य का उद्धार होता है। इसी से वह पुत्र कहलाता है। पुत्र के जाने पर आप उसके शोक को सह न सकेंगे। आपके न रहने पर मेरी न जाने क्या गति होगी। इस कारण मुझे भेजकर आप सब की रक्षा करें।' कन्या के वचन सुन सब फूट-फूट कर रोने लगे। इसी समय नन्हें बालक ने तोतली वाणी में कहा—तुम सब क्यों रो रहे हो? मैं अभी जाकर इस तिनके से उस राक्षस को मारे आता हूँ।' बालक की बात सुन उस दुःख में भी सब को हँसी आगई।

इसी समय कुन्ती ने आगे बढ़कर उनसे कहा।

अध्याय १६३, १६४

कुन्ती और ब्राह्मण की बातें

कुन्ती बोलीं—'आपको क्या कष्ट है? बतलायें, तो मैं उसे दूर करने की चेष्टा करूँ।'

ब्राह्मण ने कहा—यहाँ एक विकराल राक्षस रहता है। उसे प्रतिदिन एक छकड़े भर अन्न, दो भैंसे और एक मनुष्य की भेंट दी जाती है। नगरवाले पारी-पारी से उसे यह सब देते हैं। पारी आने पर जो यह 'कर' राक्षस के पास नहीं पहुँचाता, उसे स्त्री-पुत्रों के साथ वह राक्षस मारकर खा जाता है। जो हमारा राजा है वह इस 'कर' को उठा देने और राक्षस से प्रजा की रक्षा करने का कोई उपाय नहीं करता। बहुत दिन बाद आज हमारी पारी है। इसी से हम चिन्तित हैं। हमारे पास इतना धन भी नहीं है कि हम एक मनुष्य मोल लेकर अपना पिण्ड छुड़ा सकें। अब एक यही उपाय है कि हम सब उस राक्षस के पास जाकर एक साथ प्राण दे दें।

कुन्ती ने कहा—'आप चिन्ता न करें। मैं अपने पाँच पुत्रों में से एक को आपके स्थान पर उस राक्षस के पास भेज दूँगी।' पर ब्राह्मण अपने लिए अपने अतिथियों के प्राण लेने को राज़ी न हुआ। तब कुन्ती ने फिर कहा—आप सोच न करें। पुत्र मुझे भी प्राणों से बढ़कर प्यारे हैं। पर मैं जानती हूँ कि वह राक्षस मेरे पुत्र को मार न सकेगा। मेरे पुत्रों के पास दिव्य अस्त्र हैं। पर आप इस बात को गुप्त रखियेगा, जिससे दूसरे लोग उन अस्त्रों को देने के लिए मेरे पुत्रों को तंग न करें।'

कुन्ती की बात सुन ब्राह्मण प्रसन्न हो गया। भीमसेन भी माता की आज्ञा मानकर जाने को राज़ी हो गये।

अध्याय १६५

युधिष्ठिर की शंका, कुन्ती का समझाना

वैशम्पायनजी बोले—भिक्षा माँगकर लौटने पर जब युधिष्ठिर को यह हाल मालूम हुआ तो वे विकल होकर कुन्ती से कहने लगे—पराये पुत्र के प्राण बचाने के लिए अपने पुत्र के प्राण देने को तैयार होकर तुमने लोक-शास्त्र-विरुद्ध कार्य किया है। हमें भीम के बल पर ही राज्य प्राप्त करने और दुष्ट दुर्योधन आदि को दण्ड देने की आशा है। उन्हीं भीम को आप राक्षस के पास भेज रही हैं। आपकी बुद्धि नष्ट तो नहीं हो गई?

कुन्ती ने शान्तिपूर्वक कहा—मैंने अज्ञान, मोह या लोभ के कारण यह कार्य नहीं किया है। मैं भीम के बल को खूब अच्छी तरह से जानती हूँ। वह अवश्य ही राक्षस को मारकर सबका संकट दूर कर देगा। इससे एक तो ब्राह्मण के उपकार का बदला चुक जायगा, दूसरे सब की रक्षा करने से पुण्य होगा। विपत्ति में पड़े हुए प्राणियों की रक्षा करना ही क्षत्रिय का परम धर्म है।

अध्याय १६६, १६७

राक्षस से भीम का युद्ध

वैशम्पायनजी बोले—युधिष्ठिर शान्त हो गये। दूसरे दिन भोजन की सामग्री लेकर भीम राक्षस के पास गये और वहाँ पहुँचकर स्वयं उसे खाने और उस राक्षस को पुकारने लगे। भीम के पुकारने पर महाबली, भयंकर राक्षस क्रोध करके दौड़ा और भीम को डाँटने लगा। भीम उसकी उपेक्षाकर दूसरी तरफ़ मुँह फेरकर भोजन करते रहे। राक्षस ने क्रोध से पागल होकर उनकी पीठ पर प्रहार किया। पर भीम हँसते हुए भोजन करते ही चले गये। राक्षस ने पागल होकर एक वृक्ष उखाड़ लिया और उसे उन पर चलाया। तब तक भीम भोजन की सब सामग्री को समाप्तकर चुके थे। वे उठे और उन्होंने बाँयें हाथ से राक्षस के चलाये हुए वृक्ष को रोक लिया, भीषण युद्ध आरम्भ हो गया। अन्त में भीम ने राक्षस के दो टुकड़े कर डाले। वह मर गया।

उस राक्षस को इस प्रकार मरा हुआ देख उसके बन्धु-बांधव—अनेक राक्षस—डर के मारे भीम की शरण में आये। भीम ने उनसे मनुष्यों को न मारने की प्रतिज्ञा कराकर उन्हें छोड़ दिया। वे डरकर वहाँ से

भाग गये। मरे हुए राक्षस की लाश को चुपके से नगर के द्वार पर रख, भीम अपने घर लौट गये। इधर नगरवासियों ने राक्षस को मरा हुआ देख बड़ा आनन्द मनाया। जिस ब्राह्मण की पारी थी उसने सबके पूछने पर कह दिया कि मुझे विलाप करते देख एक महात्मा ने उस राक्षस का वध किया है। तब से नगर वाले राक्षस के भय से छूटकर आनन्द से रहने लगे।

अध्याय १६८, १७०

द्रौपदी के स्वयंवर का समाचार, यज्ञ से द्रौपदी-धृष्टद्युम्न-जन्म

वैशम्पायनजी बोले—राक्षस को मारने के बाद पाण्डव वेद पढ़ते हुए वहाँ रहने लगे। कुछ समय बाद वहाँ एक ब्राह्मण आया और उस मकान में रहने लगा। वह अनेक देशों की बातें बतलाया करता था। पाण्डव उसकी बड़ी सेवा करते थे। एक दिन ब्राह्मण ने पाञ्चाल देश के राजा द्रुपद के यज्ञ से द्रौपदी कन्या और धृष्टद्युम्न तथा शिखण्डी नामक पुत्रों की उत्पत्ति तथा द्रौपदी के स्वयंवर की बातें संक्षेप में सुनाईं। पाण्डवों ने उनसे विस्तार से सब बातें कहने का अनुरोध किया।

ब्राह्मण ने द्रोण के जन्म से लेकर पाण्डवों द्वारा

द्रुपद के हराये जाने की कथा विस्तार से सुना दी और फिर कहा—हारने और आधा राज द्रोण को देने के कारण द्रुपद के मन में बड़ा क्रोध, बड़ी खीझ पैदा होगई। वे अस्त्र-शस्त्र के द्वारा द्रोण का सामना न कर सकते थे, इस कारण वे मंत्र-शक्ति रखनेवाले ब्राह्मणों की खोज करने लगे। खोजते-खोजते द्रुपद गंगा के किनारे याज, उपयाज नामक विद्वान, कर्मनिष्ठ, आलस्यहीन, तपस्वी ब्राह्मणों के आश्रम में पहुँचे। उन्हें विश्वास हो गया कि इन ब्राह्मणों से मेरा काम बन जायगा। वे वहाँ रहकर ब्राह्मणों की सेवा करने लगे। ब्राह्मण उनसे प्रसन्न हो गये।

एक दिन उपयाज के पैर पकड़कर द्रुपद ने कहा—आप समर्थ हैं। कोई ऐसा कार्य कीजिए, जिससे मेरे ऐसा पुत्र हो जो द्रोण को मार सके। मैं इसके बदले में आपको दस करोड़ गायें दूँगा, अथवा जो आप चाहें, मैं वही करने को तैयार हूँ।' उपयाज लोभ में पड़कर ऐसे दुष्कृत्य को करने के लिए तैयार न हुए। द्रुपद फिर मन लगाकर एक वर्ष तक उनकी सेवा में लगे रहे। तब उपयाज ने कहा—'तुम मेरे बड़े भाई याज के पास जाओ। उन्हें धन का लोभ है। एक बार उन्होंने पृथ्वी पर गिरा हुआ एक फल उठा लिया था। उठाते समय उन्होंने यह न देखा कि वह स्थान पवित्र है या

अपवित्र। जो एक स्थान में अपवित्रता या शुद्धता का विचार नहीं करता, वह दूसरे स्थान पर भी उसका ख़्याल नहीं रख सकता। वे दोष-युक्त वस्तु के ग्रहण करने में कोई विचार न करेंगे और धन के लोभ में पड़कर तुम्हारा काम कर देंगे।'

द्रुपद ने याज के पास जाकर यज्ञ कराने का प्रस्ताव किया तो उन्होंने स्वीकार कर लिया। उपयाज से पूछकर उन्होंने यज्ञ की सामग्री मँगवाई और विधिपूर्वक यज्ञ किया। यज्ञ समाप्त होने पर याज ने द्रुपद को रानी से यज्ञ की हवि खाने के लिए कहा। रानी ने कहा—मैंने अभी मुख में सुगंधि और अंगों में अंगराग लगाया है। आर्य तनिक ठहरें। मैं स्नान करके तब हवि ग्रहण करूँगी।' याज ने यह कहकर उस हवि को अग्नि में छोड़ दिया कि 'मुझे रानी के आने-न-आने की वैसी परवा नहीं है। मैं अग्निकुण्ड से ही पुत्र-कन्या उत्पन्न कर लूँगा।'

हवि के अग्नि में पड़ते ही किरीट, कवच, धनुष-बाण और तलवार सहित धृष्टद्युम्न नामक परम प्रतापी कुमार और कृष्णा नामक एक परम सुन्दरी कन्या प्रकट हुई। उसी समय आकाश-वाणी भी हुई कि यह पुत्र द्रोण को मारेगा और इस कन्या से क्षत्रिय-वंश का नाश होगा। रानी डरकर याज के पास गई और उन्हें प्रसन्न कर वर

प्राप्त किया कि पुत्र-कन्या मुझे ही अपनी माता मानें। द्रुपद बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने धृष्टद्युम्न को द्रोणाचार्य से पास अस्त्र-विद्या सीखने के लिए भेजा। सब हाल जान कर भी द्रोण ने धर्म समझकर उसे सब अस्त्र सिखला दिये।

अध्याय १७१, १७२

पाञ्चाल देश की यात्रा, द्रौपदी के पूर्वजन्म की कथा

वैशम्पायनजी बोले—द्रुपद की कन्या कृष्णा के रूप-गुण का बखान सुनकर पाँचों पाण्डव उसको प्राप्त करने के लिए व्याकुल होने लगे। कुन्ती ने उनके मन की बात समझकर कहा—'हमें यहाँ रहते बहुत दिन बीत गये। अब यहाँ न तो कुछ देखने-सुनने को रह गया है और न भिक्षा ही उतनी आसानी से मिल सकती है। मैंने सुना है कि पाञ्चाल देश में बड़ी आसानी से बहुत अधिक भिक्षा मिलती है। यात्रा में नवीन और विचित्र वस्तुएँ भी देखने को मिलेंगी।'

तब सभी ने सलाह करके पाञ्चाल देश की यात्रा की।

जब एकचक्रा नगरी में पाण्डव रहते थे तब उनके यहाँ व्यासदेव जी आये। पाण्डवों ने उनकी पूजा की। कुशल-प्रश्न के बाद व्यासदेवजी कहने लगे—पूर्व समय में एक

परम तपस्वी ऋषि के एक सुंदरी कन्या हुई। बड़ी होने पर उसे कोई वर न मिला। उसने दुःखी होकर शिवजी की बड़ी भक्ति से आराधना की। शिवजी ने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। कन्या ने पाँच बार 'पति-पति' कहा। शिवजी ने कहा—तुमने पाँच बार 'पति' शब्द का उच्चारण किया है इस कारण तुम्हारे पाँच पति होंगे। कन्या उदास हो गई। तब शिवजी ने कहा—दूसरे जन्म में तुम द्रुपद राजा के यहाँ जन्म लोगी। तब तुम्हें पाँच पाण्डव पति के रूप में मिलेंगे।' इस उपाख्यान को सुनाकर व्यासदेव ने पाण्डवों को समझा दिया कि तुम जाकर द्रुपद की कन्या को प्राप्त करो। तुम्हारे सब दुख दूर हो जायँगे। तुम पाँचों भाई एक साथ मिलकर उसे अपनी पत्नी बनाना।

अध्याय १७३

अङ्गारपर्ण गंधर्व से अर्जुन का युद्ध

वैशम्पायनजी बोले—'पाण्डव कुन्ती सहित छिपकर पांचाल देश की ओर जा रहे थे। रास्ते में सोमाश्रमायण तीर्थ के पास वे गंगा को पार करने का उद्योग करने लगे। अँधेरी रात में अर्जुन रास्ता दिखलाने के लिए एक लकड़ी जलाकर आगे-आगे चल रहे थे। अँधेरे में एक

गंधर्वराज अपनी स्त्रियों के साथ जल-विहार कर रहा था। उसने अर्जुन को देख, उन्हें बुरा-भला कहकर आगे बढ़ने से रोका। अर्जुन ने कहा कि गंगा, यमुना आदि पवित्र नदियों के जल को सभी समय उपयोग में लाने का सब को अधिकार है। हम तेरे कहने से कैसे रुकें?

वाद-विवाद के कारण दोनों युद्ध करने लगे अन्त में अर्जुन ने आग्नेयास्त्र से उसे अचेत कर दिया और बाल पकड़कर खींचते हुए वे उसे अपने भाइयों के गये। गंधर्व की पत्नी कुम्भीनासी ने पाण्डवों के पास आकर बड़ी प्रार्थना की और गिड़गिड़ाकर अपने पति के प्राणों की भिक्षा माँगी। युधिष्ठिर के कहने से अर्जुन ने गंधर्व को छोड़ दिया। गंधर्व ने कहा—मेरा नाम अंगापर्ण है। मैं कुबेर का मित्र हूँ। मैं तुम्हें प्रसन्न होकर गंधर्व-विद्या देना चाहता हूँ। इसी विद्या के कारण गंधर्व मनुष्यों से श्रेष्ठ हैं और आकाश-मार्ग से जाकर देवगण के साथ सुख-भोग कर सकते हैं। मैं हर एक भाई को गंधर्व जाति के सुन्दर पराक्रमी सौ-सौ घोड़े भी दूँगा। गंधर्व विद्या को लेने के लिए अर्जुन के राज़ी न होने पर उसने कहा—बदले में तुमसे आग्नेयास्त्र ले लूंगा। मैं जानता हूँ कि तुम पाँचों भाई देवताओं के अंश से उत्पन्न हुए हो। ब्रह्मचर्य के कारण ही तुम मुझे जीत सके

अपनी उन्नति चाहता हो उसे ब्रह्मचर्य का पालन कर योग्य पुरोहित की सलाह से चलना चाहिए।

अध्याय १७४

सूर्य-कन्या तपती और संवरण

गंधर्व बोला—पूर्व समय में सूर्य भगवान के तपती नाम की एक परम सुन्दरी, गुणवती और शील-व्रतधारिणी कन्या हुई। सूर्यदेव उसके लिए योग्य वर खोजने लगे। पर उन्हें उचित पात्र न मिला। उसी समय कुरुवंशी राजा ऋक्ष के पुत्र संवरण विधिपूर्वक भक्तिभाव से सूर्यदेव की आराधना करने लगे। संवरण को सर्वगुण सम्पन्न देख सूर्य ने उन्हें अपनी कन्या देने का विचार कर लिया। एक दिन संवरण शिकार खेलने वन में गये। वहाँ उनका घोड़ा मर गया। राजा पैदल ही विचरने लगे। एक स्थान पर उन्हें लक्ष्मी के समान सुन्दरी, सूर्य की प्रभा के समान तेजस्विनी, अग्नि-शिखा के समान उज्ज्वल, चन्द्रकला के समान निर्मल, सोने की मूर्ति-सी एक युवती खड़ी देख पड़ी। मानों संसार का सौंदर्य मथकर उसकी रचना की गई हो। राजा ने मोहित होकर उसकी बड़ी प्रशंसा की और अपने मुग्ध होने की बात कही। युवती बिना उत्तर दिये ही अदृश्य हो गई। तब राजा उसे न पा वहीं लोटकर विलाप करने लगे।

अध्याय १७५

संवरण-तपती-संवाद

गंधर्व बोला—राजा को विलाप करते और शोक से सर धुनकर पछाड़ खाते देख वह कन्या फिर प्रकट हुई और बोली—'वीर होकर तुम्हें यह सब शोभा नहीं देता।'

उसके वचन सुन संवरण उठ बैठे और विनय-पूर्वक बोले—हे कमलनयनी! संसार में तुम्हारे समान दूसरी स्त्री सुंदरी नहीं है। तुम्हारे चन्द्रानन ने मुझे वश में कर लिया है। अब मेरे प्राण तुम्हारे हाथ में हैं। तुम मुझे स्वीकार न करोगी तो मैं न बचूँगा।'

युवती मधुर मुस्कान के साथ बोली—'मैं भी तुम पर प्राण न्योछावर कर रही हूँ। आप मेरे पिता सूर्य देव से मुझे माँग लीजिये। मैं उनकी छोटी पुत्री तपती हूँ।'

अध्याय १७६

वशिष्ठ की सहायता से तपती की प्राप्ति

गंधर्व बोला—यह कह तपती अन्तर्धान हो गई। उसके आँखों से ओझल होते ही संवरण फिर विकल होकर गिर पड़े। इधर सेना तथा अनुचरों को लेकर मंत्री उन्हें खोजता हुआ आया। उनकी यह दशा देख उन्हें

उठाकर उपचार करने लगा। होश में आकर राजा ने मंत्री को छोड़कर और सबको वहाँ से वापस भेज दिया। फिर वे एकाग्रमन से सूर्य भगवान की आराधना करने लगे। इधर राजा के पुरोहित वशिष्ठजी ने योगबल से सब हाल जान लिया। वे राजा को धैर्य देकर सूर्य भगवान के पास गये और उन्हें प्रसन्न करके राजा के लिए तपती को माँगा। सूर्य भगवान ने प्रसन्न हो तपती को उनके साथ जाने की आज्ञा दे दी। वशिष्ठ जी ने तपती को लाकर संवरण को दे दिया। संवरण, राज्य का भार मंत्री के ऊपर छोड़कर, तपती के साथ नाना प्रकार से विहार करने लगे। वे सब कुछ भुलाकर लगातार बारह वर्ष तक भोग-विलास में मग्न रहे। इधर उनकी प्रजा अकाल आदि से मरने लगी। देश को उजड़ता और प्रजा को अन्न-वस्त्र बिना मरते देख वशिष्ठ ने राजा संवरण को सावधान किया। राजा राजधानी में आकर राज काज देखने लगे। प्रजा के सारे दुःख दूर हो गये, वह फिर धन-धान्य से पूर्ण हो गयी। राजा ने तपती के साथ बहुत से यज्ञ किये। तपती के गर्भ से महाराज कुरु उत्पन्न हुए। इसी कारण कुरुवंश वाले तापत्य कहे जाते हैं।

अध्याय १७७

वशिष्ठ के जन्म की कथा

वैशम्पायनजी बोले—अर्जुन के पूछने पर गंधर्व ने वशिष्टजी के जन्म की कथा कहना प्रारंभ किया। वह बोला—वशिष्ठजी ब्रह्माजी के मानस-पुत्र और सती अरुन्धती के पति हैं। उन्होंने काम और क्रोध दोनों को जीत लिया था। विश्वामित्र ने उनके पुत्रों का वध किया, उन्हें बहुत सताया, पर वशिष्ठ ने विश्वामित्र और उनके कुशिक वंश को, शक्ति रहते हुए भी, नष्ट नहीं किया। इक्ष्वाकुवंश के राजाओं ने उन्हीं जितेन्द्रिय महात्मा वशिष्ठ को अपना पुरोहित बनाकर इतना राज्य बढ़ाया, यश और प्रताप का विस्तार किया, देव-दुर्लभ सुख-ऐश्वर्य भोगे। हे पाण्डव! तुम भी एक गुणी, जितेन्द्रिय, विद्वान् धर्म-अर्थ-काम के तत्वों को भली भाँति जानने वाले ब्राह्मण को अपना पुरोहित बनाकर उन्नति करो।

अध्याय १७८

वशिष्ठ-विश्वामित्र की कथा, नन्दनी-हरण।

अर्जुन के प्रश्न करने पर गंधर्व ने कहा—कान्यकुब्ज देश के गाधि नामक एक महापराक्रमी राजा के

विश्वामित्र नासक परम तेजस्वी पुत्र हुए। विश्वामित्र एक बार वन में शिकार खेलते समय वशिष्ठजी के आश्रम में गये। वशिष्ठजी ने अपनी नन्दनी नामक कामधेनु गाय के बल पर विश्वामित्र की सेना सहित ऐसी खातिरदारी की, उन्हें ऐसे पदार्थ दिये, जो राजाओं को भी दुर्लभ थे। विश्वामित्र यह सब देख नन्दनी पर मुग्ध हो गये। वे दस करोड़ गायें देकर बदले में नन्दनी को माँगने लगे। पर वशिष्ठ उसे देने को राजी न हुए। तब विश्वामित्र के कहने से सिपाही लोग जबर्दस्ती नन्दनी को मारकर ले जाने लगे। सैकड़ों डंडे खाने पर भी नन्दनी आश्रम से बाहर न निकली। यह समझकर कि ब्राह्मण का बल क्षमा है, सब कष्ट सहने पर भी वशिष्ठजी ने क्षमा न छोड़ी। नन्दनी ने अपने ऊपर होनेवाले कष्टों को तो सह लिया; पर जब उसके बछड़े पर अत्याचार होने लगा तब उसने क्रोध करके अपने अङ्गों से पह्लव, द्रविड़, शक, यवन, शबर, पौण्ड्र, किरात, सिंहल, खश, चिबुक, पुलिन्द, चीन, हूण, केरल आदि म्लेच्छ जातियाँ उत्पन्न कीं। इन म्लेच्छों ने विश्वामित्र की सेना को हराकर भगा दिया।

तब विश्वामित्र ने हारकर कहा—'इस क्षत्रिय-बल को धिक्कार है। ब्राह्मण का बल ही यथार्थ बल है। सबसे बड़ा बल तप है।' विश्वामित्र अपने राज, ऐश्वर्य

को छोड़ तप करने लगे। घोर तप करके उन्होंने सिद्धि प्राप्त कर ली। वे ब्राह्मण हो गये। तीनों लोक उनके तेज से भर गये। इन्द्र के साथ सोमरस पीने का उन्हें अधिकार प्राप्त हो गया।

अध्याय १७९

कल्माषपाद को शाप, वशिष्ठ के सौ पुत्रों का नाश

गंधर्व बोला—इक्ष्वाकुवंश में कल्माषपाद नामक बड़े प्रतापी राजा थे। उनके प्रताप को देख विश्वामित्र उन्हें अपना यजमान बना लेना चाहते थे। एक बार राजा कल्माषपाद वन में शिकार खेलकर लौट रहे थे। उसी रास्ते से वशिष्ठ के बड़े लड़के शक्ति वन की ओर जा रहे थे। राजा ने शक्ति से कहा कि मैं इस रास्ते से आ रहा हूँ इस कारण तुम इस रास्ते से आगे मत बढ़ना। रास्ता एक ही था। दोनों में झगड़ा होने लगा। राजा ने क्रोध में आकर शक्ति को एक कोड़ा मार दिया। अपमानित हो शक्ति ने शाप दिया कि तू राक्षसों की तरह मनुष्यों को खाता हुआ घूमाकर।' विश्वामित्र छिपकर यह सब देख रहे थे। उन्होंने किङ्कर नामक राक्षस को राजा के शरीर में प्रवेश करा दिया। रास्ते में एक तपस्वी ब्राह्मण

ने राजा से भोजन माँगा। भोजन का वचन दे, उसे वहीं बैठाकर, राजा चले गये। आधी रात को उन्हें उस ब्राह्मण को भोजन देने की याद आई। उन्होंने रसोइये को नर-मांस और अन्न लेकर उस ब्राह्मण के पास भेजा। ब्राह्मण को जब यह पता चला कि राजा ने नर-मांस भेजा है, तो उसने शक्ति के शाप को दोहरा दिया। फिर क्या था। राजा राक्षसों की तरह घूमने लगे। उन्हें वन में शक्ति मिले। यह कहा कि तुमने मुझे शाप दिया है, इस कारण तुम्हीं को खाकर मैं नर-मांस खाना आरंभ करूँगा', राजा उन्हें मारकर खा गये। विश्वामित्र ने बार-बार प्रेरणा करके राजा से वशिष्ठजी के सौ पुत्रों को नष्ट करा दिया। यह सब जान-समझकर भी वशिष्ठजी ने विश्वामित्र को या उनके वंश को नष्ट नहीं किया। पुत्रों के नाश से दुःखी हो वशिष्ठ सुमेरु पर्वत से कूद पड़े, अग्नि में फाँद पड़े तथा गले में शिला बाँधकर समुद्र में कूद पड़े; किन्तु किसी प्रकार भी उनकी मृत्यु न हो सकी। तब खिन्न हो कर वे आश्रम को लौट गये।

अध्याय १८०

कल्मापपाद की शाप से मुक्ति, वशिष्ठ से पुत्र

गंधर्व बोला—पुत्रों के नाश से दुःखी वशिष्ठ फिर अपने हाथ-पैर बांधकर नदी में गिरे, पर उनके प्राण न गये। उन्होंने उस नदी का नाम विशापा रख दिया। तब वे पागलों की तरह इधर-उधर घूमने लगे। एक बार फिर वे भयंकर जल-जन्तु भरी एक नदी में डूबने को गिरे। किन्तु उनके तेज से वह नदी सैकड़ों धाराओं में बँटकर उनसे भागने लगी। इससे उसका नामशतद्रू पड़ गया। अन्त में वे हारकर अपने आश्रम की ओर लौटने लगे। पीछे उन्हें छः अंगों से अलंकृत वेद-पाठ सुन पड़ा। वशिष्ठ ने पूछा—मेरे पीछे कौन आ रहा है? उत्तर मिला कि मैं आपके पुत्र शक्ति की बहू अदृष्यन्ती हूँ। वशिष्ठजी ने पूछा—शक्ति के स्वर में यह वेद-पाठ कौन कर रहा है?' अदृष्यन्ती ने उत्तर दिया—शक्ति के अंश से उत्पन्न बालक है जिसे मैंने बारह वर्ष से गर्भ में रोक रक्खा है।' तब वंश के चलाने वाले पौत्र की आशा से उन्होंने आत्म-हत्या का विचार छोड़ दिया। अदृष्यन्ती के साथ आश्रम को लौटते समय राह में उन्हें कल्माषपाद ने खाने के लिए आ घेरा। तब अदृष्यन्ती ने डरकर वशिष्ठजी को पुकारा।

राजा कल्माषपाद को देखकर वशिष्ठजी ने दुःखी हो अपने तप के प्रभाव से उन्हें शाप से छुड़ा दिया। राजा ने उनसे योग्य पुत्र देने की प्रार्थना की। वशिष्ठजी राजा के साथ अयोध्या नगरी को गये। राजा ने अपनी रानी को वशिष्ठजी के पास पुत्र की कामना से भेजा। वशिष्ठजी के अंश से रानी को गर्भ रह गया। बारह वर्ष तक जब पुत्र उत्पन्न न हुआ, तब रानी ने गर्भ पर पत्थर दे मारा। इससे अश्मक नामक बड़ा प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने पौदन्य नामक नगर बसाया।

अध्याय १८१

वशिष्ठ के पोते पराशर, भृगुवंशी ब्राह्मणों का नाश

गंधर्व बोला—अदृष्यन्ती के पराशर नामक एक परम तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। जब उसे पता चला कि उसके पिता शक्ति को राक्षस ने खा डाला है, तो क्रोध कर उसने सब लोकों का नाश करना चाहा। यह देख वशिष्ठजी ने उन्हें समझाकर उस भीषण कर्म से रोका और कहा—पूर्व समय में कृतवीर्य नामक एक पराक्रमी राजा थे। उन्होंने अपने पुरोहित भृगुवंशी ब्राह्मणों को बहुत अधिक धन देकर धनी बना दिया। कृतवीर्य के मर जाने

पर उनके बंधुबांधवों को धन की आवश्यकता हुई। सब क्षत्रिय मिलकर भृगुवंशी ब्राह्मणों के पास धन माँगने गये। कुछ ब्राह्मणों ने तो क्षत्रियों को धन दे दिया और कुछ ने उसे पृथ्वी में गाड़ दिया। जब क्षत्रियों को मालूम हुआ तो उन्होंने क्रोध करके भृगुवंशियों को मारकर उनके वंश को नष्ट कर डालना चाहा। पुरुषों के मारे जाने पर भृगु-वंश की स्त्रियों ने भागकर हिमाचल की कंदराओं में शरण ली। उनमें से एक ब्राह्मणी के गर्भ था। इसकी खबर पाकर क्षत्रिय लोग उसके पास पहुँचे। उन्होंने उस बालक को मार डालना चाहा। किन्तु उस बालक के तेज से वे सब अंधे हो गये। तब दुखी होकर वे उसी ब्राह्मणी से क्षमा माँगने और प्रतिज्ञा करने लगे कि अब हम कभी किसी ब्राह्मण को न सतायेंगे।

अध्याय १८२, १८३

और्व ऋषि की उत्पत्ति और उनका कोप

गंधर्व बोला—क्षत्रियों की दशा पर दया करके ब्राह्मणी ने उस बालक को समझा-बुझाकर उन्हें क्षमा कर दिया। तब क्षत्रियों को फिर देख पड़ने लगा। उरु में छिपाकर रक्खे जाने के कारण बालक का नाम

और्व पड़ा। भृगुवंश के नाश का बदला लेने के लिए और्व घोर तप करने लगे। उससे तीनों लोक तपने लगे। तब उनके पूर्व-पुरुषों ने स्वर्ग से आकर उन्हें समझाया—हम लोग स्वर्ग जाना चाहते थे। पर हमारी आयु बहुत अधिक थी। आत्म-हत्या करने से उत्तम लोक प्राप्त नहीं हो सकते। इसी कारण हमने क्षत्रियों को उत्तेजित कर उनके हाथों से मृत्यु प्राप्त की थी। इसमें क्षत्रियों का वैसा दोष नहीं है। अब तुम क्षत्रियों और लोकों को नष्ट करने का विचार छोड़ दो। क्रोध से तप-तेज नष्ट हो जाते हैं। इससे क्रोध को दूर कर दो।

और्व ने अपने पितरों से कहा—मेरी प्रतिज्ञा व्यर्थ न होनी चाहिए। क्रोध और प्रतिज्ञा को व्यर्थ कर मैं जीवित नहीं रहना चाहता। जो मनुष्य उचित कारण से उत्पन्न हुए क्रोध को क्षमा के कारण छोड़ देता है वह धर्म-अर्थ-काम की रक्षा नहीं कर सकता। उचित अवसर पर किया गया क्रोध अशिष्ट पुरुषों का दमन और शिष्ट पुरुषों की रक्षा करता है। जो विजय चाहता है उसे क्रोध की उपेक्षा न करनी चाहिए। जब पाप करनेवालों को दण्ड मिलता है तभी पाप कम होता है। जब पापी को दण्ड नहीं दिया जाता, तब पाप-कर्म बढ़ जाते हैं। जो पापी को दण्ड देने की सामर्थ्य रखकर भी उसे

छोड़ देता है, उस छोड़नेवाले को भी उस पाप का अंश मिलता है। जब भृगुवंशी ब्राह्मणों की हत्या हो रही थी, जब भृगुवंश को निर्मूल करने के लिए उसके गर्भ तक के बालक मारे जाते थे और कोई उनकी रक्षा नहीं कर रहा था, उस समय मुझे क्रोध आ गया था। संसार में गर्भ के बालकों तक को मारनेवाले इन क्षत्रियों को दण्ड देने में समर्थ कुछ महानुभाव थे। पर उन्होंने भृगुवंशी स्त्रियों की दीन-दशा देखकर भी उनको शरण नहीं दी। इसी से मैं लोकों को नष्टकर सबको दण्ड देना चाहता हूँ। यदि मैं अपने क्रोध को रोकूँगा, तो मैं स्वयं जल जाऊँगा।

पितरों ने कहा—'हम तुम्हारी प्रतिज्ञा को भंग कराना नहीं चाहते। सब का जीवन जल है। तुम उसी में अपनी क्रोधाग्नि को रक्खो। ऐसा करने में तुम्हारी बात भी पूरी हो जायगी और लोक नष्ट होने से भी बचेंगे।' और्व ने पितरों की आज्ञा मानकर अपने क्रोध को जल में छोड़ दिया। वही वड़वानल होकर जल को सुखाया करता है।

वशिष्ठजी ने पराशर को समझाकर कहा कि तुम भी लोकों को नष्ट करनेवाला अपना विचार छोड़ दो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

अध्याय १८४

पराशर का राक्षस-नाश के लिए यज्ञ करना

गंधर्व बोला—पराशर ने वशिष्ठ के समझाने से सब लोकों को नष्ट करनेवाले अपने विचार को तो छोड़ दिया, किन्तु अपने पिता को खानेवाले राक्षसों को नष्ट करने के लिए उन्होंने यज्ञ आरम्भ किया। अनेक राक्षस उस यज्ञ में आ-आकर भस्म होने लगे। तब अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु नामक तेजस्वी ऋषि वहाँ आये। पुलस्त्य ने पराशर से कहा—तुम स्वयं समझदार और शक्तिशाली हो। जिन राक्षसों का नाश तुम कर रहे हो उन्हें तुम्हारे पिता के मारे जाने की खबर भी नहीं है। बिना अपराध किसी को मारना और मेरे वंश को नष्ट करना उचित नहीं है। तुम्हारे पिता इतने शक्तिवाले थे कि उन्हें कोई भी राक्षस छू तक नहीं सकता था। शाप देकर उन्होंने स्वयं अपनी मृत्यु बुलाई थी। विश्वामित्र भी इसके कारण थे। तुम्हारे पिता को मारनेवाले राजा कल्माषपाद और तुम्हारे पिता तथा चाचा सभी इस समय स्वर्ग-सुख भोग रहे हैं। अब तुम यज्ञ बन्द करके यश के भागी बनो।

सबके समझाने से पराशर ने यज्ञ बन्दकर उसकी अग्नि को हिमालय के उत्तर में स्थापित कर दिया।

अध्याय १८५

वशिष्ठ ने क्यों रानी में पुत्र उत्पन्न किया

अर्जुन के प्रश्न यह करने पर कि धर्मात्मा वशिष्ठ ने अगम्या स्त्री, रानी में क्यों पुत्र उत्पन्न किया, गंधर्व बोला—'शाप से मोहित हो जिस समय राजा कल्माषपाद वन में घूम रहे थे उस समय एक दिन उन्हें एक ब्राह्मण अपनी स्त्री से सहवास करता देख पड़ा। ब्राह्मणी के बहुत रोकने, रोने तथा गिड़गिड़ाने पर भी कल्माषपाद उस ब्राह्मण को खा गये। तब ब्राह्मणी ने शाप दिया कि जब तू अपनी स्त्री से सहवास करेगा तभी तेरी मृत्यु होगी। जिन वशिष्ठ के पुत्रों को तूने खाया है उन्हीं के अंश से तेरी रानी पुत्र उत्पन्न कर सकेंगी। वशिष्ठ और कल्माषपाद की रानी दमयन्ती को यह बात मालूम थी, इसी से राजा ने हठ करके वशिष्ठजी से पुत्र उत्पन्न कराया।

अध्याय १८६, १८७

धौम्य का पुरोहित होना

अर्जुन ने पूछा—कौन ब्राह्मण हमारे पुरोहित होने योग्य हैं। गंधर्व बोला—'इस वन में उत्कोचक तीर्थ पर देवल ऋषि के छोटे भाई धौम्य ऋषि तप करते हैं। वे तुम्हारे

पुरोहित होने के योग्य हैं।' अर्जुन ने उस गंधर्व को आग्नेयास्त्र सिखला दिया और उससे चाक्षुषी नामक गंधर्व-विद्या सीख ली। फिर अर्जुन ने गंधर्व से कहा कि तुम जो घोड़े हमें देना चाहते हो उन्हें अभी अपने ही पास रहने दो। बाद में वे उससे विदा हो, गंगा पारकर उत्कोचक तीर्थ पर जा पहुँचे। वहाँ धौम्य ने उनका आदर-सत्कार किया। पांडवों ने प्रार्थना करके उन्हें अपना पुरोहित बना लिया। फिर वे धौम्य को लेकर आगे चले।

वैशम्पायनजी बोले—रास्ते में पाण्डवों को कुछ ब्राह्मण मिले। पूछने पर उन्होंने कहा—हम द्रुपद-कन्या कृष्णा का स्वयंवर देखने के लिए जा रहे हैं। वहाँ अनेक देश के राजा आयेंगे। वे एक दूसरे से अपने को श्रेष्ठ प्रमाणित करने के लिए धन-रत्न दान करेंगे। इससे हमें खूब धन लाभ होगा। फिर स्वयंवर का खूब उत्सव देखेंगे, नाना देशों से आये हुए नटों,नर्तकों के करतब नाच देखेंगे,गवैयों के गाने और कवियों तथा चारणों की कविताएँ सुनेंगे। राजकुमारी भी अत्यन्त सुन्दरी है। तुम लोग बड़े सुन्दर और गुणी हो। हो सकता है कि तुममें से किसी को वह पति बना ले। तुम तो इतने पराक्रमी देख पड़ते हो कि यदि चाहो तो दिग्विजय कर सकते हो। तुम लोग ज़रूर हमारे साथ चलो। पांडवों ने उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

अध्याय १८८, १८९

पांडवों का स्वयंवर में जाना, वहाँ धृष्टद्युम्न की घोषणा

वैशम्पायनजी बोले—रास्ते में व्यासदेव मिले। उन्होंने पाण्डवों को स्वयंवर में सम्मिलित होने की आज्ञा दी। पाण्डव कुछ समय बाद द्रुपद की राजधानी में जा पहुँचे। वे नगर के एक किनारे एक कुम्हार के घर में रह-कर भिक्षा से अपनी गुज़र चलाने लगे। वेश बदले रहने के कारण उन्हें कोई पहचान न सका। इधर द्रुपद के मन में यह अभिलाषा थी कि अर्जुन ही द्रौपदी के पति हों। किन्तु यह बात वे खुलकर कह न सकते थे। अर्जुन के कौशल और पराक्रम को वे ख़ूब जानते थे, इससे उन्होंने एक ऐसा धनुष बनवाया जो हरएक से झुकाया न जा सके। एक घूमनेवाले यन्त्र में ऊपर एक मछली लगाकर घोषणा कर दी गयी कि जो उस धनुष पर डोरी चढ़ाकर यंत्र के बीच से बाण मार मछली को बेध देगा उसी के साथ द्रौपदी का विवाह होगा। स्वयंवर की घोषणा सुनकर दूर-दूर से राजा लोग आये। सुन्दर, मणिमण्डित, ध्वजा-पताकाओं, सुनहले परदों और उत्तम वस्त्रों तथा वस्तुओं से सुशोभित रंगमंच में यथास्थान लोग आ-आकर बैठने लगे। पाण्डव ब्राह्मणों के साथ बैठे। पन्द्रह दिन तक

खूब समारोह होता रहा। सोलहवें दिन दिव्य वस्त्र पहने, अनुपम सुन्दरी द्रौपदी जयमाल लिये रंगमंच में आईं। हवन और स्वस्त्ययन-पाठ के अनन्तर द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न ने स्वयंवर की प्रतिज्ञा की घोषणा की। फिर वे द्रौपदी को हरएक राजा का परिचय देने लगे।

धृष्टद्युम्न बोले—बहन! यह देखो, अपने भाइयों और कर्ण के साथ कुरुवंशी दुर्योधन; गांधार राज के पुत्र शकुनि, वृषक आदि; अस्त्रधारियों में श्रेष्ठ अश्वत्थामा, भोज; राजा विराट और उनके पुत्र शंख तथा उत्तर; सुकेतु और उनके पुत्र सुवार्च, सुचित्र आदि; विदण्ड और उनके पुत्र दण्ड, पौंड्र, वासुदेव आदि; मद्रराज शल्य और उनके पुत्र रुक्मांगद, रुक्मरथ; कुरुवंशी सोमदत्त और उनके पुत्र भूरि, भूरिश्रवा आदि; शिवि, बलदेव, वासुदेव, कृष्ण तथा उनके पुत्र प्रद्युम्न, सम्ब आदि; प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध, गद आदि; यदुवंशी अक्रुर, सात्यकि तथा उद्धव आदि; सिन्धुराज जयद्रथ; शिशुपाल; जरासंध और अन्यान्य प्रतापी, गुणी राजा तुम्हारे लिए आये हैं। जो व्यक्ति प्रतिज्ञा के अनुसार इस धनुष को चढ़ाकर इन पाँच बाणों से घूमते हुए चक्र के बीच से मछली को वेध दे, उसी को तुम पति बनाना।

अध्याय १९०

राजाओं का लक्ष्य न बेध सकना

वैशम्पायनजी बोले—द्रौपदी के रूप को देखकर सब राजा मोहित हो उसे प्राप्त करने के लिए उतावले हो उठे। भाई, पिता, पुत्र, मित्र आदि के रिश्तों को भुलाकर वे आपस में होड़कर लक्ष्य बेधने का उद्योग करने लगे। किन्तु श्रीकृष्णजी के कहने से केवल यादवों ने लक्ष्य बेधने की चेष्टा न की। वे चुपचाप बैठे तमाशा देखते रहे। श्रीकृष्णचन्द्र ने ब्राह्मण वेशधारी पाण्डवों को पहचानकर बलरामजी को दिखलाया। दोनों ने पाण्डवों को कुशलपूर्वक देख प्रसन्नता प्रकट की।

देवता, देवर्षि, सिद्ध, गंधर्व, चरण, यक्ष, किन्नर आदि भी उस स्वयंवर में आये थे। राजा लोग एक-एक करके धनुष पर डोरी चढ़ाने का उद्योग करने लगे। पर कोई भी उस पर डोरी न चढ़ा सका। डोरी चढ़ाने के उद्योग में अनेक राजा उसके झटके से ही दूर जा गिरे। किसी का मुकुट गिरा, किसी का हार टूट गया। अन्त में सब हार कर अपने-अपने स्थान पर उदास होकर बैठ गये। तब प्रतापी कर्ण ने सहज ही में धनुष पर डोरी चढ़ा दी। अब पाण्डवों को विश्वास हो गया कि लक्ष्य बिधने में देर

नहीं है। किन्तु कर्ण ने बाण धनुष पर चढ़ाया ही था कि बिजली की तरह चमककर मेघ-गम्भीर स्वर में द्रौपदी ने कहा—"मैं सूत-पुत्र कर्ण को अपना पति न बना सकूँगी।" तब क्रोध और लज्जा में भरकर कर्ण अपने स्थान पर जा बैठे। फिर चेदिराज शिशुपाल, मगधराज जरासंध, मद्रराज शल्य और कौरवपति दुर्योधन ने भी बारी-बारी से उस धनुष पर डोरी चढ़ाने की कोशिश की, पर एक-एक करके वे भी धनुष के झटके से भूमि में लोट-लोटकर अपमानित हुए। तब सब के निष्फल हो जाने पर अर्जुन उठे।

अध्याय १६१

अर्जुन का लक्ष्य-वेध कर द्रौपदी को प्राप्त करना

वैशम्पायनजी बोले—अर्जुन को धनुष की ओर जाते देख कुछ ब्राह्मण उन्हें उत्साहित और कुछ उन्हें रोकने का विचार करने लगे। अन्त में यह सोचकर कि तपस्वी, ब्रह्मचारी ब्राह्मण सभी कुछ कर सकने की शक्ति रखता है, वे अर्जुन को उत्साहित करने लगे। अर्जुन ने क्षण भर में उस धनुष पर डोरी चढ़ादी और फुर्ती से लक्ष्य को काट गिराया। जय-जय ध्वनि और फूलों की वर्षा से सभामंडप भर गया। द्रुपद बहुत प्रसन्न हुए। अन्य

राजाओं को गड़बड़ करने के लिए उतारू देख वे अपनी सेना के द्वारा अर्जुन की सहायता करने पर तुल गये। इधर द्रौपदी अर्जुन को जयमाल पहनाकर उनके पीछे-पीछे चलने लगी।

अध्याय १९२

राजाओं का द्रुपद को मारने के लिए दौड़ना

वैशम्पायनजी बोले—द्रुपद को अपनी कन्या एक ब्राह्मण को देने के लिए तैयार देख वहाँ आये हुए राजा लोग क्रोध से पागल होकर कहने लगे—'द्रुपद सब राजाओं को बुलाकर उनका अपमान कर रहा है। इतने प्रतापी राजाओं के रहते एक तुच्छ ब्राह्मण को कन्या देना राजाओं का भारी अपमान करना है। यदि यह कन्या हममें से किसी भी राजा को अपना पति न बनाना चाहेगी तो हम इसे अग्नि में डालकर जला देंगे और द्रुपद तथा उसके पुत्र को मारकर दण्ड देंगे, जिसमें आगे से कोई इस प्रकार का अपमान करने का साहस न करे, यह कह वे लोग अस्त्र-शस्त्र लेकर द्रुपद को मारने के लिए दौड़े। यह देख अर्जुन धनुष लेकर और भीमसेन एक वृक्ष उखाड़कर उन राजाओं का सामना करने के लिए द्रुपद के आगे डटकर

खड़े हो गये। इस प्रकार का साहस देख श्रीकृष्णचन्द्र ने बलदेव जी से कहा—'ये निश्चय ही अर्जुन और भीम हैं। ऐसा साहस और बल-पराक्रम दूसरे में नहीं हो सकता। मैंने सुना है कि पाण्डव लाक्षागृह की आग से बच गये हैं। बलराम ने यह सुन हर्ष प्रकट किया।'

अध्याय १९३

अर्जुन-भीम का राजाओं को हराना

वैशम्पायनजी बोले—ब्राह्मणों ने कमण्डल-मृगचर्म हिलाते हुए अर्जुन को उत्साहित कर कहा—तुम डरो नहीं। हम सब तुम्हारे लिए शत्रुराजाओं से लड़ेंगे। अर्जुन ने हँसकर उनसे चुपचाप तमाशा देखने के लिए अनुरोध किया। इधर राजा लोगों ने यह कहा कि जो युद्ध के लिए तैयार हो वह ब्राह्मण भी मार डालने योग्य है, दोनों भाइयों पर प्रहार करने शुरू किये। खूब घमासान युद्ध हुआ। अन्त में भीम ने महाबली शल्य को उठाकर पटक दिया, पर उसे मारा नहीं। अर्जुन ने कर्ण के छक्के छुड़ा दिये। ब्रह्मतेज के सामने से हट जाना ही ठीक समझ कर्ण ने युद्ध करना छोड़ दिया। सब जानते थे कि बलदेव, भीम और दुर्योधन को छोड़कर दूसरा कोई शल्य को नहीं पछाड़ सकता

था। परशुराम, द्रोण या अर्जुन के सिवा दूसरा कोई कर्ण का सामना नहीं कर सकता था। न द्रोण और कृप को छोड़ कोई दुर्योधन को। इस प्रकार कर्ण और शल्य के हार जाने और श्रीकृष्णजी के यह समझाने पर कि इस ब्राह्मण ने विधिपूर्वक स्वयंवर में द्रौपदी को प्राप्त किया है, इससे युद्ध करना उचित नहीं है, राजा लोग वहाँ से चले गये। इधर बड़ी देर होने पर भी जब पाण्डव भिक्षा लेकर न लौटे तो कुन्ती उनके विषय में तरह-तरह की आशंका करने लगीं। इसी बीच अर्जुन द्रौपदी को लिये ब्राह्मण मण्डली से घिरे उस कुम्हार के घर आये।

अध्याय १६४

पाँचों भाइयों का द्रौपदी के साथ विवाह करने के लिए तैयार होना

वैशम्पायनजी बोले—कुन्ती घर के भीतर थीं। अर्जुन ने बाहर से कहा—'माता मैं भिक्षा लेकर आ गया।' कुन्ती ने बिना देखे ही कहा—'तुम पाँचों भाई आपस में बाँटकर उसका उपयोग करो।' किन्तु जब उन्होंने द्रौपदी को देखा, तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। यह सब सुनकर युधिष्ठिर ने विचार पूर्वक कहा—अर्जुन ने अपने पराक्रम से द्रौपदी को प्राप्त किया है। वे ही इसके साथ विधिपूर्वक विवाह करें।

उन्हींको यह शोभा देगी।' अर्जुन ने दृढ़तापूर्वक कहा—'आप ऐसी आज्ञा न दें। द्रौपदी के साथ पहले आप, फिर भीम, फिर मैं, फिर नकुल, फिर सहदेव, इस प्रकार क्रम-क्रम से हम पाँचों भाई विवाह करेंगे और सब मिलकर इसके साथ आनन्द भोग करेंगे। आप कोई ऐसा यत्न कीजिये, जिससे माता की आज्ञा न टले और हमारा भी अनिष्ट न हो।'

युधिष्ठिर ने देखा, सभी द्रौपदी के लिए व्याकुल हैं। तब आपस की फूट मिटाने के लिए उन्होंने अर्जुन की बात मानना ही उचित समझा। सब के मन खिल उठे। इधर उन्हें खोजते हुए कृष्ण-बलदेव जी वहाँ आये और बड़े भाई युधिष्ठिर और बुआ कुन्ती के चरण छूकर उन्होंने कुशल-क्षेम पूछी। फिर उन्हें धैर्य देकर और कुछ समय तक और छिपे रहने की सलाह दे दोनों भाई वहाँ से जल्दी चले गये।

अध्याय १९५

धृष्टद्युम्न का छिपकर पाण्डवों का हाल लेना

वैशम्पायनजी बोले—धृष्टद्युम्न ने छिपकर अर्जुन का पीछा किया और घर के बाहर छिपकर वे सब बातें सुनने लगे। इधर, बाद में नगर में जाकर पाण्डव जो भिक्षा लाये थे उसे कुन्ती ने द्रौपदी को देकर कहा—शुभे! तुम इस से पहले देवताओं की पूजा करो, फिर

ब्राह्मणों को भिक्षा दो और अतिथि-अभ्यागतों को संतुष्ट करो। जो बचे, उसके दो भाग करो। आधा महाबली भीम को दो। पुनः आधे के छः भाग करके सबको दो द्रौपदी ने उसी तरह सब काम किया। भोजन कर सब लेट रहे। कुन्ती पाण्डवों के सिरहाने लेटीं और द्रौपदी पैताने। कुशासन पर पैताने लेटने पर भी द्रौपदी को कुछ भी बुरा न लगा। रातभर पाण्डव अस्त्रों तथा सेना आदि के विषय में बातें करते रहे। द्रौपदी बड़े ध्यान से सब सुनती रही। सवेरा होते ही धृष्टद्युम्न सावधानी से सब जान-सुनकर चुपके से अपने पिता के पास लौट गये। द्रौपदी की दशा जानने के लिए द्रुपद बहुत व्यग्र थे। धृष्टद्युम्न को देख वे अकुलाकर बोले—द्रौपदी को ले जानेवाला पुरुष शूद्र या 'कर' देनेवाला वैश्य तो नहीं है! दिव्य पुष्पों की माला स्मशान में तो नहीं फेंक दी गई! मेरे सर पर किसी नीच ने तो कीचड़ भरा पैर नहीं रख दिया! द्रौपदी को जीतने वाला वह पुरुष वीर अर्जुन ही तो है?

अध्याय १९६

पाण्डवों के पास द्रुपद के पुरोहित

वैशम्पायनजी बोले—धृष्टद्युम्न ने युद्ध में राजाओं को जीतकर द्रौपदी को ले जाने और भिक्षा आदि के

बाँटे जाने का हाल विस्तार से बतलाकर कहा—जैसी बातें रात भर ये पाँचों भाई करते रहे वैसी बातें न तो ब्राह्मण करते हैं न वैश्य या शूद्र। वे तो रात भर सेना, शस्त्र, दिव्य अस्त्र और युद्ध की ही बातें करते रहे। निस्संदेह वे क्षत्रिय ही हैं। और वेश बदले हुए पाण्डव ही जान पड़ते हैं।' यह सुनकर द्रुपद ने अपने पुरोहित को कुँभार के घर भेजा। पुरोहित ने पाण्डवों की प्रशंसा करके कहा—राजा द्रुपद आपके वंश आदि का परिचय प्राप्त करना चाहते हैं। वे वीर अर्जुन को अपनी कन्या देना चाहते थे। क्या आप पाण्डव ही हैं?'

उनकी विधिपूर्वक पूजा कराकर युधिष्ठिर ने कहा—पाञ्चालराजा ने अपनी इच्छा से हमें अपनी कन्या नहीं दी है। उनकी प्रतिज्ञा के अनुसार लक्ष्य-वेधकर यह कन्या प्राप्त की गई है। जिस वीर ने लक्ष्य-वेधकर और महाबली राजाओं को हराकर कृष्णा को प्राप्त किया है वे किसी कारण अभी अपना नाम, कुल आदि प्रकट नहीं करना चाहते। उस लक्ष्य को कोई निर्बल या अस्त्र-विद्या न जाननेवाला पुरुष वेध नहीं सकता। इस कारण महाराज द्रुपद को अब सोच न करना चाहिए।' इसी समय एक दूत ने आकर कहा—राजभवन में भोजन तैयार है।

अध्याय १६७, १६८

पाण्डवों का द्रुपद के भवन में जाना

वैशम्पायनजी बोले—राजा के भेजे हुए रथ पर चढ़ाकर कृष्णा और कुन्ती सहित पाण्डव द्रुपद के यहाँ गये। सब ने बड़े आदर से उन्हें और कुन्ती को लिया। पाण्डव अशंकित और अविस्मित भाव से सुन्दर आसनों पर बैठ गये। राजाओं के योग्य भोजन सामग्री खाकर वे संतुष्ट हुए। द्रुपद ने अनेक प्रकार के उपहार की वस्तुएँ अलग-अलग रखवा दी थीं। राजा के यह कहने पर कि आप अपनी इच्छा के अनुसार इन वस्तुओं में से जिन्हें पसन्द करें ग्रहण करें, पाण्डवों ने ब्राह्मणों, वैश्यों और शूद्रों के योग्य वस्तुओं को छोड़कर क्षत्रियों के उपयुक्त युद्ध के योग्य वस्तुएँ ही पसन्द की। यह देख सबको निश्चय हो गया कि ये पाण्डव ही हैं।

तब राजा द्रुपद ने बड़े आदर से युधिष्ठिर को अपने पास बुलाया और अनेक प्रकार की बातें कर उनसे यथार्थ परिचय देने की प्रार्थना की। युधिष्ठिर ने अपना तथा अपने भाइयों का परिचय देकर कहा 'आप चिन्ता न करें। आपकी पद्मिनी कन्या एक सरोवर से दूसरे सरोवर में पहुँच गई।'

द्रुपद ने लाक्षागृह आदि का सब हाल पूछने के बाद उन्हें राज्य दिलाने का वचन दिया। पाण्डव कुन्ती सहित एक भवन में रहने लगे। कुछ समय बाद द्रुपद ने द्रौपदी के विवाह की तैयारी की। किन्तु यह जानकर कि पाँचों पाण्डव द्रौपदी से विवाह करेंगे, उन्होंने बड़े आश्चर्य और क्षोभ से युधिष्ठिर से कहा—एक पुरुष की अनेक स्त्रियाँ तो होती हैं, किन्तु एक स्त्री के अनेक पति हो सकते हैं यह बात नहीं सुनी गई है। आप धार्मिक और पवित्र हृदय होकर ऐसा लोक-विरुद्ध और वेद-शास्त्रों के विपरीत कार्य कैसे करना चाहते हैं?'

युधिष्ठिर ने कहा—'धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है धर्म की जटिल समस्याओं को समझना सरल नहीं है। पूर्व-पुरुष जिस मार्ग से चले हैं हम उसी मार्ग से चल भर सकते हैं। मैंने कभी झूठ नहीं बोला। मेरी प्रवृत्ति कभी अधर्म की ओर नहीं होती। मेरी माता की आज्ञा है, और मेरा भी यही निर्णय है कि द्रौपदी हम सब की धर्मपत्नी हो। यही हमारा सनातन धर्म है। आप शंका और सोच न करें।

द्रुपद ने कहा—धृष्टद्युम्न और कुन्ती से सलाह करके जैसा होगा कल निर्णय किया जायगा। इसी समय वहाँ व्यासदेव जी आ पहुँचे।

व्यासदेव का सबने आदर-सत्कार किया। कुशल-क्षेम के अनन्तर द्रौपदी के विवाह की बात उठी। व्यास-देव के पूछने पर राजा द्रुपद और धृष्टद्युम्न ने कहा कि काम-शास्त्र और लोकाचार के प्रतिकूल होने के कारण एक स्त्री के अनेक पति होना उचित नहीं है। बड़ा भाई छोटे भाई की स्त्री के साथ सहवास कैसे कर सकता है?

यह सुन युधिष्ठिर ने कहा—झूठ और अधर्म में मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। इस कार्य में मेरी प्रवृत्ति हो रही है, इस कारण यह अधर्म नहीं हो सकता। पुराणों से पता चलता है कि प्राचीन समय में गौतम की कन्या जाल्पि ने एक साथ सात ऋषियों के साथ विवाह किया था; मुनि-कन्या वार्क्षी का विवाह दस प्रचेताओं से हुआ था। धर्मज्ञ गुरुजन की आज्ञा का पालन करना धर्म माना जाता है। माता के समान गुरुजन दूसरा नहीं माना जाता। माता कुन्ती की आज्ञा है कि हम पाँचों भाई द्रौपदी को ग्रहण करें। इस कारण यह कार्य हमारे लिए परम धर्म है।

व्यासदेव ने कहा—कुन्ती ने जो आज्ञा दी है वह झूठ न होगी, क्योंकि वह आज्ञा सनातन धर्म के अनुकूल है। धर्म की व्यवस्था के अनुसार भी यह सनातन धर्म है। युधिष्ठिर का कहना सच है। यह कार्य निश्चय ही धर्म है।

फिर व्यासदेव ने द्रुपद, धृष्टद्युम्न, कुन्ती और पाण्डवों को एकान्त में ले जाकर बतलाया कि एक स्त्री के अनेक पतियों का होना क्यों धर्म है।

अध्याय २००

द्रौपदी और पाण्डवों के पूर्वजन्म की कथा

व्यासदेवजी बोले—पूर्वकाल में देवगण ने नैमिषारण्य में एक यज्ञ आरम्भ किया। सूर्य के पुत्र यमराज यज्ञ की दीक्षा लेकर पशुओं की बलि देने में लग गये। इस कारण मनुष्यों का मरना बन्द हो गया। उनकी संख्या बढ़ गई। तब इन्द्र आदि अनेक देवों ने ब्रह्मा के पास जाकर कहा—हम आपकी शरण में आये हैं। मनुष्यों की संख्या के बढ़ने से हमें बहुत चिन्ता हो गई है। अब आप हमारी रक्षा कीजिये।

ब्रह्मा ने कहा—तुम अमर हो। मनुष्य मरणशील हैं। फिर तुम्हें मनुष्यों से क्या डर है?

देवगण ने कहा—इस समय मनुष्यों का मरना बंद हो गया है, इससे अमर होने की हमारी वह विशेषता जाती रही है। आप हमारी उसी विशेषता को बनाये रखने का उपाय कीजिये।'

ब्रह्मा ने देवों से यह समझाकर लौटा दिया कि यज्ञ समाप्त होने पर यमराज मनुष्यों का वध करने में लग जायँगे। कुछ समय बाद देवगण को एक दिन गंगा के जल में सुवर्ण का कमल बहता देख पड़ा। इन्द्र ने आश्चर्य से खोज की, तो पता चला कि जहाँ से गंगा निकली है उस स्थान पर एक स्त्री बीच धारा में खड़ी रो रही है। उसके जो आँसू पानी में गिरते हैं वे सोने के कमल हो जाते हैं। इन्द्र ने आश्चर्य से उस स्त्री से सब हाल जानना चाहा। स्त्री उन्हें पास वाले पर्वत पर ले गई। वहाँ इंद्र को एक युवा पुरुष एक युवती के साथ चौरस खेलता देख पड़ा। इंद्र को उस पुरुष ने देखा तक नहीं। तब इंद्र ने क्रोध करके उसे झिड़ककर कहा—'क्या तू नहीं जानता कि मैं त्रिलोकी का प्रभु इंद्र हूँ।' इस पर उस पुरुष ने इंद्र की ओर एक बार देख दिया। उसकी नज़र पड़ते ही इंद्र के अंग काठ की तरह निश्चेष्ट हो गये। चौरस का खेल समाप्त कर शंकर-रूप उस पुरुष ने इन्द्र को पास बुलाया। इन्द्र गिर पड़े। तब शंकर ने इंद्र से एक गुफा के द्वार पर से एक भारी शिला को हटवाया। गुफा के अन्दर इन्द्र को अपने ऐसे और दूसरे चार इंद्र देख पड़े। शंकर ने कहा—इन चारों ने भी तुम्हारी ही तरह मेरा अपमान किया था। अब तुम पाँचों इस कन्दरा में बंदी बनकर पड़े

रहो। फिर पृथ्वी पर जन्म लेना। वहाँ यह स्त्री तुम पाँचों की पत्नी होगी।' बाद में आये हुए पाँचवे इंद्र ने स्तुति-विनय के द्वारा शंकर को प्रसन्न करके यह वर प्राप्त कर लिया कि स्वयं जन्म न लेकर वह अपने अंश से एक पुरुष उत्पन्न करदे। इसके बाद शंकर उन पाँचो इंद्रों और उस स्त्री को नारायण के पास ले गये और उन्होंने सब हाल बतलाया। नारायण ने शंकर की बात पर प्रसन्नता प्रकट की और फिर अपने दो बाल उखाड़कर एक से श्रीकृष्ण और दूसरे से बलदेव को उत्पन्न किया।

व्यासदेव ने फिर कहा—वे पांचों इंद्र भी पृथ्वी पर पाण्डवों के रूप में प्रकट हुए। लक्ष्मी रूपी वह स्त्री द्रौपदी के रूप में यज्ञ से प्रकट हुई। द्रौपदी के अंगों से इसी कारण दिव्य कमल की सुगंध निकलती है। पाण्डव और द्रौपदी जगत का कल्याण करने और देव-कार्य साधन करने के लिए ही पृथ्वी पर आये हैं।'

व्यास देव से दिव्य दृष्टि पाकर द्रुपद ने द्रौपदी और पाण्डवों के पूर्व रूप को देखा। उनके तेज, प्रताप और वैभव को देख, द्रुपद को व्यासदेव के द्वारा बतलाये हुए उपाख्यान पर विश्वास हो गया।

इसके अनन्तर व्यासदेव ने द्रौपदी के उस जन्म की कथा बतलाई जिसमें उसने शंकर की आराधना कर, पाँच

बार 'पति' शब्द का उच्चारण कर वर माँगा था और शिव जी ने उसे पाँच पति की स्त्री होने का वर दिया था। इस प्रकार समझाकर व्यासदेव ने द्रुपद को आज्ञा दी कि तुम पूर्व निश्चित देव-कार्य होने दो।

अध्याय २०१, २०२

पाण्डवों से द्रौपदी का विवाह

द्रुपद ने कहा—'अब मुझे कोई आपत्ति नहीं है। भाग्य को कोई भी टाल नहीं सकता। शिवजी के वरदान के अनुसार द्रौपदी इन पाँचों भाइयों की पत्नी बने।' इसके बाद व्यासदेवजी के कहने से उस दिन वेदज्ञ धौम्य ऋषि ने युधिष्ठिर से द्रौपदी का विधिपूर्वक विवाह कराया। फिर क्रम-क्रम से एक-एक दिन बाद अन्य भाइयों का उसी प्रकार विधि-पूर्वक द्रौपदी के साथ विवाह कराया गया। व्यासदेव के आशीर्वाद से द्रौपदी विवाह होने के बाद भी प्रतिदिन कन्या-भाव को प्राप्त हो जाती थी। द्रुपद ने धन, रत्न, वस्त्र, हाथी, घोड़े, रथ, युवती दासियाँ पांडवों को दहेज में दीं। पाण्डव राजाओं की तरह वहीं विहार करने लगे।

विवाह के बाद द्रौपदी ने कुन्ती को प्रणाम किया।

कुन्ती ने प्रसन्न होकर कहा—मैं आशीर्वाद देती हूँ कि जैसे लक्ष्मी नारायण के लिए, भद्रा कुबेर के लिए, दमयन्ती नल के लिए, स्वाहा अग्नि के लिए, रोहिणी चन्द्रमा के लिए और अरुन्धती वशिष्ठ के लिए प्रिय हुईं, उसी तरह तुम भी अपने पाँचों पतियों के लिए प्रिय होओ। तुम पुत्र-धन-बन्धु-सौभाग्य से परिपूर्ण होओ। तुम्हारा पातिव्रत-धर्म अचल रहे। सबका तुम माता की तरह लालन-पालन करती रहो। तुम्हारे पति पृथ्वी भर के राजा हों, तुम पटरानी बनो और अश्वमेघ महायज्ञ में सब राज्य ब्राह्मणों को दान दो। तुम सौ वर्ष तक पृथ्वी के सब उत्तम पदार्थों का भोग करो। तुम शीघ्र ही प्रतापी पुत्रों का मुख देखो।'

इधर विवाह के बाद श्रीकृष्णजी ने अनेक प्रकार की बहुमूल्य सामग्री, हाथी, रथ, घोड़े, करोड़ों मोहरें, छकड़ों भर सोना, युवती दासियाँ आदि पाण्डवों को उपहार में भेजीं। पाण्डवों ने प्रसन्न हो उन्हें स्वीकार किया।

अध्याय २०३—२०८

दुर्योधन की चिन्ता और कुमंत्रणा

वैशम्पायनजी बोले—पाण्डवों के साथ द्रौपदी के विवाह की बात चारों तरफ़ फैल गई। दुर्योधन को बड़ी

न्नता, बड़ा दुःख हुआ। दुःशासन ने कहा—यदि अर्जुन ब्राह्मण का वेश न बनाये होते तो उन्हें द्रौपदी न मिलती। उस समय किसी को मालूम न हुआ कि ये अर्जुन हैं। भाग्य बड़ा प्रबल होता है। पौरुष को धिक्कार है। पौरुष के बल पर हम लोग पाण्डवों का कुछ भी न बिगाड़ सके।'

राजा द्रुपद से पाण्डवों का संबंध होना दुर्योधन कोखलने लगा। किन्तु विदुर को इस समाचार से बड़ा संतोष, बड़ा सुख मिला। धृतराष्ट्र ने विदुर के सामने प्रसन्नता प्रकटकर कहा—'मैं पाण्डु के पुत्रों को अपने पुत्रों से बढ़कर चाहता हूँ। वे द्रुपद के सम्बन्ध से उन्नति करें, यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है।' विदुर ने कहा 'ईश्वर करे आपकी ऐसी ही मति जन्म भर बनी रहे।' विदुर के चले जाने पर दुर्योधन ने दुःखी होकर कहा—'पिता आप कुछ-का-कुछ कर रहे हैं। हमें तो ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिसमें पाण्डव बढ़कर हमसे राज्य और ऐश्वर्य न छीन लें।'

धृतराष्ट्र बोले—विदुर को मैं अपने मन की बात नहीं बतलाना चाहता। इसी से ऊपर से उनके आगे मैं पाण्डवों की प्रशंसा करता हूँ। जो तुम चाहते हो वही मेरी भी इच्छा है। बतलाओ, तुम क्या करना चाहते हो ?'

दुर्योधन ने कहा—हमें पाण्डवों के पास अपने कुछ चतुर, विश्वासी मनुष्यों को रखकर उनमें आपस में, या द्रुपद

और पाण्डवों में, या द्रौपदी और पाण्डवों में भेद डालना चाहिए। पाँच पति की स्त्री द्रौपदी के मन में भेद डालना कठिन न होगा। कुछ सुन्दरी स्त्रियों के द्वारा पाण्डवों को मोहित करके भी द्रौपदी से उनका बिगाड़ कराना चाहिए। नहीं तो भीम को किसी प्रकार मरवा डालना चाहिए। बिना भीम के पाण्डव बलहीन हो जायँगे और फिर राज्य के लिए उपद्रव न करेंगे। या तो उन्हें यहाँ बुलाकर कौशल से उनका नाश करना चाहिए, अथवा कुशल मनुष्यों द्वारा उनका मन ऐसा फेर देना चाहिए जिसमें वे यहाँ आने का नाम तक न लें, अथवा द्रुपद को धन द्वारा फोड़कर पाण्डवों से अलग कर दियाजाना चाहिए। इनमें से जो भी उपाय उचित समझ पड़े किया जाय। जब तक द्रुपद और पाण्डवों में अधिक विश्वास न उत्पन्न हो जाय तभीतक उपाय किया जा सकता है।

कर्ण ने कहा—ऐसे तुच्छ और गुप्त उपायों से तुम पहले भी काम ले चुके हो। यह सब उपाय सफल नहीं हो सकते। पाण्डवों में किसी तरह भेद नहीं डाला जा सकता। द्रौपदी ने तब उन्हें बुरी दशा में स्वीकार किया था, अब अच्छे दिनों में वह कैसे उनसे विरक्त हो सकती है। फिर बहु-पुरुष की इच्छा भी उसकी अनायास ही संतुष्ट हो जाती है। द्रुपद किसी प्रकार के लोभ या दबाव में

पड़कर पाण्डवों को नहीं छोड़ सकते। केवल एक उपाय है। वह है द्रुपद के तैयार हो सकने और श्रीकृष्ण के सेना-सहित सहायता को आ सकने के पहले ही पाण्डवों पर चढ़ाई करके उन्हें नष्ट कर देना। पराक्रम के द्वारा ही इंद्र ने तीनों लोकों का और भरत ने पृथ्वी भर का राज्य पाया था। पराक्रम प्रकट करना ही क्षत्रिय का परम धर्म है।'

धृतराष्ट्र ने कर्ण के वचनों की प्रशंसा की। फिर विदुर आदि मंत्रियों को बुलाकर वे उनसे सलाह करने लगे।

भीष्म बोले—पाण्डवों से युद्ध करना मुझे अच्छा नहीं लगता। मेरे लिए पाण्डव और कौरव दोनों ही एक समान प्रिय हैं। हम सब का धर्म है पाण्डवों की रक्षा करना। वीर पाण्डवों से मेल करके उन्हें आधा राज्य बाँट देना ही अच्छा है। इस राज्य में पाण्डवों के पिता-पितामह का बराबर का हिस्सा है। हे दुर्योधन! यदि पाण्डव राज्य नहीं पा सकते, तो तुम भी इसके अधिकारी नहीं हो सकते। अधर्म से यह राज्य तुमने पाया है। किन्तु पाण्डवों का अधिकार इस राज्य पर पहले से ही था। यश ही परम बल है। मर जाने पर भी जब तक मनुष्य का यश रहता है तबतक वह जीवित-सा रहता है। जिसकी अपकीर्ति होती है उसका जीना भी व्यर्थ हो जाता है। यदि तुम पाण्डवों को आधा राज्य न दोगे तो तुम बदनाम हो

जाओगे। पाण्डवों के जल-मरने की बात सुनकर सब तुम्हीं को दोष देते थे। उनके जीवित रहने से तुम्हारी वह अपकीर्ति दूर हो गई। पाण्डवों के जीवित रहने से तुम्हें खुशी ही होनी चाहिए। पाण्डव अद्वितीय वीर हैं। तुम्हारा कल्याण इसी में है कि तुम उन्हें आधा राज्य दे दो।

द्रोणाचार्य ने कहा—हितचिन्तक मंत्रियों को धर्म, अर्थ और यश को बढ़ानेवाली सलाह ही देनी चाहिए। भीष्मजी ने बहुत ही उत्तम सलाह दी है। पाण्डवों को बुलाकर उन्हें उनके पैतृक सिंहासन पर बैठाल दीजिये। यही सब प्रजा की इच्छा है और इसी में सब का हित है।

यह सुन कर्ण ने कहा—महाराज धृतराष्ट्र! आप से धन-मान पाने वाले और सब कामों में शामिल किये जाने वाले पुरुष ही आपकी भलाई न सोचें, यह बड़े आश्चर्य की बात है। जो कपट से अच्छे को बुरा बतावे, उसकी बात न माननी चाहिए। बने हुए मित्रों से कष्ट के अवसर पर कल्याण की आशा न रखनी चाहिए। भाग्य के अनुसार ही सुख-दुःख मिलता है। बुद्धिमान और मूर्ख, बूढ़ा और बालक, सबल-सहायतावाला और सहायता से हीन ये सभी, सदा, सर्वत्र अपने-अपने भाग्य के अनुसार सुख-दुःख पाते हैं। पूर्व समय में मगध के अम्बुवीच राजा के निकम्मे होने पर भी उनका चतुर, बलवान मंत्री सब

की सहायता प्राप्त कर, अनेक यत्न करके भी राज्य न ले सका, कारण कि राज्य तो अम्बुवीच के भाग्य में बदा था। यदि राज्य आपके भाग्य में है तो सारे संसार के शत्रु बन जाने पर भी राज्य आपसे कोई छीन नहीं सकता। आप अपने शत्रु-मित्र को समझकर कार्य कीजिए।'

कर्ण की बातें सुनकर द्रोणाचार्यजी ने कुपित हो कर कहा—"कर्ण! तुम द्वेष के कारण यह सब कह रहे हो। मैंने और भीष्मजी ने कौरवों के हित के विचार से ही उत्तम सलाह दी है। अब जैसा उचित समझो, करो। किन्तु यदि भीष्मजी की सलाह के विरुद्ध चलोगे तो कौरव-वंश का नाश दूर नहीं है।"

विदुर बोले—महात्मा भीष्म और द्रोण विद्वान्, अनुभवी, धर्मज्ञ और आपके सच्चे हितू हैं। आप से वे रुष्ट भी नहीं है। फिर वे क्यों आपको ऐसी सलाह देंगे जिसमें आपकी बुराई हो? धैर्य, क्षमा, दया, सत्य, पराक्रम, प्रताप आदि गुण पाण्डवों में विशेष रूप से हैं। कृष्ण-बलदेव और द्रुपद उनके सहायक हैं। पाण्डवों से मेल करने से यादवों और पाञ्चालों से मित्रता हो जायगी। पाण्डवों को आधा राज्य देने से कल्याण ही होगा। यदि आप हित की बात न मानेंगे, तो एक दुर्योधन के दोष से वंश का नाश होगा।

अध्याय २०९, २१०

विदुर का पाण्डवों को लाना, खाण्डवप्रस्थ का राज्य

वैशम्पायनजी बोले—सब की बातें सुनकर धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को बुला लेना ही उचित समझा। उन्होंने विदुर को उन्हें लाने के लिए भेजा। विदुर द्रुपद के यहाँ जाकर सब से मिले। उन्होंने द्रुपद के सम्बन्ध की सराहना की, कुशल-मंगल की बातें सुनाईं और सबको यथा योग्य भेंट आदि की उत्तम वस्तुएँ दीं। फिर उन्होंने पाण्डवों को कुन्ती-द्रौपदी के साथ हस्तिनापुर ले जाने का प्रस्ताव किया।

राजा द्रुपद ने कृष्ण-बलदेव की सलाह लेकर पाण्डवों को कुन्ती-द्रौपदी सहित विधिपूर्वक विदा कर दिया। श्रीकृष्णजी के साथ पाण्डव हस्तिनापुर में आये। सब ने बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया। कुछ दिन बाद धृतराष्ट्र ने दुर्योधन आदि से पाण्डवों का मनमुटाव बचाने के लिए उन्हें खाण्डवप्रस्थ का आधा राज्य दे दिया। श्रीकृष्ण-जी-सहित पाण्डव खाण्डवप्रस्थ को चले गये। उन्होंने वहाँ इंद्रप्रस्थ नामक बहुत ही सुन्दर, ऊँचे-ऊँचे भवनों से परिपूर्ण, चौड़ी सड़कोंवाला एक नगर बसाया। उसमें स्थान-स्थान पर अखाड़े और शस्त्र-अस्त्र सिखाने के स्थान

थे। अंकुश, शतघ्नी आदि यंत्र युद्ध काल में रक्षा करने के लिए रक्खे हुए थे। वहाँ विद्वान् ब्राह्मण, वीर योद्धा, व्यापार-कुशल, धनी, वैश्य तथा गुणी कारीगर आ-आकर बसने लगे। वहाँ नाना-प्रकार के फल-पुष्पों वाले लता-वृक्षों से परिपूर्ण सुन्दर बागीचे लग गये। शीश महलों, लता-कुञ्जों, नकली पर्वतों, जलभरी बावलियों और कमल-कुमुदनियों से सुशोभित तालाबों से उसकी शोभा स्वर्ग के समान हो गई। पाण्डवों को राज्य दिलाकर कृष्ण-बलदेव जी द्वारका को चले गये।

अध्याय २११, २१७

सुन्द-उपसुन्द की कथा, नारद जी के कहने से पाण्डवों का नियम बनाना

वैशम्पायनजी बोले—युधिष्ठिर सिंहासन पर बैठ धर्मपूर्वक राज्य करने लगे। एक दिन देवर्षि नारद उनके पास आये। पाण्डवों और द्रौपदी की पूजा ग्रहण-कर नारदजी ने द्रौपदी को महलों में भेजने के बाद कहा—तुम सब की एक ही स्त्री है। आपस में झगड़ा न उठ खड़ा हो, इसलिए तुम एक नियम बना लो। पूर्वकाल में सुन्द-उपसुन्द नामक दो अत्यन्त

प्रतापी दानव हो गये हैं। दोनों भाइयों में पहले बहुत अधिक मेल और प्रेम था, इस कारण संसार में कोई उनका सामना न कर सकता था। किन्तु तिलोत्तमा नामक एक स्त्री के कारण उनमें इतना वैर हो गया कि वे एक दूसरे के प्राणों के ग्राहक बन गये।

युधिष्ठिर के पूछने पर नारद्जी फिर बोले—हिरण्य-कशिपु के वंश में निकुम्भ नामक दैत्य हुआ। उसके सुन्द-उपसुन्द नामक दो अत्यन्त बलवान, महापराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए। दोनों सदा एक साथ रहते, मानो 'एक प्राण दो देह' हों।' तीनों लोकों को जीतने के लिए दोनों विंध्याचल पर जाकर घोर तप करने लगे। उनकी कठिन तपस्या के कारण विंध्याचल से धुँआ निकलने लगा। देवगण ने तप भंग करने के लिए अनेक प्रकार के उपाय किये। पर वे न डिगे। अन्त में ब्रह्माजी ने प्रकट हो उनसे वर माँगने को कहा। दोनों ने अमर, बली तथा कामरूप अस्त्रों के साथ माया का ज्ञाता होना चाहा। ब्रह्माजी उन्हें अमरत्व छोड़ और सब देने को तैयार हो गये। तब उन्होंने माँगा कि यदि हम मरें तो केवल एक दूसरे के हाथ से ही; संसार में हमें दूसरा कोई न मार सके। ब्रह्माजी मन चाहा वर देकर चले गये। सुन्द-उपसुन्द घर लौट आये और अकाल-कौमुदी-महोत्सव करके

आनंद मनाने लगे।

फिर तीनों लोकों को जीतने की इच्छा से सुन्द-उपसुन्द स्वस्त्ययन-पाठ कराकर मघा नक्षत्र में सेना सजाकर निकले और उन्होंने इंद्रलोक, नागलोक आदि को सहज में जीत लिया। सब को जीतकर वे राज्य करने लगे। इसके बाद उन्होंने अपने क्रूर सैनिकों को आज्ञा दी कि तुम लोग ऋषि-मुनि-ब्राह्मणों को मारो और यज्ञ-हवन बन्द कर दो; क्योंकि हव्य (देवताओं का आहार) और कव्य (पितरों का आहार) के द्वारा ऋषि लोग देवगण के बल-तेज को बढ़ाते रहते हैं। आज्ञा पाते ही दैत्यों ने ऋषि-मुनि ब्राह्मणों का नाश कर डाला। यज्ञ, हवन तथा अन्य पुण्य-कार्य बन्द हो गये। पृथ्वी उजड़ गई। सब को अपने वश में करके सुन्द-उपसुन्द ने कुरुक्षेत्र को अपनी सेना का केन्द्र बनाया।

अध्याय २१४

तिलोत्तमा की उत्पत्ति

नारदजी बोले—देव-ऋषि आदि ने ब्रह्माजी से सुन्द-उपसुन्द के अत्याचार और प्रजा के कष्ट की बात बतलाई। ब्रह्माजी के कहने से विश्वकर्मा ने संसार के सब उत्तम

पदार्थों का सार लेकर एक सबसे सुन्दरी स्त्री की रचना की। संसार के रत्नों का तिल-तिल सौंदर्य लेकर उस स्त्री की रचना की गई थी इस कारण उसका नाम तिलोत्तमा पड़ा। उसके शरीर का एक तिल के बराबर भी कोई ऐसा अंश न था जिसपर मन न मोहित हो जाय। ब्रह्माजी की आज्ञा से तिलोत्तमा सुन्द-उपसुन्द को रिझाकर उनमें आपस में फूट डालने चली। जाने के पहले उसने ब्रह्माजी की और ब्रह्म-सभा की प्रदक्षिणा की। उसके ऊपर सभी मोहित हो गये थे। उसे बराबर देखते रहने के लिए शिवजी ने अपने चारों ओर चार मुख कर लिये और इन्द्र ने हज़ार आँखें!

अध्याय २१५

सुन्द-उपसुन्द का नाश, पाण्डवों का नियम

नारदजी बोले—सब को जीतकर सुन्द-उपसुन्द निष्कंटक राज्य और मनमाना विहार करने लगे। एक दिन वे सुन्दरी स्त्रियों को लिए, ऐश्वर्य की सामग्री के साथ वन-विहार कर रहे थे। इसी समय एक लाल वस्त्र पहने, अपने अंगों की शोभा से सब को लुभाती हुई तिलोत्तमा वहाँ जा पहुँची। दोनों भाई शराब के नशे में चूर थे।

उसे देखकर वे आपे से बाहर हो गये। दोनों ने दौड़कर उसके हाथ पकड़ लिये और सहवास के लिए उससे प्रार्थना की। तिलोत्तमा अपने कटाक्षों और हाव-भाव से दोनों को बेसुध करने लगी। हर एक उसे पहले पाना चाहता था। अन्त में वे दोनों आपस में लड़ने लगे और एक दूसरे के हाथों से कटकर मर गये। दैत्यों के मरने पर तिलोत्तमा को वरदान और इंद्र को तीनों लोकों का राज्य प्राप्त हुआ।

नारदजी के कहने से पाण्डवों ने यह नियम बना लिया कि द्रौपदी हरएक के पास पारी-पारी से जायगी और एक नियमित समय तक प्रत्येक के पास रहेगी। जिस समय एक भाई नियम के अनुसार द्रौपदी के पास हो, उस समय कोई दूसरा भाई वहाँ न जाय, यदि जाय तो उसे बारह वर्ष तक बनवास करना पड़े। इस नियम के कारण पाण्डवों में आपस में कभी फूट न पड़ने पाई।

अध्याय २१६

अर्जुन के वनवास का कारण

वैशम्पायनजी बोले—धर्मपूर्वक राज्य करते हुए अनेक राजाओं को अपने वश में कर पाण्डव धन-धान्य, परिजन-

पुरजनों से परिपूर्ण हो गये। एक बार एक ब्राह्मण रोता हुआ अर्जुन के पास आया और बोला—चोर मेरी गायें जबर्दस्ती लिये जा रहे हैं। जो राजा प्रजा से कर तो लेता है किन्तु उसकी रक्षा नहीं करता, वह शास्त्रों के अनुसार अहितकारी और पापाचारी समझा जाता है। इस समय आप मेरी रक्षा कीजिए।' ब्राह्मण की रक्षा करना परमधर्म समझ कर और शरीर से धर्म को श्रेष्ठ मानकर अर्जुन अपना धनुप लेने उस स्थान पर गये, जहाँ द्रौपदी के साथ युधिष्ठिर एकान्त में बैठे थे। धनुप लेकर अर्जुन ने ब्राह्मण की रक्षा की। इसके बाद वे नियम के अनुसार बारह बरस के लिए संन्यासी बनकर बनवास करने की तैयारी करने लगे। युधिष्ठिर ने उन्हें बहुत रोका, पर वे न माने। 'धर्म में छल करना और सत्य से विचलित होना उचित नहीं होता; यह कहते हुए अर्जुन वन को चले गये।

अध्याय २१७

नागकन्या उलूपी और अर्जुन

वैशम्पायनजी बोले—विद्वान् ब्राह्मणों के साथ अनेक रमणीक स्थानों और तीर्थों को देखते हुए अर्जुन हरद्वार पहुँचे और वहाँ आश्रम बनाकर रहने लगे। एक दिन गंगा

में स्नान करते समय नाग-कन्या उलूपी उन्हें खींचकर अपने पिता कौरव्यनाग के यहाँ ले गई। वहाँ अर्जुन के संध्या, अग्नि-होत्र आदि समाप्त कर चुकने के बाद उलूपी ने कहा—मैं तुम्हारे कारण काम-पीड़ा सह रही हूँ। तुम आत्म समर्पणकर मेरे प्राणों की रक्षा करो। तुमने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करने का व्रत लिया है। पर मेरी जान बचाने से तुम्हें व्रतभंग करने का पाप न लगेगा। मेरा जीवन तुम्हारे अधीन है। बहुत समझाने पर भी जब उलूपी न मानी, तब अर्जुन रात भर उसके साथ विहारकर हरद्वार लौट आये। 'तुम्हें जलचर मात्र कोई न जीत सकेगा' यह वर देकर उलूपी भी चली गई।

अध्याय २१८—२२०

अर्जुन मणिपुर में, चित्रांगदा से विवाह

वैशम्पायनजी बोले—कुछ समय बाद हरद्वार को छोड़, अर्जुन हिमालय के अगस्त्यवट, वशिष्ठ पर्वत, भृगुतुंग पर्वत, हिरण्यविन्दु तीर्थ आदि के दर्शन करते हुए पूर्व दिशा की ओर गये। फिर गया आदि तीर्थों में होते हुए वे अंग, वंग, कलिंग देशों के तीर्थों और देवालयों के दर्शन करने लगे। फिर कलिंग देश से आगे बढ़, महेन्द्र पर्वत को पारकर, समुद्र

के तीर मणिपुर में गये। एक दिन वहाँ के राजा चित्रवाहन की बेटी चित्रांगदा को देख वे मोहित हो गये। अर्जुन के कहने पर राजा ने उनका विवाह इस शर्त पर उससे कर दिया कि चित्रांगदा के जो पहला पुत्र हो उससे मणिपुर का राजवंश चले। अर्जुन वहाँ तीन वर्ष तक चित्रांगदा से विहार करते रहे। अन्त में चित्रांगदा के गर्भ से पुत्र उत्पन्न होने पर वे फिर तीर्थ-यात्रा के लिए चल पड़े।

मणिपुर से चलकर अर्जुन दक्षिण समुद्र के तट वाले तीर्थों में होते हुए अगस्त्य, सौभद्र, पौलोम, कारन्धम, और भरद्वाज नामक पाँच पवित्र तीर्थों पर पहुँचे। उनमें भीषण ग्राह रहते थे, इस कारण कोई उनमें स्नान न कर सकता था। मुनियों के रोकने पर भी अर्जुन ने जाकर उनमें स्नान किया। पानी में एक ग्राह ने उन्हें पकड़ा। उसे वे जल से ऊपर खींच लाये। किनारे पर आते ही वह सुन्दरी अप्सरा हो गयी। अप्सरा ने अर्जुन से बतलाया कि मैं वर्गा नामक अप्सरा हूँ। एक दिन मैं अपनी चार अप्सरा सखियों के साथ कुबेरजी के पास विहार करने के लिए जा रही थी। रास्ते में एक वन में एक मुनि घोर तप करते देख पड़े। कुतूहलवश हमने अपने हाव-भाव से उन्हें मोहितकर उनके तप में विघ्न डालना चाहा। किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी हम उन्हें काम के वश में

न कर सकीं। बहुत तंग किये जाने पर उन्होंने हमें शाप दिया—'तुम ग्राह होकर सौ-सौ वर्ष तक जल' में रहो।

वर्गा फिर बोली—शाप से डरकर हम लोगों ने बड़े यत्नसे मुनिको प्रसन्नकर उनसे क्षमा चाही। उन्होंने कहा कि जब कोई पुरुष ग्राह रूप में तुमको जल से निकाल लेगा तब तुम्हें अपनी योनि प्राप्त हो जायगी। जिस तीर्थ में तुम रहोगी उसका नाम नारी-तीर्थ पड़ेगा। वहाँ से चलने पर हमें रास्ते में नारद मुनि मिले। सब बातें सुनकर उन्होंने हमें इन तीर्थों में रहने की आज्ञा दी।

वर्गा के कहने से अर्जुन ने उसकी चारों सखियों का भी उद्धार किया। फिर वे मणिपुर गये। वहाँ उनके अंश से चित्रागंदा के बभ्रुवाहन नामक परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। बभ्रुवाहन को मणिपुरके वंश को चलाने के लिए वहीं छोड़कर और चित्रागंदा से यह कहकर कि इन्द्रप्रस्थ पहुँचकर हम तुम्हें वहीं बुला लेंगे, अर्जुन, शंकर के आदि-स्थान गोकर्ण तीर्थ को चले गये।

अध्याय २२१–२२४

प्रभासक्षेत्र में अर्जुन-श्रीकृष्ण भेंट, सुभद्रा-हरण

वैशम्पायनजी बोले—अनेक तीर्थों का भ्रमण करते और पश्चिम सागर के तट से होते हुए अर्जुन प्रभासक्षेत्र

पहुँचे। वहाँ उनसे श्रीकृष्णचन्द्रजी ने भेंट की। एक दूसरे से मिलकर दोनों बहुत प्रसन्न हुए। वे नर-नारायण के रूप थे। श्रीकृष्ण उन्हें रैवतक पर्वत पर ले गये। वहाँ सुख-ऐश्वर्य की सब सामग्री पहले ही से इकट्ठी कर दी गई थी। नटों की कलाएँ और नर्तकियों के नाच देखकर अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए। कुछ समय वनविहार करने के बाद श्रीकृष्ण उन्हें द्वारका ले गये। वहाँ सबने उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। स्वर्ग का-सा-सुख भोगते हुए अर्जुन वासुदेव के यहाँ रहने लगे।

कुछ समय बाद यादवों ने रैवतक पर्वत पर बड़ा उत्सव मनाया। हजारों बालक-बालिकाएँ, युवक-युवतियाँ स्त्री-पुरुष सजधजकर नाना प्रकार की विलास-सामग्री के साथ पर्वत पर जाकर विहार करने लगे। राजा उग्रसेन हजारों सुन्दरी स्त्रियों को लिये एक ओर विहार कर रहे थे। वारुणी से आँखें लाल किये हुए बलरामजी अनेक दिव्यांगनाओं के साथ दूसरी ओर रास रचे हुए थे। इसी प्रकार सभी आनन्दोत्सव में मग्न थे। अर्जुन को लिये हुए श्रीकृष्णजी घूम-घूमकर सब का आनन्द ले रहे थे। इसी समय एक ओर अपनी सखियों के साथ विचरती हुई सुभद्रा अर्जुन को देख पड़ी। उसे देखते ही अर्जुन मोहित होकर एकटक उसकी ओर निहारने

लगे। श्रीकृष्णजी ने यह देख, हँसकर कहा—'वनवासी ब्रह्मचारी भी कामदेव के बाणों से बिंध गया! यह मेरी बहन सुभद्रा है। यदि इसके साथ विवाह करने की तुम्हारी इच्छा हो, तो वैसा प्रबन्ध किया जाय।'

कातरभाव से अर्जुन ने कहा—'तुम्हारी इस अनुपम सुन्दरी बहन को पाकर मुझे इतनी प्रसन्नता होगी, मानों मैंने पृथ्वी भर का राज्य पा लिया। मैं इसे पाने के लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ।'

श्रीकृष्णजी ने सोचकर कहा—'क्षत्रियों में स्वयंवर की प्रथा है। किन्तु इसका कोई निश्चय नहीं कि स्वयंवर में सुभद्र तुम्हें ही वरण करे। इस कारण तुम इसे हर ले जाओ। इसे पाने का यही एक निश्चित उपाय है।'

श्रीकृष्णजी की सलाह से उनके रथ पर सवार होकर अर्जुन शिकार खेलने चले। रास्ते में उन्हें देवपूजन करके लौटती हुई सुभद्रा मिली। अर्जुन इसी ताक में तो थे ही। उन्होंने सुभद्रा को ज़बर्दस्ती अपने रथ पर बिठा लिया और वे इन्द्रप्रस्थ की ओर उड़ चले। इधर यह समाचार सुनकर यादवगण क्रोध से पागल हो गये। वे युद्ध की तैयारी करने लगे। बल्देव प्रधान-प्रधान यादवों को लेकर श्रीकृष्णजी के पास गये और सुभद्रा-हरण में यादव-कुल का अपमान समझकर अर्जुन को भला-बुरा कहने लगे।

सब यादव बलदेवजी की बातों का समर्थन करने और अर्जुन को दण्ड देने की बातें सोचने लगे। श्रीकृष्ण जी ने सबको शान्त करते हुए कहा—शंकर को छोड़कर आज संसार में धनुर्धर अर्जुन का सामना कोई दूसरा वीर नहीं कर सकता। उनका वंश भी उत्तम है। सुभद्रा को अर्जुन से बढ़कर योग्य दूसरा वर नहीं मिल सकता। यदि अर्जुन ज़बर्दस्ती सुभद्रा को लेकर इन्द्रप्रस्थ पहुँच जायँगे तो यादवों की बड़ी बदनामी होगी। इस कारण उचित यही है कि उन्हें प्रेम से बुलाकर उनका विवाह हम लोग यहीं कर दें। मेरे दिव्य रथ और घोड़े इस समय उनके पास हैं। उनका सामना करना तो असंभव है। इससे उन से मेल कर लेना ही ठीक होगा।

श्री कृष्णजी के समझाने से यादवों ने प्रेम से बुला कर अर्जुन का विवाह सुभद्रा से कर दिया। एक वर्ष द्वारका में रहने के बाद अन्तिम वर्ष अर्जुन ने पुष्करक्षेत्र में बिताया। बारह बरस पूरे होने पर वे इंद्रप्रस्थ लौट आये। सबने उनका स्वागत किया। सुभद्रा को पाकर सब बड़े प्रसन्न हुए। अर्जुन के इन्द्रप्रस्थ पहुँचने के बाद श्रीकृष्ण-बलदेव प्रधान-प्रधान यदुवंशियों को लेकर वहाँ आये और नाना प्रकार के रत्न आदि दहेज में देकर उन्होंने युधिष्ठिर का खज़ाना भर दिया। कुछ समय इंद्र-

प्रस्थ में सुख से बिताकर बलदेवजी यादवों को लेकर द्वारका चले गये। किन्तु श्रीकृष्णजी अर्जुन के साथ रह गये। कुछ समय बीतने पर सुभद्रा के एक अत्यन्त तेजस्वी, सर्वगुण-संपन्न, पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम अभिमन्यु रक्खा गया। शीघ्र ही अभिमन्यु ने अर्जुन से सभी तरह के शस्त्र-शास्त्र और युद्ध की विद्या सीख ली। इधर द्रौपदी के युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य; भीम से सुतसोम, अर्जुन से श्रुतकर्मा, नकुल से शतानीक और सहदेव से श्रुतसेन नामक पुत्र, एक-एक वर्ष का अन्तर देकर उत्पन्न हुए। धौम्य ऋषि ने सब के विधिवत् संस्कार किये। यथासमय वे शस्त्र-शास्त्र में पारंगत होगये।

अध्याय २२५, २२६

जल-विहार, अग्नि का आना, अग्नि का अजीर्ण

वैशम्पायनजी बोले—न्यायपूर्वक राज्य करनेवाले धर्मराज युधिष्ठिर के प्रीतिपूर्वक शासन में रहकर प्रजा की दिन-दूनी, रात-चौगुनी वृद्धि होने लगी। सब तरह के गुणी लोग उनके पास आकर सुख से रहने लगे। धर्म, अर्थ और काम इन तीनों का महत्त्व युधिष्ठिर बराबर समझते और उचित रीति से तीनों का उपाय करते। प्रजा भी कर्त्तव्य के पालन को भी उतना ही आवश्यक समझत

जितना मनोरंजन और सुखोपभोग को। एक दिन अर्जुन श्रीकृष्ण जी को लेकर यमुना में जल-विहार करने गये। सैकड़ों सुन्दर अंगोंवाली स्त्रियाँ उनका तरह-तरह से मनोरंजन करने लगीं। आमोद-प्रमोद, राग-रंग ने स्वर्ग को भी तुच्छ कर दिया। इसी समय एक तेजस्वी ब्राह्मण का रूप रखकर अग्निदेव वहाँ आ पहुँचे।

अग्नि ने श्रीकृष्ण और अर्जुन के पास आकर भोजन माँगा। पूछने पर कि आप क्या चाहते हैं,उन्होंने बतलाया कि मैं अग्नि हूँ और खाण्डव-वन को जलाकर अपना अजीर्ण दूर करना चाहता हूँ। किन्तु इंद्रदेव के कारण मैं इस वन को जला नहीं सकता। इस वन में इंद्र का मित्र तक्षक नाग रहता है। उसे बचाने के लिए इंद्र जल बरसाकर मुझे शान्त कर देते हैं।

जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायनजी बोले—पूर्व समय में श्वेतकि नामक एक बहुत ही धार्मिक और दानी राजा थे। वे सदा यज्ञ में ही लगे रहते थे। हवन का धुआँ लगते रहने से यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणों की आँखें खराब हो गईं, इससे वे राजा के रोकने और धन का लालच देने पर भी यज्ञ को छोड़कर चले गये। तबराजा को दूसरे पुरोहितों को रखकर यज्ञ कराना पड़ा। कुछ समय बाद लगातार यज्ञों के होते रहने से वे पुरोहित भी थककर

उग्र उठे। राजा ने सौ वर्ष में समाप्त होनेवाला यज्ञ करना चाहा। किन्तु अनेक उपाय करने पर भी कोई ब्राह्मण उन्हें वैसा यज्ञ कराने को तैयार न हुआ। तब राजा ने घोर तप करके शंकरजी को प्रसन्नकर यज्ञ कराने का वर माँगा। शिवजी के कहने से राजा ने बारह वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य रखकर, अखण्ड घी की धार से, अग्नि को तृप्त किया। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर दुर्वासा ऋषि को यज्ञ कराने की आज्ञा दी। दुर्वासा ने सौ वर्ष में समाप्त होनेवाले यज्ञ को विधिपूर्वक समाप्त कराया। राजा ने इतना दान दिया कि ब्राह्मण अयाचक हो गये। बारह वर्ष तक घी की अखण्ड धारा को पीने के कारण अग्निदेव को भी अजीर्ण हो गया। इस कष्ट से छूटने का उपाय पूछने के लिए वे ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्माजी ने उनसे कहा कि नाना प्रकार की औषधियों से परिपूर्ण खाण्डव-वन को जलाने से तुम्हारा अजीर्ण दूर हो जायगा। अग्नि ने सात बार खाण्डव वन को जलाना चाहा और सातों बार इंद्र ने जल बरसा कर उन्हें शान्त कर दिया।

अध्याय २२७

अर्जुन का अग्नि से रथ-धनुष माँगना

वैशम्पायनजी बोले—हारकर अग्निदेव फिर ब्रह्माजी

के पास गये। ब्रह्माजी ने उन्हें नर-नारायण के अवतार अर्जुन-कृष्ण के पास भेजा। अग्नि ने अर्जुन तथा श्री कृष्णजी के पास आकर उनसे सहायता चाही।

अर्जुन ने कहा—मैं आपकी सहायता करूँगा और इंद्र को भी रोक लूँगा। किन्तु उस युद्ध के लायक सुदृढ़ धनुष और दिव्य रथ मेरे पास नहीं है। श्री कृष्णजी के लिए भी कोई दिव्य अस्त्र चाहिए।

राजा सोम ने वरुणदेव के पास अक्षय तर्कस, दिव्य धनुष, वानर-चिह्न-युक्त अद्भुत रथ और अमोघ चक्र रख दिये थे। अग्निदेव ने वे सब अर्जुन-कृष्ण को दिला दिये। अग्निदेव ने श्रीकृष्णजी को चक्र के साथ आग्नेयास्त्र भी दिया। वह चक्र एक बार चलाने पर देवता, दानव आदि को काटकर फिर चलानेवाले के पास लौट आता था। वरुण ने श्रीकृष्णजी को कौमोदकी नामक अमोघ गदा दी। इसके अनन्तर अर्जुन-कृष्णजी के कहने से अग्निदेव विशाल रूप धारणकर उस वन को जलाने लगे।

अध्याय २२६–२३१

भीषण अग्नि, इन्द्र का जल बरसाना

वैशम्पायनजी बोले—चारो ओर घूम-घूमकर अर्जुन और कृष्ण उस वन से भागे हुए राक्षस, पिशाच, पशु,

पक्षी आदि को मार-मारकर गिराने और अग्निदेव को सन्तुष्ट करने लगे। उस वन में लाखों जले-अधजले प्राणी तड़प-तड़पकर जान देने लगे। किसी के अंग जले, किसी की आँखें फूटीं, किसी की खोपड़ी फटी, कोई जलते-जलते ऊपर उछल-उछलकर गिरने लगा, कोई अपने पुत्र को खींचकर निकालते समय भस्म हो गया, कोई पिता को सहारा देते-देते जल मरा। उस वन के तालावों का पानी खौल उठा। जल-जीव उचलकर जल के ऊपर उतराने लगे। अग्नि के जलने, लपटों के उठने, वायु के चलने, वृक्षों आदि के गिरने, जीव-जन्तुओं के चिल्लाने के विकट, अतिघोर शब्द से दिशाएँ भर गईं। अग्नि की लपटें आकाश को छूने लगीं। ऋषि-मुनियों तथा देवगण की सलाह से इन्द्र ने अग्नि को शान्त करने के लिए मूसला-धार पानी बरसाना प्रारंभ किया। किन्तु अग्नि की प्रचण्ड लपटों की गरमी से वह आकाश ही में सूखने लगा। तब इन्द्र ने और भी जोर से वर्षा आरंभ की। धुएँ के फैलने और बादलों के घिर आने से सब जगह अँधेरा छा गया।

घोर वृष्टि होते देख अर्जुन ने बाणों से खाण्डव-वन को ऐसा ढक दिया कि न कोई अन्दर आ सकता था और न बाहर जा सकता था। बाणों के बीच से जल की एक नन्हीं बूँद तक न आ सकती थी। इन्द्र ने अर्जुन को

धोखा देकर तक्षकनाग के पुत्र को निकाल दिया। इस पर अर्जुन इंद्र से भिड़ गये। दोनों में भीषण युद्ध हुआ। अर्जुन ने अपने दिव्य अस्त्रों की सहायता से मेघों को उड़ाकर नष्ट कर दिया। उसी समय खाण्डव-वन के विकराल पक्षियों, नागों, असुरों तथा गंधर्वों आदि ने कृष्ण और अर्जुन पर भीषण आक्रमण किये। किन्तु अर्जुन और कृष्ण ने सब को परास्त कर दिया। इधर इन्द्र ने देवगण के साथ अनेक दिव्य अस्त्र, पर्वत आदि चलाकर और देवमाया प्रकट करके कृष्ण-अर्जुन को हराना चाहा; पर अन्त में सब वारों के विफल होने पर देवगण को हारकर भागना पड़ा।

भीषण युद्ध के अवसर पर आकाशवाणी हुई कि 'हे इन्द्र! तुम्हारा युद्ध करना उचित नहीं है। अर्जुन-कृष्ण नर-नारायण के अवतार हैं, इन्हें कोई जीत नहीं सकता। खाण्डव-दाह विधाता की इच्छा से हो रहा है। तुम्हारा मित्र तक्षक पहले से ही खाण्डव से बाहर चला गया था।'

आकाश-वाणी सुनकर इन्द्रदेव सेना लेकर हट गये। यह देख अर्जुन सिंहनादकर अधिक उत्साह से अग्नि को सहायता पहुँचाने लगे। करोड़ों प्राणी अग्नि की भेंट होने लगे। इसी समय नमुचि दानव का भाई मयासुर (दानवों का विश्वकर्मा) प्राण लेकर भागता देख पड़ा।

अग्निदेव उसका पीछा कर रहे थे। उसे भागते देख श्रीकृष्ण जी चक्र लेकर उसके सामने जा पहुँचे। प्राण जाते देख मयदानव ने अर्जुन की शरण ली। तब दया करके अर्जुन ने उसे छुड़ा दिया।

इधर, बराबर पंद्रह दिन तक अग्नि ने अर्जुन-कृष्ण की रक्षा में खाण्डव-वन को जलाया। तक्षक का पुत्र अश्वसेन, मयदानव और चार शार्ङ्गक पक्षियों को छोड़कर खाण्डव-वन का दूसरा कोई जीव-धारी अग्निदेव से न बच सका।

अध्याय २३२–२३६

मन्दपाल ऋषि और शार्ङ्गक पक्षियों की कथा

जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायनजी बोले—पूर्व समय में मन्दपाल नामक एक बहुत ही तपस्वी, वेदज्ञ और जितेन्द्रिय ऋषि थे। ब्रह्मचर्य-व्रत धारणकर उन्होंने घोर तप किया। शरीर त्यागने के बाद वे धर्मराज के पास गये। किन्तु व्रत, तप करके उन्होंने जो लोक प्राप्त किये थे उनकी राह उनके लिए बन्द थी। इसका कारण पूछने पर देवगण ने उन्हें बतलाया कि तुमने पुत्र उत्पन्न करके पितृ-ऋण पूरा नहीं किया, इसी से तुम्हें कर्म-धर्म-तप-व्रत के फल प्राप्त नहीं हो रहे। देवगण की आज्ञा से उन्होंने

शाङ्गक पक्षी बनकर जरिता नामक शाङ्गिका से पुत्र उत्पन्न किये। फिर वे लपिता नामक दूसरी शाङ्गिका से विहार करने लगे। इसी बीच में अग्नि ने खाण्डव-वन को जलाना प्रारम्भ किया। मन्दपाल ऋषि ने पुत्रों पर संकट देख अग्निदेव की बड़ी स्तुति की। अग्निदेव ने उनकी प्रार्थना पर उनके पुत्रों को बचा दिया। इसी कारण ऋषि के चार पुत्र शाङ्गक पक्षी खाण्डव-दाह से बच गये।

प्रारंभ में अग्नि-देव चारों ओर से बढ़ रहे थे। जरिता ने अपने बच्चों की रक्षा का कोई उपाय न देख विलाप करना प्रारंभ किया। उसने कहा—जाते समय मेरे पति मन्दपाल ऋषि कह गये थे कि बड़ा पुत्र जरितारि वंश को चलायेगा, दूसरा पुत्र सारिसृक्क पुत्र उत्पन्नकर पितरों के कुल को बढ़ायेगा, सलम्बमित्र तप करेगा और द्रोण वेदज्ञ होगा। किन्तु इस समय अग्निदेव सब को भस्म कर देंगे। मैं इन्हें लेकर उड़ भी नहीं सकती।

उसे विलाप करते देख बच्चों ने समझाया कि तुम भागकर अपने प्राण बचाओ। जो तुम बची रहोगी तो फिर अनेक पुत्र उत्पन्न करके वंश चला सकोगी। माता ने कहा—पेड़ के नीचे चूहे का बिल है। तुम चारो उसमें घुस जाओ, मैं ऊपर से मिट्टी भर दूँगी। वहाँ अग्नि से तुम बच जाओगे। बच्चों ने कहा—हमारे पंख नहीं हैं।

हम मांस के पिंडमात्र हैं। बिल में हमें चूहे खा जायँगे। इससे तो अग्नि में जलना अधिक उत्तम होगा।

जरिता ने कहा—'इस बिल के चूहे को बाज़ ले गया है। अब इसमें जाने में कोई भय नहीं है। तुम मेरे कहने से इसमें जाकर जान बचालो।' पर बच्चे न गये। उन्होंने कहा—जहाँ निश्चित मृत्यु हो, वहाँ जाने की अपेक्षा उस स्थान पर रहना अधिक उत्तम है जहाँ मृत्यु अनिश्चित है। बच्चों के समझाने से जरिता उड़कर सुरक्षित स्थान में चली गई।

ऋषि से उत्पन्न उन पक्षी-बालकों ने अग्नि की स्तुतिकर अपनी रक्षा की। अग्नि ने मन्दपाल ऋषि की प्रार्थना को यादकर उन बच्चों को बचा दिया। बच्चों के कहने से उन्हें तंग करनेवाले वनबिलावों को अग्निदेव ने भस्म कर डाला।

उधर अग्निदेव को प्रसन्नकर मंदपाल ने बच्चों के बचाने का वर प्राप्त कर लिया था। तो भी वे बच्चों के जलने के डर से व्याकुल हो गये। उनकी दूसरी स्त्री लपिता सौत के डाह से उन्हें बुरा-भला कहकर जरिता के पास जाने का ताना देने लगी। अन्त में मंदपाल अधीर हो लपिता के साथ बच्चों को खोजते हुए पुराने स्थान पर आये और उन्हें सुरक्षित देख बहुत प्रसन्न हुए।

अध्याय २३७

खाण्डव-दाह समाप्त, अर्जुन-कृष्ण को वरदान

वैशम्पायनजी बोले—इधर अग्निदेव खाण्डव-वन के दहन से तृप्त हो, ब्राह्मण का वेश बनाकर अर्जुन और श्रीकृष्णजी के पास आये। इंद्र भी देवगण सहित आये और बोले—'तुमने वह कार्य किया है जो देवों से भी न हो सकता। अब तुम जो चाहो, वरदान माँगो।'

अर्जुन ने उनसे दिव्य अस्त्र माँगे। श्रीकृष्णजी ने वर माँगा कि अर्जुन से मेरी सदा मित्रता बनी रहे। श्रीकृष्णजी को मन चाहा वर देकर और अर्जुन से यह कहकर कि जब शंकरजी तुम्हें अस्त्र-शस्त्र देंगे, तभी मैं भी तुम्हें सब अस्त्र दे दूँगा, इंद्र अपने स्थान को चले गये।

अग्निदेव भी यह वर देकर कि तुम्हारी गति अप्रतिहत (कहीं न रुकने वाली) होगी, अपने लोक को चले गये।

श्रीकृष्ण, अर्जुन और मयदानव वहीं यमुना किनारे सुख से बैठ गये।

आदिपर्व समाप्त

महाभारत

सभापर्व

अध्याय १

श्री कृष्णजी का मयदानव से सभा-भवन बनाने को कहना

वैशम्पायनजी बोले—मयदानव ने अर्जुन से कुछ सेवा करने की इच्छा प्रकट की। अर्जुन ने बहुतेरा कहा कि तुम जब हमारा उपकार मानते हो तो इसी में हमारा प्रत्युपकार हो चुका। पर वह कुछ-न-कुछ करने के लिए हठ करता ही गया। हारकर अर्जुन ने उसकी बात रखने के लिए उससे कहा कि तुम श्रीकृष्णजी की कोई सेवा कर दो। मयदानव ने श्रीकृष्णजी से तदनुसार प्रार्थना की।

श्रीकृष्णजी ने कहा—तुम महाराज युधिष्ठिर के लिए एक ऐसा सभा-भवन बनादो, जिसकी नक़ल कोई कारीगर न कर सके।' मयदानव ने स्वीकार कर लिया। युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर मयदानव ने शुभ मुहूर्त में दस हज़ार हाथ के घेरे में विधिपूर्वक सभाभवन बनाने का कार्य प्रारंभ किया।

अध्याय २

श्रीकृष्ण जी का जाना

वैशम्पायनजी बोले—कुछ समय खाण्डवप्रस्थ में रहने के बाद अपनी बहन सुभद्रा को समझाकर तथा पाण्डवों, द्रौपदी और कुन्ती से विदा हो श्रीकृष्णचन्द्रजी द्वारका के लिए रवाना हुए। युधिष्ठिर रथ हाँकने लगे, अर्जुन चँवर डुलाने लगे। दो कोस निकल जाने पर श्री-कृष्णजी ने पाँव पकड़कर युधिष्ठिर को लौटाया। युधिष्ठिर से आशीर्वाद पाकर तथा अर्जुन आदि को भेंटकर श्री कृष्णचन्द्र जी विदा हुए और यथासमय द्वारका पहुँचे। इधर पांडव आनन्द से राज्य करने लगे।

अध्याय ३

मयदानव का सभा-भवन बनाना

वैशम्पायनजी बोले—अर्जुन से आज्ञा लेकर मय-दानव सभा बनाने के उपयुक्त सामग्री लेने के लिए कैलाश के उत्तर तट पर मैनक पर्वत को गया। वहाँ बिन्दुसर के पास वृषपर्वा की सभा थी। मय ने उसमें लगी हुई स्फटिक-मणि की सब सामग्री ले ली। इसी स्थान पर महाराज भगीरथ ने गंगा को पृथ्वी पर लाने

के लिए तप किया था, ब्रह्मा ने सौ यज्ञ किये थे, इन्द्र ने सिद्धि प्राप्त की थी, शंकर ने प्रजा उत्पन्न की थी और श्रीकृष्णजी ने अनुष्ठान किया था। हज़ार युग बीतने पर नर-नारायण, ब्रह्मा, यम और शिवजी इसी स्थान पर परब्रह्म की उपासना करते हैं। राजा यौवनाश्व ने शत्रुओं का संहारकर एक भारी गदा वहीं गाड़ दी थी। वरुण का देवदत्त नामक शंख भी वहीं था। मय-दानव ने लाकर शंख तो अर्जुन को दिया और गदा भीम को। फिर उसने चौदह महीना निरन्तर परिश्रम करके उस अपूर्व सभा का निर्माण किया। अन्य अनेक विचित्र बातों के अलावा उस सभा भवन में स्फटिक मणि का एक ऐसा अद्भुत सरोवर था कि देखनेवालों को उसमें जल भरे रहने पर भी स्थल का धोखा हो जाता था। सभा के तैयार होजाने पर मय ने युधिष्ठिर को इसकी सूचना दी।

अध्याय ४, ५

युधिष्ठिर का सभा-भवन में प्रवेश, नारद का उपदेश

वैशम्पायनजी बोले—सभा भवन के बन जाने पर महाराज युधिष्ठिर ने नाना प्रकार के दिव्य पदार्थों और वराह, मृग आदि के स्वादिष्ट मांसों को खिलाकर ब्राह्मणों

तथा ऋषियों को तृप्त किया। फिर गोदान आदि देकर विधिपूर्वक ऋषियों के साथ उन्होंने सभाभवनमें प्रवेश किया। सभी प्रसिद्ध ऋषि-मुनि तथा राजा-महाराजा, दूर-सामन्त सभा-भवन में आकर युधिष्ठिर को प्रसन्न करने और उनके ऐश्वर्य को बढ़ाने लगे।

पाण्डव भी सब के साथ सभा में विराजमान थे। इसी समय सदा घूमते रहनेवाले नारद जी वहाँ आये। सम्पूर्ण वेद-वेदांग, इतिहास, पुराण, राजनीति, व्यवहारशास्त्र, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष तथा भूत-भविष्यत्-वर्तमान का उन्हें पूर्ण ज्ञान है। उनके समान स्मृतिवाला, शक्तिशाली, प्रगल्भ वक्ता और प्रमाणनिष्ठ चतुर विद्वान अत्यन्त दुर्लभ है। सन्धि-विग्रह आदि राज्य के छः गुणों का उनके समान दूसरा ज्ञाता नहीं है। पाण्डवों ने बड़े आदर से उनकी विधिवत् पूजा की।

कुशल-क्षेम के अनन्तर नारदजी बोले—"हे युधिष्ठिर! अर्थ-चिन्तन ने आपके धर्म-चिन्तन को दबा तो नहीं लिया? धन-वैभव का लोभ आपके धर्म के कामों में रुकावट तो नहीं डालता? अथवा ऐसा तो नहीं होता कि सदा धर्म के कामों में लगे रहने के कारण आपके धनोपार्जन में विघ्न पड़ता हो? फिर कहीं निरन्तर काम-लालसा में निमग्न रहने के कारण आपके धर्म और अर्थ दोनों में बाधा तो

नहीं पड़ती ? आप उचित रीति से, उचित समय पर धर्म, अर्थ और काम, इन तीनों का सेवन समान भाव से तो करते हैं ? आप संधि-विग्रह आदि छः राजगुणों तथा सात उपायों (मंत्र, औषध, इंद्रजाल, साम, दान, भेद, दण्ड) के ज्ञान और प्रयोग के द्वारा अपने पक्ष और शत्रु-पक्ष के बलाबल पर सदा ध्यान तो रखते हैं ? खेती, वाणिज्य, क़िलों की मरम्मत, पुल बनवाना, आमदनी-खर्च की जाँच, जनता के कार्यों पर दृष्टि रखना, जनपदों (बस्तियों) की देख-रेख, ये आठ राज-कर्म तो आपके द्वारा ठीक-ठीक होते रहते हैं ? स्वामी, अमात्य, सुहृद, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और बल—राज की ये सात प्रकृतियाँ तो अच्छी दशा में हैं ? आप के राज्य के लोग धनी, कार्य-कुशल और प्रभुभक्त तो हैं ? शिकार, स्त्री, तथा शराब आदि के व्यसनों में तो आप और आपके मंत्री, मित्र, सैनिक, प्रजा आदि नहीं फँसे हैं ? विश्वास दिलाकर दूसरों के जासूस आप और आपके मंत्रियों की गुप्त मंत्रणा को तो नहीं जान लेते ? अपने शत्रु-मित्र और उदासीन राष्ट्रों के कार्यों और उनकी बातों की पूरी खबर तो आप रखते हैं ? ठीक समय देख संधि और विग्रह (युद्ध) तो आप करते हैं ? विजय की जड़ मंत्रणा (सलाह) ही है, इस कारण श्रेष्ठ, योग्य और विश्वासी

मनुष्यों को तो आप मंत्री बनाते हैं ? एक भी मंत्री यदि चतुर जितेन्द्रिय, वीर, बुद्धिमान और अनुभवी हो, तो वह राजा को श्रेष्ठ ऐश्वर्य का अधिकारी बना देता है। थोड़े परिश्रम से बहुत फल देनेवाले कामों का निश्चय करके आप तुरन्त कर डालते हैं या नहीं ? किसानों पर सख़्ती तो नहीं होती ? उन पर आपका विश्वास तो है ? और वे आप पर विश्वास तो रखते हैं ? काम आरंभ करने के पहले विशेषज्ञ और चतुर मनुष्यों द्वारा उसके संबंध में उचित जाँच तो आप करा लेते हैं ? युद्ध-विद्या के विशेषज्ञों द्वारा अपने सैनिकों को युद्ध-शिक्षा तो आप दिलाते हैं ? संकट के अवसरों पर युक्ति से काम लेकर रक्षा करनेवाले चतुर पुरुषों को ही तो आप अपने यहाँ रखते हैं ? अपने क़िलों में धन, अन्न, शस्त्र, जल, यंत्र, कारीगर और योद्धाओं को तो उचित रूप से रखते हैं ? अपने चतुर जासूसों द्वारा शत्रु के मंत्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तर्वेशिक, कारागार के अधिकारी, कोषाध्यक्ष, कार्यों के कृत्याकृत्य के निर्णायक, प्रदेष्टा, नगराध्यक्ष कोतवाल, कार्य-निर्माण कर्त्ता, धर्माध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल, राज्य की सीमापर रहकर सीमा-प्रदेश की रक्षा करनेवाला और वन-विभाग के अधिकारी, इन अठारह तीर्थों और अपने तीर्थों की

पूरी-पूरी जानकारी तो आप रखते हैं ? अपने योग्य उत्तम और सब शास्त्रों के विद्वान ब्राह्मण को ही तो आपने अपना पुरोहित बनाया है ? जो जिस योग्य होता है उस को आप उसीके अनुसार काम में नियुक्त तो करते हैं ? अनुचित और कठोर दण्ड से आपकी प्रजा उद्विग्न और शंकित तो नहीं हो उठती ? शासन करनेवाले मंत्री आपको तुच्छ या हीन तो नहीं समझते ? सैनिकों और कर्मचारियों को ठीक समय पर वेतन तो दिया जाता है ? उत्तम कार्य करनेवाले स्वामिभक्त सेवकों और अस्त्र-शस्त्र की कला और युद्ध-विद्या जाननेवाले वीर सैनिकों का उचित सम्मान करके आप उन्हें संतुष्ट तो रखते हैं ? सेनापति या ज़िम्मेदारी के अन्य पदों पर कोई ऐसा पुरुष तो नहीं है जो आप से शत्रुता रखता या बुरा मानता हो ? पौरुष या उद्योग के द्वारा जो पुरुष आपका कुछ उपकार कर देता है उसे धन, मान आदि से आप तुरन्त प्रसन्न तो कर देते हैं ? विद्वान्, ज्ञानी तथा गुणी तो आपसे उचित आदर, धन, मान, पद तथा संरक्षा पाते हैं ? जो आपके लिए जीवन देते या विपत्ति में पड़ते हैं उनके पुत्र-स्त्री के भरण-पोषण का प्रबन्ध तो आप उचित रीति से कर देते हैं ? प्रजा को आप उसी तरह स्नेह की दृष्टि से तो देखते हैं जैसे माता-पिता अपने पुत्रों को ? प्रजा आपसे सशंकित

तो नहीं रहती ? शत्रु को व्यसनों में फँसा देख, अपने मन्त्र-कोष-सेवक के बल को ठीक से जाँचकर उस (शत्रु) पर फ़ौरन हमला तो आप कर देते हैं ? शत्रु की सेना में भेद डालने के लिए आप शत्रु के उच्च कर्मचारियों को धन आदि तो देते रहते हैं ? पहले अपनी जड़ मज़बूत कर, तब बाद में शत्रु को कमज़ोर देख, आप उसे जीतने का प्रयत्न तो करते हैं ? अपने और दूसरे राज्य में आपके कर्मचारी अपने कामों को पूरा करते और आपस में बिना झगड़ा किये एक दूसरे की सहायता और रक्षा तो करते हैं? आपके परम विश्वासी और ईमानदार मनुष्य ही तो कोष, भण्डार, वाहन, द्वार, शस्त्रशाला और कोष की रक्षा के लिए नियुक्त किये जाते हैं ? आप अपनी कुल आय का केवल कुछ अंश ही तो ख़र्च करते हैं ? सब तो नहीं ? आप वृद्ध, सजातीय, गुरुजन, व्यापारी, शिल्पी, आश्रित, दीन-दरिद्रों और अनाथों को धन-अन्न दे उनकी रक्षा तो करते हैं ?

आमदनी-ख़र्च का हिसाब रखनेवाले तो नित्य, दिन के पहले प्रहर में आकर, आपको हिसाब समझा जाते हैं ? बिना अपराध के उत्तम और विश्वासी कर्मचारियों को आप उनके पद से तो नहीं हटाते ? अयोग्य, चोर या बैर रखने वाले लोगों को तो आप किसी पद पर नहीं रखते ? मुक़द्दमों का फ़ैसला अच्छे स्वभाववाले न्यायी पुरुषों के

द्वारा ही तो किया जाता है ? जिसे दण्ड दिया जाना चाहिए वह लोभ आदि के कारण छोड़ तो नहीं दिया जाता ? और जिसे दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए वह द्वेष आदि के कारण दण्ड तो नहीं पा जाता ? वीर, बुद्धिमान, प्रशास्ता, समाहर्ता (कर वसूल करनेवाले), संविधाता (कर वसूली की जाँच करनेवाले) लेखक और साक्षी— ये पाँच अधिकारी आपके राज्य के प्रत्येक गाँव में शान्ति और व्यवस्था की स्थापना तो उचित रीति से करते हैं ? राज्य की रक्षा के लिए आप गाँवों, कसबों और नगरों को तो समान रूप से समृद्धिशाली बनाये रखते हैं ? आपके राज्य में स्त्रियों की रक्षा तो उचित रीति से होती है ? वे सुखी और संतुष्ट तो रक्खी जाती हैं ? कोई अमंगल समाचार सुन, फिर सुख-भोग में लिप्त हो, आप उसे भूल तो नहीं जाते ? जो प्रजाजन आप से मिलना चाहते हैं उनसे आप प्रतिदिन मिलते तो हैं ? अपनी रक्षा के लिए आप सदा सशस्त्र अंगरक्षक तो अपने पास रखते हैं ? आप उचित उपायों द्वारा अपने शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य को तो ठीक रखते हैं ? चिकित्सा के आठों अंगों में (निदान, पूर्वचिह्न, रूप, उपशय, सम्प्राप्ति, औषधि, रोगी और परिचारक) आपके वैद्य दक्ष तो हैं ? आप से या चोर, लोभी, कुमार और स्त्रियों की प्रबलता से प्रजा को

पीड़ा तो नहीं पहुँचती ? राज्य के किसान तो संपन्न और सुखी हैं ? राज्य में स्थान-स्थान पर जल से भरे हुए बड़े-बड़े तालाब और झीलें तो हैं ? खेती केवल वर्षा के सहारे तो नहीं होती ? किसानों को बीज आदि की कमी तो नहीं पड़ती ? ज़रूरत पड़ने पर किसानों को कम सूद पर क़र्ज़ तो दिया जाता है ? झूठ, क्रोध, नास्तिकता, असावधानी, दीर्घसूत्रता, ज्ञानी पुरुषों से न मिलना, जो जिस विषय को नहीं जानते उनसे उस विषय में सलाह लेना, आलस्य, चित्त की चंचलता, सदा धन पाने की चिन्ता में रहना, निश्चित कार्य का आरंभ न करना, मंत्रणा को गुप्त न रख सकना, मंगल-कार्यों को न करना और बिना सोचे-समझे किसी काम को कर डालना—ये चौदह बातें राजा का नाश कर डालती हैं। आप इनसे बचे तो रहते हैं ? आप निद्रा, भय, कोमलता (दिल की कमज़ोरी) के शिकार तो नहीं रहते ? वेद-पाठ का फल अग्निहोत्र है। धन का फल भोग और दान है। स्त्रियों का फल रति और पुत्र हैं। अनुभव का फल सच्चरित्रता है। आप इन चारों के फलों को तो प्राप्त करते हैं ? आपके राज्य में दूसरे देशों के व्यापारी तो आते हैं ? और उनसे उचित शुल्क (कर या चुंगी) तो प्राप्त होता है ? वे आपके कर्मचारियों के द्वारा सम्मानित

होकर, सब सुविधाएँ प्राप्त कर, बिना धोखा खाये व्यापार तो करते हैं? आप सब शिल्पियों को अपने राज्य से चार-चार महीने के लिए शिल्प की सामग्री तो देते रहते हैं? आप सबका उचित मान और प्रत्युपकार तो करते हैं? आपको रथ, घोड़ों, हाथियों तथा रत्नों आदि की पहिचान तो है? आप युद्ध, रक्षा और शत्रुओं को नष्ट करने की कलाओं का अभ्यास और ज्ञान तो प्राप्त करते रहते हैं? अपनी प्रजा की आग, सांप तथा रोग आदि से, हर तरह रक्षा तो आप करते रहते हैं? आप अंधे, गूँगे, लँगड़े, अंगहीन, अनाथ तथा संन्यासी की रक्षा तो किया आदि करते हैं?

नारदजी के चरण छूकर युधिष्ठिर ने उनके उपदेश के अनुसार चलने की प्रतिज्ञा की। इसी उपदेश के अनुसार चलने पर वे समुद्र तक पृथ्वी का राज्य पाकर सुखी हुए। जो राजा इस उपदेश के अनुसार चलता और चारों वर्णों की रक्षा करता है वह इस लोक में सुखी होकर अन्त में स्वर्ग लाभ करता है।

अध्याय ६-१२

सभाओं के वर्णन

वैशम्पायनजी बोले—नारदजी का यथोचित सम्मान

करके युधिष्ठिर ने विनयपूर्वक कहा—आपके बतलाये हुए धर्ममूलक तथा न्याययुक्त उपदेशों के अनुसार ही चलने की मैं भरसक चेष्टा करता हूँ। किन्तु पूर्व समय के महात्मा राजाओं के समान जितेन्द्रिय न होने के कारण मैं उनकी भाँति पूरी तरह से चल नहीं सकता। अब एक विनय है। मेरी इस सभा के समान अथवा इससे उत्तम सभा यदि आपने कहीं देखी हो, तो उसका पूरा-पूरा वर्णन कृपाकर सुनाइये।

नारदजी ने प्रसन्न होकर उत्तर दिया—पृथ्वी पर तो मैंने ऐसी सभा कहीं भी नहीं देखी। हाँ, पितरों के राजा यम, देवराज इंद्र, सागरपति वरुण, यक्षपति धनराज कुबेर और विश्व के रचयिता ब्रह्मा की सभाओं का वर्णन मैं आप को सुनाता हूँ।

नारदजी बोले—इंद्र की सभा का नाम पुष्करमालिनी है। वह सूर्य के समान प्रकाशमान और तेजोमय है। देवराज इंद्र ने स्वयं उसे रचा है। वह दिव्य, बहुमूल्य आसनों और ऊँचे विमानों, दिव्य वृक्षों और वस्तुओं से सुशोभित है। वह डेढ़ सौ योजन लम्बी, सौ योजन चौड़ी और पाँच योजन ऊँची है और सब जगह जा सकती है। उसमें जाते ही बुढ़ापा, शोक, थकान, चिन्ता, भय, अशान्ति तथा अमंगल दूर हो जाते हैं। उसमें दिव्य वस्त्राभूषणों

से सुशोभित होकर इंद्र इंद्राणी तथा देवगण, देव-र्षिगण, सिद्ध-साध्य-गंधर्व-किन्नरगण, महर्षिगण, परम धर्मात्मा राजाहरिश्चंद्र ग्रह-नक्षत्र आदि के साथ सुशोभित होते हैं। नाना प्रकार के गीत, नृत्य, वाद्य, हासपरिहास, स्तुतिपाठ आदि के द्वारा गंधर्व-अप्सरा-किन्नर आदि उस सभा में सब का मनोरंजन करते रहते हैं।

नारदजी फिर बोले—सूर्य के पुत्र यमराज की समृद्धि-शालिनी, दिव्य और प्रकाशमान सभा को विश्व-कर्मा ने रचा है। इसमें वे सभी गुण हैं, जो इंद्र की सभा में हैं। दिव्य, उत्तम षट्रस व्यंजनों तथा स्वादिष्ट फलों से, मीठे जल के झरनों तथा जलाशयों से यह सभा परिपूर्ण है। शुद्ध हृदयवाले नहुष, ययाति आदि राजर्षि और ब्रह्मर्षि यमराज के साथ आनन्द करते हैं। पितृगण, कर्मकाण्डी सिद्धगण, योगी, मृत्यु, काल, यमराज के शिशप-पलाश-काश-कुश इत्यादि सेवकगण सदा यमराज की सेवा-उपा-सना किया करते हैं। नृत्य-गान-वाद्य-हास्य-लास्य के द्वारा अप्सराएँ, गंधर्व आदि सब को प्रसन्न किया करते हैं।

नारदजी बोले—वरुण की सभा भी सौ योजन की है भीतर और अत्यन्त प्रकाशमान है। विश्वकर्मा ने इसे जल के रचा है। इसमें इन्द्र और यम की सभाओं के सभी दिव्य गुण हैं। वरुणदेव वारुणीदेवी के साथ दिव्य वस्त्राभूषणों से

सुशोभित होकर इस सभा में विराजते हैं। आदित्यगण, वासुकि आदि नागगण, राजा बलि, नरकासुर आदि दैत्य-दानवगण, सशरीर समुद्र, गंगा-यमुना-नर्मदा आदि नदियाँ, जलाशय, सरोवर, कूप, झील, झरने आदि, सब दिशाएँ, वरुणदेव का मंत्री सुनाभ, जलचर आदि वरुणदेव की आराधना करते हैं। प्रसिद्ध अप्सराएँ, गंधर्व नृत्य-गान-वाद्य तथा स्तुति-पाठ के द्वारा वरुणदेव का मनोरंजन करते रहते हैं।

नारदजी पुनः बोले—अपने तप के प्रभाव से महाराज कुबेर ने सौ योजन लम्बी और सत्तर योजन चौड़ी चाँदनी-सी प्रकाशमान दिव्य सभा प्राप्त की है। वह आकाश में तैरती-सी जान पड़ती है। गुणों में इन्द्र-यम-वरुण की सभाओं के समान है। हज़ारों अनुपम सुन्दरी दिव्य कन्याएँ तथा निधियाँ सदा कुबेरजी की सेवा में रहती हैं। कल्पवृक्ष की सुगंध से भरा हुआ, अलकनन्दा के कणों से शीतल नन्दन-कानन का दिव्य पवन कुबेरदेव की सेवा किया करता है। रम्भा, मेनका, उर्वशी, चारुनेत्रा, शुचि-स्मिता आदि अप्सराएँ; हाहा-हूहू, विश्वावसु, चित्ररथ आदि गंधर्व; यक्षगण, किन्नरगण, राक्षसगण, पिशाच; प्रेतगण; हिमालय आदि पर्वत, नन्दीश्वर, देवर्षि, महर्षि, आदि सभी सदा कुबेरदेव की सेवा में उपस्थित रहते हैं।

भूतपति महादेव श्रीपार्वती तथा गणों के साथ सदा उस सभा में अपने मित्र कुबेर के साथ विराजते हैं।

नारदजी बोले—एक बार सतयुग में भगवान् आदित्यदेव ने प्रसन्न होकर मुझे ब्रह्मसभा का वर्णन सुनाया था। ऐसे मनोहर वर्णन को सुन, मेरा मन उसे देखने के लिए बेचैन होगया। तब आदित्यदेव के बतलाये हुए ब्राह्मव्रत का एक हज़ार वर्ष तक अनुष्ठान कर मैंने उस सभा के देखने का अधिकार प्राप्त किया। उस अनुपम सभा को देखकर मैं मुग्ध हो गया। वह क्षण-क्षण पर नई शोभा, नूतनरूप धारण करती है। हज़ारों सूर्यों से बढ़कर उसकी प्रभा है। उसमें जाते ही सब प्रकार के अभाव, क्लेश, बाधाएँ तथा विकार दूर हो जाते हैं। अपने दिव्य रूप से ब्रह्माजी वहाँ विराजते हैं। सब देवर्षि, महर्षि, पुनीत प्राणी, देवतागण, पितृगण, विद्याएँ, कलाएँ, गुण, द्रव्य, भाव, पदार्थ, जीव, माया, काल आदि साकार रूप रखकर ब्रह्मदेव की उपासना में तत्पर रहते हैं। इंद्र, वरुण, कुबेर आदि सदा ब्रह्माजी के दर्शनों के लिए आते रहते हैं। पुष्टि, आशा, नियति, रति, सृष्टि, सुरा आदि देवियाँ मूर्तिमती हो, सदा ब्रह्मदेव की सेवा किया करती हैं। जो चराचर जगत में देखा-सुना जाता है वह सब उस सभा में मूर्तिमान हो ब्रह्मदेव की उपासना में उप-

स्थित रहता है। सभी देवताओं की सभाओं से ब्रह्मसभा श्रेष्ठ है। हे युधिष्ठिर! उसी तरह पृथ्वी पर यह तुम्हारी सभा भी सबसे श्रेष्ठ है।

अध्याय १२

युधिष्ठिर के प्रश्नों के उत्तर

युधिष्ठिर ने नम्रता से पूछा—इंद्रलोक में केवल राजा हरिश्चंद्र ही क्यों जा सके हैं? उन्होंने ऐसे क्या विशेष कर्म किये थे? हमारे पिता महाराज पाण्डु को भी आपने पितृलोक में देखा होगा? क्या उन्होंने हमारे लिए कुछ संदेसा भेजा है?"

नारदजी बोले—हरिश्चन्द्र अपने पराक्रम से सब देशों के राजाओं को जीतकर सम्राट बने थे। उन्होंने राजसूय महायज्ञ किया था, जिसमें छोटे-बड़े सभी कामों के करने के लिए बड़े-बड़े राजा लोग नियुक्त किये गये थे। यज्ञ में जिसने जो माँगा, उससे उसे दस गुना ज्यादा दिया गया। ब्राह्मणों ने उनके दान-मान से संतुष्ट होकर उन्हें सबसे बढ़कर इन्द्र के समान घोषित किया था। अपने असीम दान-पुण्य और राजसूय यज्ञ के कारण हरिश्चन्द्र को इन्द्र के साथ स्वर्ग-सुख भोगने को मिला है। जो धर्म

और प्रजा की रक्षा के लिए लड़ते हुए युद्ध में शरीर छोड़ते हैं और जो इन्द्रियों को वश में करके घोर तप करते हैं उन्हें भी इन्द्रलोक का सुख प्राप्त होता है। हे युधिष्ठिर ! तुम्हारे पिता पाण्डु हरिश्चन्द्र के समान सुख भोगने और इन्द्र के समकक्ष होने की प्रबल इच्छा रखते हैं। उन्होंने तुम्हें आज्ञा दी है कि तुम अपने पराक्रमी भाइयों के साथ दिग्विजय करके सम्राट बनो और राजसूय यज्ञ करो। यदि तुम राजसूय यज्ञ कर लोगे तो फिर मैं, तुम्हारा पिता पाण्डु, इन्द्रलोक में जाकर हरिश्चन्द्र ही के समान स्वर्ग का सुख भोग सकूँगा और इन्द्र के समकक्ष हो जाऊँगा।

युधिष्ठिर को पाण्डु का संदेश सुनाकर और सावधानी से प्रजा के दुखों को दूर करते हुए राज्य करने तथा विधिपूर्वक, निर्विघ्न, राजसूय यज्ञ करने की सलाह देकर नारदजी अपने शिष्यों के साथ वहाँ से चले गये।

अध्याय १३-१६

युधिष्ठिर का राजसूय के लिए सलाह करना

वैशम्पायनजी बोले—हरिश्चन्द्र आदि के सुख-ऐश्वर्य को सुनकर युधिष्ठिर का मन राजसूय यज्ञ करने के लिए

मचल उठा। उन्होंने अपने हित-मित्रों, मन्त्रियों-सामन्तों, बन्धु-बांधवों से सलाह ली। सब की यही राय हुई कि इस समय प्रजा ख़ूब सुखी, सम्पन्न तथा सन्तुष्ट है, अनेकानेक देश के राजा लोग वशवर्ती और आज्ञाकारी हैं। महाराज युधिष्ठिर में सम्राट होने के सब गुण हैं। अवसर भी उपयुक्त है। इस कारण राजसूय यज्ञ कर डालना ही उचित है।

युधिष्ठिर क्रोध, द्रोह से बचकर सब का हित करते और प्रजा को हर प्रकार से सुखी करने की चेष्टा करने में लगे रहते। उन्होंने अपने कुल-भर का ऋण चुकता करा दिया। सब छोटों-बड़ों का वे समान रूप से उपकार करने लगे। उनका अहित करनेवाला कोई न रह गया। इससे उनका नाम 'अजातशत्रु' पड़ गया। पर सबकी सलाह सुनकर भी उनको राजसूय यज्ञ को आरंभ करने की हिम्मत न होती थी। वे सोचते—जो बुद्धिमान मनुष्य अपनी शक्ति, सुयोग, देश, काल, आमदनी और ख़र्च पर भलीभाँति विचार करने के बाद किसी काम को शुरू करता है उसे पीछे पछताना नहीं पड़ता। अन्त में इस कार्य के विषय में सलाह लेने के लिए उन्होंने सबमें श्रेष्ठ, अप्रमेय, महाबाहु, नारायण के अवतार श्रीकृष्णचन्द्रजी को बुलाया और उनसे कहा—बहुत से मनुष्य अपने मित्र के दोषों और त्रुटियों को नहीं बतलाते। कुछ लोग अपने स्वार्थ के लिए

हाँ-में-हाँ मिलाते हैं। ऐसे लोगों की सलाह पर भरोसा नहीं करना चाहिए। आप इन दोषों से परे हैं। अब आप राजसूय यज्ञ के विषय में उचित सलाह दीजिये।

श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले—आप में सब श्रेष्ठ गुण हैं, इस कारण आप राजसूय यज्ञ करने के योग्य पात्र हैं। किन्तु इधर मगध-नरेश अपने पराक्रम से सब राजाओं को अपने वश में कर एकाधिपत्य राज्य कर रहा है। बली शिशुपाल उसके सहायक और सेनापति हैं। मायावी करूष-राज, वक्र, हंस-डिम्भक, चक्रदंत, करभ, मेघवाहन, पश्चिम दिशा के यवनाधिपति भगदत्त, पश्चिम और दक्षिण दिशाओं के राजागण, आपके हितू मामा पुरुजित, वंग-पुण्ड्र-किरात का राजा मिथ्या वासुदेव-पौण्ड्रक, मेरे श्वसुर पाण्ड्य-क्रथ-कौशिक देश-विजेता, पराक्रमी भीष्मक आदि सभी जरासंध के वश में हैं। जरासंध के डर से अठारह भोजकुल, उत्तर देश के सब राजा, शूरसेन, भद्रक, बोध, शल्व आदि वंश के राजा, दक्षिण-पाञ्चाल के राजा और पूर्व-कोशल के राजा अपने-अपने देश छोड़कर चले गये हैं। मत्स्य और संन्यस्तपाद देशों के राजा भाग कर दक्षिण दिशा को चले गये हैं। यादववंश के कंस ने जरासंध की अस्ति-प्राप्ति नामक कन्याओं से विवाहकर यादवों पर अत्याचार करना प्रारंभ किया था। सबके

कहने से मैंने उसे मारा और अठारह यादव कुलों को सुसंगठित किया। कंस का बदला लेने के लिए जरासंध हम पर चढ़ दौड़ा। हमने सत्तरह बार उसे हराकर लौटाया और किसी तरह कौशल से उसके प्रमुख वीर हंस और डिम्भक को मारा। किन्तु अन्त में उसकी असंख्य सेना और प्रबल पराक्रम से डरकर हमने मथुरा और वहाँ के राज्य को छोड़ दिया और भागकर हम रैवतक पर्वत से सुशोभित कुशस्थली (द्वारका) पर अधिकार जमा, वहाँ बस गये। तीन योजन लम्बे रैवतक पर्वत पर सुदृढ़ क़िलेबन्दी कर और सैन्यदल रख अब हम जरासंध के डर से कुछ मुक्त हुए हैं। जरासंध के भय से द्वारका में हमने ऐसी क़िलेबन्दी की है कि स्त्रियाँ तक आसानी से उसकी रक्षा कर सकती हैं। हमारे वंश में १८ हज़ार योद्धा उत्पन्न हुए हैं। उनमें चारुदेष्ण, चक्रदेव, मैं, सात्यकि बलभद्र, साम्ब और प्रद्युम्न अतिरथी हैं। कृतवर्मा आदि सात वीर महारथी हैं। उग्रसेन आदि दस महावीर हैं। इतने सबल होने पर भी हम सब जरासंध के सामने असमर्थ-से हैं। हे युधिष्ठिर! आप में सम्राट होने के सब गुण हैं। आप राजसूय यज्ञ जरूर करें। किन्तु बिना जरासंध को जीते यह हो नहीं सकता। जरासंध ने राजाओं की बलि देकर शंकर की आराधना करने का

विचार किया है। बलि के लिए उसने अनेकानेक राजाओं को क़ैद कर रक्खा है। हम इसी डर से मथुरा छोड़कर भागे थे। राजसूय यज्ञ के लिए जरासंध को जीतना बहुत आवश्यक है। अब देश, काल, कार्य, कारण का विचारकर जो उचित समझिये, कीजिये।

युधिष्ठिर बोले—हे कृष्ण! तुम योगीश्वर हो। बल-बुद्धि-नीति में कोई भी तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकता। हमें तो तुम्हारा ही भरोसा है। सेना, धन, नीति के बल पर भी जब इतने प्रबल राजा सम्राट पद को न प्राप्त कर सके, तब राजसूय यज्ञ करने की मेरी इच्छा दुराशामात्र है। अपनी स्थिति देखकर शान्त रहने में ही मुझे कल्याण समझ पड़ता है। अब आप जैसी आज्ञा दें, वैसा करूँ। मैं तो सदा दुष्ट जरासंध को जीत लेने की चिन्ता में रहता हूँ।

भीम बोले—जो राजा उद्योग करना छोड़ देता है, अथवा बिना उपाय सोचे और बिना नीति का सहारा लिये प्रबल शत्रु से लड़ाई छेड़ देता है वह अवश्य नष्ट हो जाता है। किन्तु जो राजा निर्बल होने पर भी आलस्य को छोड़कर नीति के अनुसार प्रबल शत्रु पर आक्रमण करता है वह अवश्य ही विजयी होता है। सर्वश्रेष्ठ नीतिज्ञ श्रीकृष्ण के साथ मैं और अर्जुन अवश्य

ही जरासंध का नाश कर सकेंगे।

श्रीकृष्णजी बोले—युवनाश्व के पुत्र मान्धाता ने 'कर' का लेना छोड़ कर, भगीरथ ने प्रजा का पालन करके, कार्तवीर्य (सहस्रबाहु) ने घोर तप करके, भरत ने अपने पराक्रम के द्वारा, राजा मरुत ने धन-बल से सम्राट का पद प्राप्त किया था। इनमें से प्रत्येक ने केवल एक-एक गुण के बल पर साम्राज्य प्राप्त किया था। किन्तु आप में तो सभी गुण हैं। आप के सम्राट होने में कोई भी संदेह नहीं है। इस समय धर्म, अर्थ और नीति के द्वारा जरासंध को जीतना ही आपका सबसे पहला काम है। उसने ८६ राजाओं को क़ैद कर रक्खा है। १४ राजाओं के और मिलने पर सौ की संख्या पूरी होते ही वह उनकी बलि देगा। इस समय जो जरासंध को मारकर इन राजाओं को मौत के मुख से उबार लेगा वही सम्राट हो जायगा।'

युधिष्ठिर बोले—हे कृष्ण! तुम मेरे मन के समान हो और अर्जुन-भीम मेरी दो आँखें हैं। मैं तुम तीनों को प्रबल दस्यु जरासंध के पास नहीं भेज सकता। मैं सब अनर्थों की जड़ राजसूय यज्ञ के विचार को ही छोड़ देना चाहता हूँ।'

युधिष्ठिर को कातर देख अर्जुन बोले—श्रेष्ठ अस्त्र,

बल, पौरुष, राज्य, सहायक और यश बहुत दुर्लभ होते हैं। किन्तु हमें सब प्राप्त हैं। श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न होने की अपेक्षा बल और साहस अधिक उत्तम हैं। उत्तम वीरों के वंश में उत्पन्न होकर भी निर्बल मनुष्य क्या कर सकता है? किन्तु तुच्छ वंश में उत्पन्न होकर भी पराक्रमी पुरुष मान तथा यश प्राप्त कर लेता है। दूसरे अच्छे गुण न होने पर भी केवल पराक्रम के कारण मनुष्य अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकता है, किन्तु दूसरे उत्तमोत्तम गुणों के होते हुए भी पराक्रम-हीन पुरुष कुछ नहीं कर सकता। जहाँ पराक्रम होता है, वहाँ दूसरे सब गुण आप-से-आप आ जाते हैं। उत्साह, पौरुष और दैव (भाग्य) यही तीन जय-प्राप्ति के कारण हैं। दुर्बल में दीनता और सबल में असावधानी का होना नाश का कारण होता है। इस समय हमारा सबसे बड़ा कर्तव्य है जरासंध को मारकर उसकी क़ैद से बन्दी-राजाओं को छुड़ाना। ऐसा न करने से संसार में सभी हमें तुच्छ समझेंगे। आप मिथ्या शान्ति-प्रिय क्यों होना चाहते हैं? शान्ति की इच्छा रखनेवालों को सब-कुछ छोड़, गेरुए वस्त्र पहनकर वन में रहना चाहिए। हमें तो राज्य करना है हम लोग साम्राज्य की प्राप्ति के लिए अवश्य ही युद्ध करेंगे।

अध्याय १७-१९

जरासंध के जन्म का रहस्य

श्री कृष्णजी बोले—अर्जुन ने जो कहा है वह उनके ऐसे वीर पुरुष के उपयुक्त ही है। मौत का कोई निश्चित समय नहीं रहता। यह भी नहीं है कि जो युद्ध से बचता रहे वह मरे ही नहीं। साम-दान आदि के अनुसार, नीति और उपाय के द्वारा, शत्रु पर आक्रमण करने से अवश्य ही विजय प्राप्त होती है। जिसके पास बहुत-सी सुशिक्षित सेना हो, उस प्रबल शत्रु से खुल-कर सामने युद्ध करना उचित नहीं होता। इस कारण हम गुप्त रूप से जरासंध के पास जाकर द्वन्द्व-युद्ध में उसे मारेंगे। यदि उसके मारे जाने पर, उसके सहायकों के द्वारा, हम मार डाले गये, तो भी हमें स्वर्ग प्राप्त होगा। अब जरासंध के जन्म की कथा सुनिये।

मगध में बृहद्रथ नामक एक बहुत ही प्रतापी, सर्व-गुण-संपन्न राजा थे। काशिराज की दो पुत्रियों से उनका विवाह हुआ था। सुख भोगते और राज्य करते हुए राजा की पूरी जवानी निकल गई, पर उनके कोई पुत्र न हुआ। हताश होकर राजा परमतपस्वी चण्डकौशिक ऋषि की शरण में गये। ऋषि ने उनका अभिप्राय जान, उन्हें एक आम का

फल दिया और रानी को खिलाने को कहा। महलों में लौटकर राजा ने उस फल को अपनी दोनों रानियों को खिला दिया। यह जानकर कि दोनों रानियों को गर्भ है, राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। दस मास बाद दोनों रानियों के पेट से लड़के के दो टुकड़े अलग-अलग पैदा हुए। हर एक टुकड़े में एक आँख, एक कान, एक हाथ, एक पैर, आधा पेट, आधी नाक तथा आधा सर था। रानियों ने राजा के डर से घबराकर उन टुकड़ों को चुपचाप बाहर फिकवा दिया। संयोगवश उसी समय जरा नामक राक्षसी उसी ओर से आ निकली। उसने उन टुकड़ों को उठा लिया और दोनों को ठीक से मिला दिया। टुकड़ों के एक में मिलते ही एक बालक बन गया और वह इतने ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा, मानों बादल गरज रहे हों। जरा ने उस बालक को उठाना चाहा, पर वह पहाड़ ऐसा भारी जान पड़ा। इधर, उस घोर शब्द को सुनकर राजा, रानियाँ, महल के दास-दासियाँ, सब वहाँ दौड़े आये। जरा जानती थी कि राजा-रानियों को पुत्र की बड़ी इच्छा है। उन पर दयाकर उसने बालक को खाने का विचार छोड़, सुन्दरी स्त्री का रूप रखकर बालक को रानियों को सौंप दिया और उसके फेंके जाने और जिलाने का सारा हाल बतला दिया। राजा ने प्रसन्न

होकर उससे उसका परिचय पूछा।

राक्षसी बोली—मैं जरा नाम की राक्षसी हूँ। मैं आपके राज्य में रहती हूँ। आप लोगों से आदर और आहार पाकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। इसी से इस बालक को न खाकर मैं तुम्हें देती हूँ। जो स्त्री नवयौवना तथा पुत्रवती स्त्री के रूप में अपने घर में मेरी पूजा करेगी उसका सब प्रकार से कल्याण होगा। यह बालक मेरे नाम से प्रसिद्ध होगा।' यह कह वह अन्तर्धान हो गई। जरा नामक राक्षसी के द्वारा जोड़े जाने के कारण राजा ने बालक का नाम जरासंध रक्खा।

श्रीकृष्णजी फिर बोले—कुछ समय बाद चण्ड-कौशिक मुनि फिर मगध में आये। राजा ने उनकी विधि-पूर्वक पूजा की। ऋषि ने कहा—तुम्हारा यह पुत्र जरासंध ऐसा प्रतापी होगा कि दूसरा कोई भी राजा इसकी किसी तरह बराबरी न कर सकेगा। यह सब को जीत-कर समुद्रपर्यन्त राज्य करेगा।' मुनि के चले जाने पर कुछ समय बाद राजा ने जरासंध को सिंहासन पर बैठाल दिया और आप रानी-सहित वन में तप करने के लिए चले गये। जरासंध ने अपने पराक्रम से एक-एक करके सभी राजाओं को अपने अधीन कर लिया।

अध्याय २०

कृष्ण भीम-अर्जुन की यात्रा

श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले—'सामने सेना लेकर सब देवता और दानव भी जरासंध का सामना नहीं कर सकते। यदि वह मारा जा सकता है, तो केवल नीति के बल पर, द्वन्द्वयुद्ध में ही। मैं, अर्जुन और भीम तीनों उसका नाश कर सकते हैं।' भीम और अर्जुन को श्रीकृष्ण जी की बातों से प्रसन्न देख युधिष्ठिर ने कहा—'हे कृष्ण! आप जगदीश्वर हैं। जिस ढंग से यह काम शीघ्र पूरा हो, वही कीजिये। नीति का विधान है कि नीति-निपुण चतुर मनुष्य को ही नेता और सेनापति बनाना चाहिए। कारण कि सेनापति अपनी नीति और बुद्धि के कारण शत्रु के कमज़ोर भाग को ताड़ लेता है और उसी पर सेना को आक्रमण करने की आज्ञा देकर विजय प्राप्त कराता है। हे कृष्ण! आप बुद्धि, नीति आदि गुणों में सबसे श्रेष्ठ हैं। आप अपने साथ अर्जुन-भीम को ले जाकर शीघ्र ही शत्रु का नाश कीजिये।'

युधिष्ठिर की अनुमति लेकर तीनों ने स्नातक ब्राह्मणों का वेश बना और गेरुएँ वस्त्र पहन, यात्रा प्रारम्भ की। वे कुरु-जांगल के बीच से होते हुए, पद्मसर, कालकूट

पर्वत, गण्डकी, महाशोण, सदानीरा, सरयू, महाकोशल देश, मिथिला, माला, चर्मण्यवती, गंगा और शोण को पारकर गोरख पर्वत के पास मगध देश की समृद्धिशाली राजधानी के निकट जा पहुँचे।

अध्याय २१, २२

जरासंध का स्वागत

राजधानी के निकट पहुँचकर श्रीकृष्णजी ने कहा—देखो, मगध की राजधानी गिरिव्रज ऊँचे-ऊँचे महलों-मकानों और धन-सम्पत्ति से कैसी सुशोभित हो रही है! बड़े-बड़े वृक्षों से पूर्ण वैहार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक नामक पाँच पर्वतों से गिरिव्रज को चारों ओर से घेरकर अभेद्य बना दिया है। गौतम ऋषि ने औशीनरी नामक शूद्रा से काक्षीवान आदि क्षत्रिय पुत्र उत्पन्न किये थे। उन्हीं का वंश मगध पर राज्य कर रहा है। इस देश में इतना जल है और सिंचाई का इतना उत्तम प्रबंध है कि खेती के लिए केवल वर्षा पर कोई निर्भर नहीं रहता। धन, धान्य, पशु, जल आदि से देश परिपूर्ण है। यहाँ किसी प्रकार का कोई उपद्रव भी नहीं देख पड़ता। यहाँ लगातार उत्सव हुआ करते हैं।' इस प्रकार

बातें करते हुए वे नगर के फाटक के पास जा पहुँचे। पर वे सदर फाटक से नगर से अन्दर नहीं गये। दूसरी ओर एक चैत्य था। वहाँ राजा-प्रजा सभी भक्ति-भाव से पूजा-अर्चा करते थे। वहाँ तीन नगाड़े रक्खे हुए थे। राजा बृहद्रथ ने मनुष्यों को खानेवाले ऋषभ नामक राक्षस को मारकर उसकी खाल से ये नगाड़े बनवाये थे। सभी इन नगाड़ों की पूजा करते थे। तीनों ने जाकर पहले उन नगाड़ों को तोड़ डाला। फिर चैत्य को ढहाया और वे उसी राह से नगर में घुसे। इसी बीच भयंकर उत्पात होते देख ब्राह्मणों ने राजा जरासंध के निमित्त शान्ति की व्यवस्था की। जरासंध ने विधिपूर्वक दीक्षा लेकर उपवास किया। इधर श्रीकृष्ण आदि नगर की भरी-पूरी दूकानों को देखते हुए राजभवन की ओर बढ़े रास्ते में उन्होंने एक माली से जबरन मालाएँ छीनकर पहन लीं। उन्हें ब्राह्मण समझकर सब नगरवासी आश्चर्य से उन्हें घूर-घूरकर देख रहे थे। अन्त में तीनों राजमहलों में घुसकर वे जरासंध के सामने जा खड़े हुए। उन्हें देख जरासंध आदर के लिए उठ खड़ा हुआ। उसने उन्हें सम्मान से बैठालकर विधि-पूर्वक उनकी पूजा की। तब श्रीकृष्णजी ने उससे कहा कि हम लोग आधी रात के बाद बात करेंगे। जरासंध उन्हें

यज्ञशाला में ठहराकर दूसरे कामों में लग गया। उसका प्रसिद्ध नियम था कि यदि स्नातक, यती, तथा ब्राह्मण आधी रात को भी उसके यहाँ आ जाय, तो भी वह उनका उसी समय आदर-सत्कार करता था और मुँह माँगी वस्तु देता था।

आधीरात बीतने पर सत्यवादी जरासंध कृष्ण-अर्जुन-भीम के पास गया और कुशल आदि पूछकर बोला —ब्रह्मचारी न तो माला पहनते, न चन्दन ही लगाते। तुमने क्यों ऐसा किया है! फिर, बनते हो ब्राह्मण, पर तेज और चिह्नों से क्षत्रिय जान पड़ते हो। मैंने यह भी सुना है कि तुमने नगाड़ों को फोड़ा है और चैत्य को तोड़ा है। और सीधे द्वार से न आकर तुम पीछे से नगर में घुसे हो। यह क्यों ?'

श्रीकृष्णजी बोले—क्षत्रिय स्नातक माला धारण करने से संपत्तिशाली होता है। इसीसे हम माला पहने हैं। फिर मित्र के घर जाना हो तो सीधे द्वार से जाना चाहिए। शत्रु के घर तो दूसरे ही रास्ते से जाना उचित होता है।

जरासंध बोला—'मैंने न तो तुम से कभी शत्रुता का व्यवहार किया और न कभी तुम्हें दुःख ही पहुँचाया। फिर तुम क्यों मुझे अपना शत्रु मानते हो ? मैं सदा अपने धर्म पर स्थिर रहता हूँ और कभी भूलकर भी

अपनी प्रजा के धर्म और अर्थ में बाधा नहीं डालता। तुम भ्रम से मुझे अपना शत्रु मान रहे हो।'

श्रीकृष्णजी बोले—तुमने बहुत से क्षत्रिय राजाओं को बलि देने के लिए ,कैद कर रक्खा है। यह अधर्म और अपराध नहीं तो और क्या है? यदि शक्ति-संपन्न होकर भी हम तुम्हें ऐसे पाप-कर्म से न रोकें, तो हमें भी तुम्हारे पाप का भागी होना पड़ेगा। हम अपनी जाति की सहायता के लिए तुम्हारे सामने खड़े हैं। कौन ऐसा नराधम है जो अपनी जाति की सहायता करने से विमुख होना उचित समझेगा? अपनी जाति के हित के लिए युद्ध करते-करते मरने से स्वर्ग प्राप्त होता है। जाति-कल्याण के निमित्त होनेवाले संग्राम से कौन मूढ़ पीछे हटेगा? मैं कृष्ण हूँ और ये भीम तथा अर्जुन हैं। तुम या तो वन्दी राजाओं को छोड़ दो, या हमसे युद्ध करो।

जरासंध ने कहा—'मैंने सम्मुख युद्ध में जीतकर राजाओं को बन्दी बनाया है। मैं तुम्हारे कहने से उन्हें कैसे छोड़ दूँ? तुम चाहे सेना लेकर युद्ध करो, या तीनों मिलकर, अथवा अलग-अलग। मैं सब तरह से तैयार हूँ। युद्ध से इनकार कैसा?'

यह कह उसने अपने पुत्र सहदेव को राजतिलक कर दिया।

अध्याय २३, २४

जरासंध से भीम का युद्ध, जरासंध-वध

वैशम्पायनजी बोले—जरासंध ने राजसी वस्त्राभूषण और मुकुट आदि उतारकर भीमसेन से द्वन्द्व-युद्ध की तैयारी की। वेदपाठी पुरोहित ने मांगलिक वस्तुएँ तथा पीड़ा और मूर्छा दूर करने की औषधियों के साथ उनका अभिषेक किया। स्वस्त्ययन-शान्ति-पाठ हुआ। भीम ने भी विधिपूर्वक सब तैयारी की। फिर दोनों वीर एक दूसरे को प्रणामकर युद्ध करने लगे। नाना प्रकार के दाँव-पेंचों से वे एक-दूसरे को हराने की चेष्टा करने लगे। हज़ारों बालक-बालिकाएँ, स्त्री-पुरुष वहाँ, उस भीषण युद्ध को देखने से लिए, एकत्र हुए। युद्ध कार्तिक बदी प्रतिपदा से प्रारंभ हुआ था और लगातार चलता रहा। चौदहवें दिन, रात के समय कुछ थककर, जरासंध ने कुछ समय के लिए युद्ध बन्द करना चाहा। किन्तु अवसर न चूकनेवाले श्रीकृष्णजी ने भीम को सावधान किया। शत्रु को शिथिल देख भीम ने उसे मार डालने के विचार से उस पर बड़े ज़ोर से आक्रमण किया।

श्रीकृष्णचन्द्रजी का इशारा पाकर भीम ने थके हुए जरासंध पर एकाएक बिजली की तरह टूटकर उसे उठा

लिया और सौ बार सर के चारों ओर घुमाकर ज़ोर से पृथ्वी पर पटक दिया। फिर घुटने मारकर उसकी पीठ तोड़ दी और टाँगें पकड़कर उसे बीच से चीर डाला। जरासंध के प्राण निकल गये। भीम चुपके से उसकी लाश को नगर के फाटक पर रख आये। फिर तीनों ने जरासंध के दिव्य रथ पर बैठकर बन्दी राजाओं को क़ैद से छुड़ा दिया।

पूर्वकाल में उसी रथ पर बैठकर अनेक बार विष्णु भगवान और इंद्र ने दानवों को हराया था। उस रथ को इंद्र ने वसु को दिया था और वसु ने राजा बृहद्रथ को। उस दिव्य पताका-युक्त रथ पर श्रीकृष्ण-भीम-अर्जुन को बैठे देख सब नगर निवासियों, बन्दी राजाओं और जरासंध के पुत्र राजा सहदेव ने तीनों की विधिवत् पूजा की और नाना प्रकार के बहुमूल्य रत्न उन्हें भेंट में दिये। श्रीकृष्ण की आज्ञा से भीम तथा अर्जुन ने जरासंध के पुत्र सहदेव को मगध देश की गद्दी पर बैठालकर उसका अभिषेक किया। फिर सहदेव को अभयकर, क़ैद से छूटे हुए राजाओं के साथ, श्रीकृष्ण-भीम-अर्जुन उसी दिव्य रथ पर बैठकर इंद्र-प्रस्थ आये। सब को शत्रु का विनाशकर सकुशल लौटा देख युधिष्ठिर ने बड़ा आनन्द मनाया। बन्धन से छूटे हुए राजाओं ने युधिष्ठिर को भेंटें देकर उन्हें अपना सम्राट मान लिया। युधिष्ठिर ने सबका यथायोग्य

सम्मान कर उन्हें विदा किया।

सब राजा राजसूय-यज्ञ में आने की प्रतिज्ञा कर अपने-अपने देशों को चले गये। कुछ समय इन्द्रप्रस्थ में रहने के बाद श्रीकृष्णजी भी सबसे विदा होकर द्वारका चले गये। उस दिव्य रथ को युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी को भेंट में दे दिया। परमप्रतापी जरासंध को नष्टकर, वन्दी राजाओं को मुक्त करने के कारण, महाराज युधिष्ठिर का यश संसार में फैल गया।

दिग्विजय पर्व

अध्याय २५-३२

पाण्डवों की दिग्विजय

वैशम्पायनजी बोले—श्रेष्ठ गांडीव धनुष, अक्षय तरकस, दिव्य रथ और ध्वजा के प्राप्त होने से, अधिक साहसी होने के कारण, अर्जुन ने महाराज युधिष्ठिर से दिग्विजय की अनुमति माँगी। शुभ मुहूर्त में युधिष्ठिर से अनुमति लेकर अर्जुन उत्तर दिशा में, भीम पूर्व दिशा में, सहदेव दक्षिण दिशा में और नकुल पश्चिम दिशा में दिग्विजय करने के लिए गये।

चारों पाण्डव एक साथ ही दिग्विजय करने के लिए

चले थे। अर्जुन पुलिंद देश के राजा को जीतकर, कालकूट तथा आनर्त देशों को अपने अधीन कर, विजित राजा सुमण्डल के साथ शाकलद्वीप गये और वहाँ राजा प्रतिविंध को अपने वश में किया। फिर उन्होंने सप्तद्वीप के राजाओं को हराकर प्राग्ज्योतिषपुर पर चढ़ाई की। वहाँ के राजा भगदत्त ने किरात, चीन आदि जातियों की सेना लेकर अर्जुन का सामना किया। आठ दिन तक भीषण युद्ध चलता रहा। अन्त में इंद्र के मित्र राजा भगदत्त ने अर्जुन का पराक्रम देख उनसे संधि कर ली और राजसूय यज्ञ के लिए सम्राट युधिष्ठर को 'कर' देना स्वीकार कर लिया।

भगदत्त को जीत अर्जुन ने उत्तर दिशा में बढ़कर अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, उपगिरि, उलूक देश के राजा बृहदन्त, देवप्रस्थ के राजा सेनाबिन्दु, मोदापुर, वामदेव, सुदामा, सुसंकुल, पञ्चगण, पुरुवंशी राजा विष्वगश्व, उत्सवसंकेत नामक म्लेच्छ जातियाँ, काश्मीर के राजा लोहित, त्रिगर्त देश, दारु देश, कोकनद देश, राजा अभिसारी, राजा उरगावासी, राजा रोचमान, सिंहपुर के राजा, सुह्म देश, चोल देश, बाह्लीक देश, दरद देश, कम्बोज देश, लोह देश, परम-कम्बोज देश, ऋषीकदेश, उत्तर देश, हिमवान, निष्कुट आदि को जीतकर श्वेत पर्वत पर विश्राम के लिए पड़ाव डाला।

श्वेत पर्वत को पारकर अर्जुन ने किंपुरुष के राजा, हाटक तथा उसके आस-पास के प्रदेशों के शासक यक्षों को हराकर सब से 'कर' वसूल किया। वहाँ से मान-सरोवर होते हुए वे उत्तर-हरिवर्ष को गये। वहाँ दीर्घ-काय, महाबलवान द्वारपालों ने अर्जुन से कहा—तुम ने वह काम किया है जो दूसरे मनुष्य नहीं कर सकते। अब तुम लौट जाओ। इस देश में मनुष्य जीवित नहीं घुस सकता। तुम्हारे साहस से हम प्रसन्न हैं। यह कह उन्होंने राजसूय यज्ञ के लिए 'कर' दिया। इस प्रकार दिग्विजय कर नाना प्रकार के रत्न, मणि, आभूषण, वस्त्र, धन आदि उत्तर दिशा से प्राप्तकर अर्जुन इन्द्रप्रस्थ लौट आये।

वैशम्पायनजी बोले—अर्जुन के साथ ही दिग्विजय के लिए प्रस्थानकर भीम पूर्व दिशा की ओर गये। पांचाल देश, गण्डक, विदेह, दशार्ण देश के राजा सुधर्मा राजा रोचमान, पुलिंद देश के राजा सुकुमार और सुमित्र आदि को जीतकर वे चेदिराज शिशुपाल के राज्य में गये। शिशुपाल ने उनका अभिप्राय जान तथा चेदिवंश और कुरुवंश की रिश्तेदारी का ख़्यालकर आदर से उनका स्वागत किया और राजसूय यज्ञ के निमित्त कर दिया। भीम ने वहाँ तेरह दिन तक सुख से विश्राम किया।

चेदि से चलकर भीम ने कुमार देश के राजा

श्रेणिमान्, कोशल के राजा बृहद्बल, अयोध्या के राजा दीर्घ यज्ञ, गोपाल कच्च, मल्लदेश, उत्तर कोशल, जलोद्भव देश, भल्लाट देश, शुक्तिमान पर्वत प्रदेश, सुपार्श्व देश के राजा क्रथ, काशिराज सुबाहु, मत्स्य, मलद, अनद्य, अभय, मदधार, महीधर, सोमधेय को जीतकर अपने अधीन कर लिया। फिर उत्तर मुख को घूमकर वत्स भूमि, भर्गराज, निषाद पति, मणिमान आदि देशों के राजाओं को जीतकर उनसे कर वसूल किया। तदनन्तर दक्षिण मल्ल देश, भोगवान पर्वत प्रदेश, शर्मक, वर्मक, विदेहराज जनक, शक, वर्बर, इंद्रपर्वत के किरात राज, सुह्म, प्रसुह्म, मगध, गिरिव्रज, अंगराज कर्ण, मोदा-पर्वत राज, पुण्ड्र नरेश वासुदेव, कौशकी कच्छ, बंगदेशा-धिपति समुद्रसेन और ताम्रसेन, ताम्रलिप्त नरेश, कर्वट राज, सुह्माधिपति, लौहित्य देश तथा समुद्र तट प्रदेश को जीतकर भीम इंद्रप्रस्थ लौटे और उन्होंने असंख्य रत्न, मणि, धन, आभूषण आदि महाराज युधिष्ठिर को लाकर दिये।

सब के साथ सहदेव ने भी दक्षिण दिशा की ओर दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। सूरसेन, मत्स्य देश के राजा दन्तवक्र, सुकुमार, सुमित्र, चोरदेश, निषादभूमि, गोशृङ्ग पर्वत प्रदेश, राजा श्रेणिमान, नरराष्ट्र, राजा कुन्तिभोज, चर्मण्वती नदी के तटवर्ती राजा, सेक, अपरसेक, अव-

न्तिराज विन्द-अनुविन्द, भोजकट के राजा भीष्मक, कोशल-नरेश, वेणा नदी के तटवर्ती राजा, कान्तारक-गण, प्रक्रोटक, नाटकेय, हेरम्बक, मारुध, रम्यग्राम, वन-राज नाचीन, अर्बुक, राजा वाताधिप, पुलिन्द-गण, आदि को हराकर उनसे कर वसूल किया। फिर पाण्डवराज किष्किन्धा-गुहाधिप मैन्द-द्विविद से सात दिन तक सहदेव ने घोर युद्ध किया। अन्त में मैन्द-द्विविद ने यज्ञ में सहायक होने की इच्छा से सहदेव से मित्रता कर ली और उन्हें 'कर' दिया। वहाँ से आगे बढ़कर उन्होंने माहिष्मती के राजा नील से युद्ध किया। राजा नील के सहायक अग्निदेव थे। अग्निदेव के प्रकोप से सहदेव की सेना का क्षय होने लगा। सहदेव ने अग्निदेव को स्तुति-पूजा से प्रसन्न कर लिया। अग्निदेव ने सहदेव से राजा नील की मैत्री करा दी। राजा नील से मित्रतापूर्वक 'कर' लेकर सहदेव आगे बढ़े।

राजा नील बड़े धर्मात्मा थे। वे निरंतर यज्ञ-कार्य में लगे रहते थे। उनकी एक परम रूपवती कन्या सदा यज्ञशाला में रहती थी। उसके रूप पर अग्निदेव ऐसे रीझ गये कि उसके होंठों की फूँक के विना वे प्रज्वलित न होते थे। अन्त में अग्निदेव ब्राह्मण का रूप रखकर उस कन्या और नगर की अन्य सुन्दरी कन्याओं

से खुलकर विहार करने लगे। यह देख राजा नील ने उन्हें दण्ड देना चाहा। कुपित होकर अग्निदेव के राज्य को भस्म करने लगे। अन्त में राजा नील उनकी शरण में गया और उसने उन्हें अपनी कन्या दे दी। अग्निदेव ने प्रसन्न होकर सदा राजा नील की रक्षा करने का वचन दिया। अग्निदेव की कृपा से माहिष्मती की स्त्रियाँ स्वेच्छाविहारिणी होगईं। अब अग्निदेव के भय से कोई माहिष्मती की ओर आँख उठाकर भी न देख सकता था।

माहिष्मती से आगे बढ़कर सहदेव ने त्रिपुर राज्य, पौरवेश्वर, सुराष्ट्र-राज कौशिकाचार्य आकृति, भोजकट पुर के राजा रुक्मी, शूर्पारक, तालाकट, समुद्रतटवर्ती म्लेच्छगण, नर-मांस-भक्षी निषाद-गण, कर्ण-प्रावरण, काल-मुख आदि राक्षस-गण, कोलगिरि, सुरभीपट्टन, ताम्र-द्वीप, राम पर्वत, राजा तिमिलिंग, एक-पाद पुरुष-गण, केरल-गण, संजयंती नगरी, पाषण्ड देश, करहाटक देश पाण्ड्य, द्रविड़, उड्रकेरल, अंध्र, तालवन, कलिंग, उष्ट्र कर्णिक, रमणीय आटवी पुरी, यवन-नगरी तथा कच्छदेश को जीतकर 'कर' वसूल किया। लंका के राजा विभीषण ने भी प्रसन्नतापूर्वक 'कर' दिया। अन्त में दक्षिण-दिग्विजय से अपरिमित धन-रत्न लाकर सहदेव ने युधिष्ठिर को दिया।

श्रीकृष्णजी द्वारा जीते हुए पश्चिम प्रदेश की ओर

प्रस्थानकर नकुल ने रोहीतक प्रदेश के मत्त मयूरगण, मरुभूमि-प्रदेश, शैरीष, महेत्थ, राजा आक्रोश, दशार्ण, शिवि, त्रिगर्त, अम्बष्ठ, मालव, पञ्चकर्पट, मध्यमक, वाट-धान ब्राह्मणगण, पुष्करवत् के उत्सव-संकेत नामक म्लेच्छ-गण, समुद्रतटवासी ग्रामणीयगण, सरस्वती तटवर्ती शूद्र-आभीर-गण, पर्वतवासियों, पञ्चनद प्रदेश, अमरपर्वत प्रदेश, उत्तर ज्योतिषदेश, दिव्यकट, द्वारपाल-नगर, रामठ, हारहूण आदि को रण में हराकर सब से 'कर' वसूल किया। श्रीकृष्णजी के कहने से यादवों ने युधिष्ठिर को सम्राट मानकर 'कर' दे दिया। आगे बढ़कर नकुल ने अपने मामा मद्रदेशाधिपति शल्य की शाकल राजधानी में पहुँचकर उन्हें अपने अधीन कर लिया। फिर उन्होंने समुद्र के द्वीपों तथा पह्लव, बर्बर, किरात, यवन, तथा शक आदि म्लेच्छ जातियों को परास्त कर उनसे कर वसूल किया। अन्त में समस्त पश्चिम दिशा के देशों को जीत-कर नकुल दस हज़ार ऊँटों में असंख्य धन-रत्न लदाकर युधिष्ठिर के पास लाये।

राजसूय पर्व

अध्याय ३३-३५

रायसूय यज्ञ

वैशम्पायनजी बोले—युधिष्ठिर के राज्य में सभी सुखपूर्वक अपने धर्म-कर्म में रत रहते थे। अपने भाइयों द्वारा दिग्विजय से लाये हुए अपरिमित धन-रत्न-सामग्री को देखकर वे यज्ञ करने की सलाहें करने लगे। ठीक ऐसे ही शुभ समय में योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रजी असंख्य धन-रत्न-सामग्री लेकर वहाँ आये। युधिष्ठिर ने सब के साथ उनका स्वागत किया और विनम्र भाव से कहा—आप की दया से इस समय राजसूय यज्ञ की सब तैयारी है। अब आप यज्ञ की दीक्षा लेकर यज्ञ प्रारंभ कर दीजिये। आपके यज्ञ करने से हम सबको यज्ञ का फल प्राप्त हो जायगा।

उनके वचनों से संतुष्ट होकर श्रीकृष्णचन्द्रजी ने उन्हें यज्ञ की दीक्षा दिलाई। उस यज्ञ में महर्षि व्यासदेव ने ब्रह्मा का वरण किया। ब्रह्म-निष्ठ याज्ञवल्क्य ऋषि अध्वर्यु हुए। पैल और धौम्य ऋषि होता बने। अन्यान्य श्रेष्ठ ऋषियों ने यज्ञ के भिन्न-भिन्न कार्यों का भार ग्रहण किया। सब राजा, महाराजा, सूर-सामन्त, इष्ट-मित्र, बंधु-बांधव, विद्वान, गुणी, कुशल कलाकार आदि निमंत्रण

देकर आदर-पूर्वक बुलाये गये। उन सबके रहने के लिए यथायोग्य सब तरह के सुख के सामानों से सुसज्जित, दास-दासियों से भरे-पूरे सुन्दर, मनोरम, सब ऋतुओं में सुख देनेवाले स्थान दिये गये। सब के मनोरंजन के लिए स्थान-स्थान पर नृत्य-गीत तथा खेल-तमाशे होने लगे। आनन्द-मंगल के साथ बड़े समारोह से यज्ञ होने लगा।

युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर नकुल हस्तिनापुर गये और भीष्म, धृतराष्ट्र, विदुर, दुर्योधन, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, गांधारी आदि को लिवा लाये। अन्य सभी देशों और स्थानों से राजा, महाराजा आदि दल-बल-सहित यज्ञ में आये। महाराज युधिष्ठिर ने सबका यथोचित आदर-सत्कार किया और जो जिस योग्य था उसे उसी तरह के दिव्य स्थान में ठहराया।

सब का सत्कारकर महाराज युधिष्ठिर ने हरएक को उसके योग्य यज्ञ का काम सौंपा। दुःशासन के जिम्मे भोजन की वस्तुएँ देने काम दिया गया। राजाओं के सत्कार का काम संजय को और ब्राह्मणों की सेवा का कार्य अश्वत्थामा को दिया गया। सुवर्ण आदि देने का भार कृपाचार्य पर रहा। सबके कामों की देख-रेख का कार्य भीष्म-द्रोण को मिला। राजाओं से भेंट अथवा कर लेकर जमा करने का कार्य दुर्योधन को दिया गया। श्री

कृष्णजी ने सब ब्राह्मणों के पैर धोने का काम अपने जिम्मे रक्खा। भिन्न-भिन्न देश के राजाओं ने इतना धन लाकर युधिष्ठिर को दिया कि कुबेर का कोष भी फीका जान पड़ने लगा। यज्ञ के प्रत्येक कार्य में युधिष्ठिर ने इतना धन लुटाया कि माँगनेवाले अयाचक हो गये। जिसने जो माँगा, उसे उससे कई गुना ज़्यादा दिया गया।

अर्घ्याहरण पर्व

अध्याय ३६

सबसे पहले श्रीकृष्णजी की पूजा

वैशम्पायनजी बोले—विधिपूर्वक यज्ञ का प्रत्येक कार्य सम्पन्न किया गया। यज्ञ के अन्त में अभिषेक के दिन सत्कारयोग्य ब्राह्मण, महर्षि आदि अन्तर्वेदी नामक सभामण्डप में गये। शास्त्र के विभिन्न विषयों पर विद्वानों में वार्तालाप और वादविवाद चलने लगा। उसी सभा में नारदजी यह सोच रहे थे कि असुरों का नाश करने के लिए भगवान नारायण ने श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लिया है। उन्हीं के द्वारा असंख्य क्षत्रिय कुलों का संहार होगा।

सबके यथास्थान बैठ जाने पर भीष्मपितामह ने

धर्मराज युधिष्ठिर से कहा—'हे भरतकुलश्रेष्ठ ! आचार्य, ऋत्विक, स्नातक, सम्बन्धी, मित्र और राजा—ये छः पूजा के अधिकारी माने गये हैं । अब तुम इन सबकी यथा-योग्य पूजा करो । किन्तु सबसे पहले उसी की पूजा होगी जो सबसे श्रेष्ठ होगा ।'

अब यह विचार होने लगा कि सबसे पहले किस की पूजा की जाय । अन्त में यह निश्चित हुआ कि ज्ञान, बुद्धि, तेज, बल, पराक्रम आदि सभी बातों में श्रीकृष्णजी सबसे श्रेष्ठ हैं । भीष्म के कहने से सबसे पहले उन्हीं की पूजा की गई । चेदिराज शिशुपाल को यह सहन न हो सका । क्रोध से वह भीष्म, पाण्डव तथा श्रीकृष्णजी को भला-बुरा कहने लगा ।

अध्याय ३७, ३८

शिशुपाल का सबको बुरा भला कहना

तब क्रोध से बिगड़कर शिशुपाल ने कहा—इन सब बड़े-बड़े राजाओं और तपस्वी ऋषि-महर्षियों के सामने कृष्ण का सब से पहले पूजा जाना उचित नहीं हुआ । भीष्म को अभी तक सब धर्मज्ञ और धर्मात्मा समझते थे । सबसे पहले कृष्ण की पूजा कराकर उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा

कृष्ण राजा नहीं। फिर इतने प्रतापी राजाओं के बीच में वह सबसे पहले पूजा पाने का अधिकारी कैसे हो सकता है? यदि वृद्ध समझकर उसकी पूजा की गई है, तो वह अपने पिता वसुदेव के आगे कैसे वृद्ध माना जा सकता है? यदि शुभचिन्तक और अनुगत समझकर उसकी पूजा की गई है तो राजा द्रुपद से अधिक श्रेष्ठ वह कैसे माना जा सकता है? आचार्य के रूप में द्रोणाचार्य से, ऋत्विक के रूप में द्वैपायन व्यास से, ज्ञान और वय में पुरुष-श्रेष्ठ भीष्म से, गौरव में राजा भीष्मक से, शस्त्र-शास्त्र-पराक्रम में कृपाचार्य से कृष्ण किसी तरह भी अधिक नहीं माना जा सकता।

हे पाण्डव! कृष्ण न ऋत्विक है, न आचार्य है, न वृद्ध है, न राजा है, न किसी गुण में श्रेष्ठ ही है। फिर तुमने क्यों इन्हें सर्वश्रेष्ठ मानकर सब से पहले इनकी पूजा की? जान पड़ता है, मित्रता और रिश्तेदारी के कारण तुम लोगों ने इसे प्रसन्न करने के लिए सब से पहले इसकी पूजा की है।

यह काम बहुत अनुचित हुआ है। कृष्ण का सबसे पहले पूजित होना हम सबका सरासर अपमान है। हम लोगों ने डरकर, या और किसी दूसरे कारण, से युधिष्ठिर को 'कर' नहीं दिया था। हमने तो इन्हें धर्मात्मा और हितू मानकर यज्ञ के लिए इनका साथ दिया है। युधिष्ठिर

को हम लोग धर्मात्मा मानते थे। धर्म-भ्रष्ट कृष्ण को सब से पहले पूजकर इन्होंने सबका अपमान किया है। इनके अनुचित कर्म से यह प्रकट हो गया है कि यह धर्मात्मा नहीं हैं। इनकी मूर्खता संसार में प्रकट हो गई। फिर स्वयं कृष्ण को सबसे पहले पूजा ग्रहण करना उचित नहीं था। जो जिस योग्य नहीं होता, उसे उसका अधिकारी बनाना उसकी हँसी उड़ाना है। नंपुसक का व्याह करना, अंधे को रूप दिखाना और कृष्ण की सब के आगे पूजा करना एक-सा ही है। इसमें राजाओं का अपमान नहीं हुआ है। इस अनुचित कार्य से यह पता चल गया कि युधिष्ठिर कितने धर्मनिष्ठ हैं, भीष्म कितने ज्ञानवान हैं और कृष्ण कितना बुद्धिमान और योग्य है।

इस प्रकार बकता हुआ शिशुपाल अपने इष्ट-मित्रों के साथ सभा-मण्डप से उठकर चला गया।

शिशुपाल को इस प्रकार सभा से जाते देख युधिष्ठिर ने उसके पास जाकर उसे बड़े प्रेम और मीठे ढंग से समझाना और शान्त करना चाहा। यह देख भीष्मपितामह ने ऊँचे स्वर में कहा—श्रीकृष्णचन्द्रजी संसार भर में सर्वश्रेष्ठ हैं; सब के पूजा करने योग्य हैं। जो उनको सर्वप्रथम पूजनीय नहीं मानता उसके साथ इस तरह शिष्टता का वर्ताव न करना चाहिए। जो क्षत्रिय दूसरे

क्षत्रियों को युद्ध में जीतकर उन्हें छोड़ देता है वह उनका गुरु और पूज्य होता है। इस सभा में कौन-सा ऐसा राजा है जिसे श्रीकृष्ण ने जीतकर न छोड़ दिया हो! यश, शूरता, पराक्रम, ज्ञान, विज्ञान, बुद्धि तथा बल आदि सभी गुणों में श्रीकृष्णचन्द्रजी सबसे बढ़ कर हैं। सभी श्रेष्ठ और ज्ञानवान पुरुष इस बात को मानते हैं। इसी कारण हमने सब से पहले श्रीकृष्णजी की पूजा की है। ब्राह्मणों में वही पूजनीय होता है जो ज्ञान में बड़ा होता है। जो बल में बड़ा होता है वह क्षत्रियों में पूजनीय होता है। जो धन में बड़ा होता है वह वैश्यों में पूजनीय होता है। शूद्रों में अवस्था के कारण मनुष्य पूजनीय होता है। श्रीकृष्णजी वेदशास्त्रों के ज्ञान और बल पराक्रम में सब से बढ़कर हैं। वे सनातन पुरुष हैं। यह सब चराचर जगत उन्हीं का रूप है। जैसे मनुष्यों में राजा, जलाशयों में समुद्र, नक्षत्रों में चन्द्रमा, तेजस्वी पदार्थों में सूर्य, पक्षियों में गरुड़ सबसे श्रेष्ठ माने जाते हैं, उसी तरह संसार भर में श्रीकृष्ण ही सब से श्रेष्ठ हैं। शिशुपाल मूर्ख है। श्रीकृष्ण के महत्त्व को न जानने के कारण वह हमेशा सभी स्थानों में उनकी निन्दा किया करता है। यदि शिशुपाल इस पूजा को अनुचित समझता है तो वह जो करना चाहता हो, करे।'

अध्याय ३९-४४

शिशुपाल का युद्ध के लिए प्रयत्न, भीष्म का समाधान

वैशम्पायनजी बोले—भीष्मपितामह इतना कहकर चुप हो गये। इसके बाद सहदेव ने ऊँचे स्वर में कहा—'अनेकानेक दैत्यों का विनाश करनेवाले श्रीकृष्णजी की पूजा का जो विरोध करता हो उसके सर पर मैं अपना यह पैर रखता हूँ।' यह कहकर उन्होंने अपना पैर पृथ्वी पर पटक दिया। बहुत-से राजा सहदेव की बात का समर्थन करने लगे। उसी समय नारदजी ने कहा कि ज्ञानियों में श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रजी की पूजा में जो विघ्न डालते हैं वे मृतक के समान हैं। यह सुन शिशुपाल युद्ध के लिए राजाओं को उभाड़ने लगा। बहुत से राजा अस्त्र-शस्त्र सँभाल, शिशुपाल को सेनापति बनाकर पाण्डवों और यादवों को मारने के लिए तैयार हो गये।

शिशुपाल और राजाओं को इस प्रकार पाण्डवों और यादवों को मारने के लिए आते देख युधिष्ठिर घबरा गये। तब भीष्मपितामह ने उन्हें समझाकर कहा कि तुम सोच मत करो। शिशुपाल और ये राजा अपनी सेनाओं के सहित कुछ भी विघ्न नहीं डाल सकते। श्रीकृष्णचन्द्रजी के सामने इनकी एक नहीं चल सकती।

यह सुन क्रोधपूर्वक शिशुपाल ने चिल्लाकर कहा—हे भीष्म, तुम अपने कुल के कलंक हो। तुमने जन्म भर नपुंसक का-सा जीवन बिताया है। यह तुम्हारा ब्रह्मचर्य केवल ढोंग है। कृष्ण की पूजा कराने से ही प्रकट हो गया है कि न तो तुममें ज्ञान है और न धर्म की भावना ही। तुम उसी तरह धर्म का ढोंग रचे हुए हो, जैसा कि एक हंस रचे हुए था, जो दूसरों को धर्म का उपदेश देकर, विश्वास दिलाकर और महात्मा बनकर सब चिड़ियों के अंडे चुपचाप खा जाया करता था। जब चिड़ियों को उस पापी, ढोंगी का कुकर्म मालूम हो गया, तो सब ने मिलकर उसे मार डाला। तुम भी उसी तरह ढोंगी हो। तुम्हारे सामने ही तुम्हारे भाई की विधवा स्त्रियों ने, दूसरे के संयोग से, पुत्र उत्पन्न किये। यदि तुम्हें धर्म का ज्ञान होता, तो इस अधर्मी कृष्ण को तुम सबसे पहले न पुजवाते। लड़कपन में कृष्ण ने एक पक्षी (बकासुर), घोड़े (केशी), बैल (वत्सासुर) को मारा और लकड़ी के छकड़े को गिरा दिया, तो क्या वीरता की! जिसने अपने मामा और आश्रयदाता कंस को धोखे से मारा, स्त्री (पूतना) और गाय की हत्या की, उसी कुकर्मी कृष्ण की तुम इतनी स्तुति करते हो! यही तुम्हारा ज्ञान है!! भूलिंग पक्षी सदा मुँह से तो यही कहता है कि 'साहस मत

करो' किन्तु ख़ुद सिंह की दाढ़ों में लगे हुए मांस को निकालकर खाता है। उसी तरह ढोंगी मनुष्य अहिंसा का ढोंग रचकर हिंसा करता रहता है। तुम्हारी नीच प्रकृति के कारण ही पाण्डव भी नीच हो गये हैं।

हे भीष्म! जिस दुष्ट कृष्ण ने धोखा देकर धर्मात्मा राजा जरासंध को मरवा डाला, उसी को तुम परमात्मा मानते हो! तुम्हारे ऐसा नपुंसक जिनका अगुआ होगा वे पांडव अधर्म को धर्म मानेंगे ही।

इस प्रकार शिशुपाल के अनेक कटु वचन सुनकर भीम आपे से बाहर हो गये और उसे मारने दौड़े। पर भीष्म ने उन्हें पकड़कर रोक लिया और बहुत कुछ समझा-बुझाकर शान्त करने की चेष्टा की। पर शिशुपाल उन्हें बराबर बुरा-भला कहता और ललकारता गया।

तब भीष्म ने कहा—जन्मते ही यह शिशुपाल गधे का-सा शब्द करके रोया था। जन्म के समय इसके तीन आँखें और चार हाथ थे। इस कारण इसके माता-पिता बहुत भयभीत और चिन्तित हुए थे। वे इसे त्याग देना चाहते थे। इसी समय आकाश-वाणी हुई कि 'डरो मत। चिन्ता न करो। यह बालक बड़ा प्रतापी होगा। जिसके मिलने से इसकी एक आँख और दो हाथ विलीन हो जायँ, उसी के हाथ से इसकी मृत्यु होगी।' यह विचित्र बात सुनकर

बहुत से राजा आदि इसे देखने के लिए आने लगे। इसके माता-पिता इसे उनकी गोद में दे देते थे। अन्त में श्रीकृष्णचन्द्र जी भी वहाँ गये। उनकी गोद में जाते ही इसकी एक आँख और दो हाथ विलीन हो गये। तब इसकी माता ने गिड़गिड़ाकर श्रीकृष्ण जी से वरदान माँगा कि तुम इस बालक के अपराध क्षमा कर देना। श्रीकृष्ण ने अपनी बुआ (शिशुपाल की माता) को वचन दिया कि मैं इसके सौ अपराध क्षमा कर दूँगा। हे भीम! कृष्ण जी के उसी वरके बल पर यह सब अनर्थ कर रहा है। इसमें विष्णु का कुछ भी अंश है। उसी के बल पर यह सब को ललकार रहा है। उसी अंश को अब श्रीकृष्णजी इसमें से निकाल लेना चाहते हैं। भीष्म के वचन सुनकर शिशुपाल और अधिक बुरा-भला कहने और गालियाँ बकने लगा। तब भीष्म ने कहा कि जिससे जो करते बने, वह कर ले, मैं दुष्ट राजाओं में से किसी को भी तिनके के बराबर नहीं समझता। यह सुनकर शिशुपाल के साथी राजा भीष्म को बुरा-भला कहते हुए उन्हें मारने के लिए तैयार हो उठे। पर उनकी बातों को सुनकर भीष्म ने कहा कि जिसमें शक्ति हो, वह श्रीकृष्णजी से लड़कर अपनी इच्छा पूरी कर ले।

अध्याय ४५

शिशुपाल-वध

वैशम्पायनजी बोले—शिशुपाल श्रीकृष्णजी को नाना प्रकार के कटु वचन कहने, पाण्डव, भीष्म और उन्हें मारने की धमकी देने और बार-बार युद्ध करने के लिए ललकारने लगा। अन्त में श्रीकृष्णजी ने उसके कटु वाक्यों से ऊबकर मधुर स्वर में कहा—'हे राजागण! यह दुष्ट शिशुपाल सदा से हम लोगों की बुराई करता चला आ रहा है। जब मैं प्राग्ज्योतिषपुर गया था तब इसने द्वारका को जलाने की चेष्टा की थी। मेरे पिता के अश्वमेध यज्ञ में इसी ने विघ्न डाला था। तपस्वी बभ्रु की स्त्री का सतीत्व इसी ने धोखे से नष्ट किया था। मेरे मामा विशालापुरी के राजा की कन्या भद्रा को यही धोखे से उड़ा ले गया था। इसी तरह यह बराबर हम लोगों की बुराई करता चला आ रहा है। और मैं बुआ को वचन देने के कारण बराबर इसके अपराधों को क्षमा करता चला आ रहा हूँ। पर अब इसके सौ अपराध पूरे हो चुके। अब मैं इसे क्षमा नहीं करूँगा। शिशुपाल इस पर उनकी हँसी उड़ाने और उनको युद्ध के लिए ललकारने लगा। शिशुपाल को शस्त्र उठाते देख श्रीकृष्णजी ने

अपने सुदर्शन चक्र से उसका सर काट डाला। शिशुपाल के शरीर से एक विचित्र तेज निकलकर श्रीकृष्णजी के शरीर में समा गया। यह देख सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। सभा मण्डप में बड़ा कोलाहल मच गया किन्तु पाण्डवों ने सब को शान्त किया। शिशुपाल के शरीर का अन्तिम संस्कार किया गया। सबके सामने शिशुपाल के पुत्र को चेदि देश के सिंहासन पर बैठाया गया। फिर राजसूय यज्ञ का बचा हुआ कार्य समाप्त किया गया। श्रीकृष्णजी अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर अन्त तक यज्ञ की रक्षा करते रहे। यज्ञ के समाप्त होने पर कुछ समय बाद सब राजा लोग विदा होकर अपने-अपने स्थान को चले गये। सबसे मिलकर श्रीकृष्णजी भी द्वारका को पधारे। केवल दुर्योधन और शकुनि पाण्डवों के साथ रह गये।

द्यूत पर्व

अध्याय ४६

व्यास देव का उपदेश

वैशम्पायनजी बोले—एक दिन व्यासदेव अपने शिष्यों के साथ पाण्डवों के पास आये। पाण्डवों ने

उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। सब के बैठ जाने पर उनके चरण पकड़कर युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्! देवर्षि नारद ने मुझसे कहा था कि राजसूय यज्ञ करने पर तीन प्रकार के उत्पात दिखाई देंगे। शिशुपाल के मरने से क्या उनका कुफल शान्त हो गया?

व्यासदेवजी ने समझाते हुए कहा—तुम सोच मत करो। भावी को कोई टाल नहीं सकता। तेरह वर्ष बाद इन उत्पातों का घोर फल होगा। उस समय तुम्हारे कारण क्षत्रियों का नाश हो जायगा। किन्तु चिंता करना व्यर्थ है। काल की गति कोई टाल नहीं सकता। तुम निश्चिन्त होकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करो।'

यह कहकर व्यासदेव कैलाशपर्वत को चले गये। उनकी बातों को सुनकर युधिष्ठिर को बड़ी चिन्ता हुई। वे अपने प्राणों को दे देने का विचार करने लगे। किन्तु भाइयों के समझाने पर उन्होंने मरने का विचार तो छोड़ दिया, किन्तु प्रतिज्ञा की कि मैं न तो किसी को कठोर वचन कहूँगा और न किसी से भेद-भाव रक्खूँगा। यही दो बातें लड़ाई-झगड़े का कारण होती हैं। मैं अब सब को एक समान मानूँगा।

अध्याय ४७-४९

दुर्योधन का अपमान, शत्रुता का जड़ पकड़ना

वैशम्पायनजी बोले—सबके विदा होने पर शकुनि के साथ दुर्योधन पाण्डवों के साथ रहने लगा। मयदानव की बनाई हुई अद्भुत सभा की विचित्र कारीगरी और पाण्डवों के अपूर्व वैभव, असंख्य धन-संपत्ति को देखकर दुर्योधन बहुत दुखी हुआ।

उस विचित्र सभा में दुर्योधन को जल की जगह स्थल का, स्थल की जगह जल का, धोखा हुआ और अनेक बार इसी धोखे के कारण उसे गिरना और जल में भीगना पड़ा। इसके साथ ही भीमसेन और नौकरों के हँसने से उसका अपमान भी हुआ। एक स्थान पर स्फटिक की ऐसी दीवाल बनी हुई थी कि उस जगह खुले हुए द्वार का धोखा हो जाता था। उसे खुला हुआ दरवाज़ा जानकर दुर्योधन आगे बढ़ा और दीवाल से टकराकर गिर पड़ा। एक स्थान पर दरवाज़ा खुला हुआ था, किन्तु दुर्योधन ने धोखे से बन्द समझकर उसे ज़ोर से धक्का दिया। पर धोका खाने के कारण वह फिर गिर पड़ा। इस प्रकार अनेक बार उसे चोटें लगी और सब के सामने उसे लज्जित होना पड़ा। अन्त में वह दुखी और लज्जित होकर हस्तिनापुर के लिए चल पड़ा। रास्ते

में पाण्डवों के अपार ऐश्वर्य, सौभाग्य, अभ्युदय और सब राजाओं के ऊपर प्रभुत्व की बातें सोच-सोचकर दुर्योधन बहुत व्याकुल और दुखी हुआ। शकुनि के बार-बार पूछने पर उसने अपने मन की बात बतलाई और कहा—मैं अपने शत्रु पाण्डवों की इस बढ़ती को देख नहीं सकता। अब मेरा मरना ही उचित है। आप मेरे पिता धृतराष्ट्र से जाकर कह दीजियेगा कि आपके पुत्र ने अपमान और शत्रुओं की उन्नति को न सह सकने के कारण अपने प्राण छोड़ दिये हैं।

दुर्योधन के इस प्रकार निराशापूर्ण वचन सुनकर शकुनि ने उसे दिलासा देते हुए कहा—इस प्रकार तुम्हें निराश होना शोभा नहीं देता। तुम्हारे छोटे भाई महापराक्रमी हैं, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, तथा कर्ण आदि सभी एक-से-एक वीर तुम्हारे वश में हैं। इन सब की सहायता से तुम भी सारी पृथ्वी को जीतकर उसी तरह उसे अपने वश में कर सकते हो, जिस तरह पाण्डवों ने की है। पाण्डव लोग आपस में मेल के कारण और अपने भाग्य के बल पर, सुख और ऐश्वर्य भोग रहे हैं। तुम भी इसी तरह ऐश्वर्य प्राप्तकर सुख भोग सकते हो।

दुर्योधन ने उत्साहित होकर कहा—मामा, यदि आप लोग सहायता करें तो मैं अपने परम शत्रु पाण्डवों को जीतकर सारी पृथ्वी का राज्य प्राप्त करूँ।

शकुनि ने कहा—भीम, अर्जुन, श्रीकृष्ण, द्रुपद आदि अजेय वीरों के कारण तुम सामने की लड़ाई में पाण्डवों को जीत नहीं सकते। तुम्हारे मनोरथ के पूरा होने का एक ही उपाय है। युधिष्ठिर को पाँसे खेलने का बड़ा शौक़ है। किन्तु वे उस खेल में दक्ष नहीं हैं। इधर मैं पाँसों में पूर्णरूप से दक्ष हूँ। मैं तुम्हारी ओर से खेलकर युधिष्ठिर से राज्य आदि सब जीत सकता हूँ। तुम चाहो तो इस उपाय से आसानी से सब कुछ प्राप्त कर सकते हो।

दुर्योधन की सलाह से शकुनि ने धृतराष्ट्र से सारी बातें विस्तारपूर्वक कह सुनाईं। पुत्र के प्रेम से कातर होकर धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को अपने पास बुलाया और उसे बहुत कुछ समझाया। पर दुर्योधन ने सन्तापसूचक स्वर में कहा—अभी तक मैं सुखभोग में बेसुध था। राजसूय यज्ञ में युधिष्ठर का सौभाग्य और उनके वैभव-ऐश्वर्य को देखकर मुझे अपनी हीनता का पता चला और मेरा सन्तोष, सुख-शान्ति सभी नष्ट हो गये। जो मनुष्य यह सोचकर कि मेरे पास सभी कुछ है, सन्तोष करके बैठ जाता है उसे पग-पग पर दूसरों के सामने लज्जित और अपमानित होना पड़ता है। पाण्डवों के सामने मेरी भी यही दशा हो रही है। उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते सदा मेरी आँखों के सामने पांडवों की अतुल सम्पत्ति नाचा

करती है। युधिष्ठिर अट्ठासी हज़ार गृहस्थाश्रमी स्नातक ब्राह्मणों का पालन करते हैं। हर एक की सेवा के लिए तीस-तीस सुन्दरी दासियाँ रक्खी गई हैं। इसके अलावा दस हज़ार सात्विक ब्राह्मण प्रति-दिन उनके यहाँ सोने के थालों में छप्पन प्रकार का भोजन करते हैं। यज्ञ के अवसर पर देश-देश के राजाओं ने धन, रत्न, वस्त्र, आभूषण, हाथी, घोड़ा, रथ तथा दिव्य पदार्थ आदि देकर युधिष्ठिर को मालामाल कर दिया है। उस अपार धन-सम्पत्ति-ऐश्वर्य को देखकर मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है।'

धृतराष्ट्र ने उसे बहुत समझाया, पर वह न माना। अन्त में शकुनि की सलाह से धृतराष्ट्र ने उसे पाँसे खेलने की आज्ञा दे दी। हज़ार खम्भों और दरवाज़ोंवाला एक बहुत बड़ा और सुन्दर सभा-मंडप बनवाया गया। जब विदुर को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने पाँसे के खेल को रोक देने के लिए धृतराष्ट्र को बहुत समझाया। किंतु धृतराष्ट्र ने दुर्योधन के मोह में पड़कर विदुर की उत्तम सलाह को भी सुनी-अनसुनी कर दिया।

अध्याय ५०-५५

धृतराष्ट्र का विदुर की सलाह से दुर्योधनको समझाना

वैशम्पायनजी बोले—विदुर के नीतियुक्त और

आपस में मेल बनाये रखनेवाले उपदेश को सुनकर धृत-राष्ट्र का मन बदल गया। उन्होंने अकेले में दुर्योधन को बुलाकर द्यूत-क्रीड़ा की बात को छोड़ देने के लिए बहुत कुछ समझाया। उन्होंने कहा—जुएँ से मित्रों, बंधु-बान्धवों में फूट पड़ जाती है और फूट पैदा होने पर राज्य और ऐश्वर्य नष्ट हो जाते हैं। इस कारण उन्नति और सुख-शान्ति चाहनेवाले को जुएँ से सदा बचा रहना चाहिए।' किन्तु बहुत कुछ समझाने पर भी दुर्योधन न माना। वह यही कहता रहा कि पाण्डवों की सम्पत्ति तथा प्रभुता के कारण उसे चैन नहीं पड़ रही है।

दुर्योधन फिर बोला—पिताजी! पृथ्वी भर के राजाओं ने ऐसे-ऐसे विचित्र और बहुमूल्य पदार्थ लाकर पाण्डवों को भेंट में दिये कि मैं उन सब का पूरी तरह वर्णन भी नहीं कर सकता। इतने अधिक राजा भेंट लेकर आये थे कि उनको, भीड़ के मारे, दरवाज़े से दूर, बहुत समय तक बाहर ही खड़ा रहना पड़ा। वायु की तरह तेज़ चलने-वाले असंख्य घोड़े, रत्नजटित नाना प्रकार की सुन्दर सवारियाँ, आसन, पलँग, वस्त्राभूषण, कवच, ऊनी और रेशमी वस्त्र आदि इतनी प्रकार की वस्तुएँ और सोने-चाँदी-रत्नों के ढेर, सुन्दरी स्त्रियाँ, अस्त्र-शस्त्र आदि पाण्डवों को भेंट में मिले कि इन्द्र-वरुण-कुबेर की सम्पत्ति भी उनके

सामने तुच्छ जान पड़ती है। जान पड़ता था कि सारे संसार का वैभव खिंचकर युधिष्ठिर के पैरों पर लोट रहा हो। देश-देशान्तरों के राजाओं ने 'कर' देकर और सर झुकाकर युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार कर ली। इतना धन-रत्न, वैभव-ऐश्वर्य और अधिकार प्राप्तकर पाण्डवों ने ऐसा यज्ञ किया, जैसा शायद ही किसी ने किया हो। उन्होंने दान-मान से छोटे-बड़ों को, राजा-महाराजाओं और ऋषि-मुनियों तक को अपने वश में कर लिया है। पाण्डव, कृष्ण आदि मुझे देखकर हँसते रहते थे। इन सब बातों से मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं।

दुर्योधन की बातें सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा—तुम मेरे सब से बड़े पुत्र और युवराज हो! तुम्हारा धन-ऐश्वर्य और तुम्हारे सहायक युधिष्ठिर से कम नहीं हैं। यदि तुम चाहो तो उसी तरह यज्ञ करते हुए अपने धन-ऐश्वर्य और मान को बढ़ा सकते हो। धर्मात्मा युधिष्ठिर के मन में तनिक भी कपट, ईर्ष्या और द्वेष नहीं है। वे और उनके सभी सहायक तुम्हारे साथ हैं। तुम उनके धन-ऐश्वर्य को हरने की चेष्टाकर उनसे वैर मत बढ़ाओ। मित्रों से द्रोह करना अनर्थ की जड़ है।

दूसरे के धन को लेने की इच्छा न कर अपने कामों में तत्परता दिखाना ही ऐश्वर्यशाली पुरुष का लक्षण है।

विपत्ति के समय धैर्य धारण करने और सावधानी के साथ उद्योग करने से ही मान-ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। यदि चाहो तो तुम भी उसी तरह के यज्ञ को करके अपने चित्त को शान्त कर सकते हो।

उत्तम वस्तुओं और स्त्री आदि के उपभोग में लगकर अपने बुरे विचारों को दूर कर दो, इसी में तुम्हारा कल्याण है।

दुर्योधन बोला—जिस तरह चम्मच विविध पदार्थों के स्वाद को नहीं जान सकता, उसी तरह जिस मनुष्य में समझ नहीं होती, वह बहुत सुनने या पढ़ने पर भी शास्त्र के यथार्थ अर्थ को नहीं जान सकता। उचित या अनुचित किसी भी उपाय के द्वारा अपने उद्देश्य की पूर्ति करना उचित और आवश्यक माना गया है। जो अपने शत्रु पर विजय पाना चाहे, उसे सभी उचित-अनुचित उपायों से काम लेना चाहिए। बलपूर्वक शत्रु पर हमला करके या कपट से शत्रु को नष्ट करना ही श्रेष्ठ धर्म माना गया है। इन्द्र ने द्रोह न करने की प्रतिज्ञा करके भी नमुचि दानव का सर धोखा देकर काट डाला था। अपने शत्रु को नष्ट न करनेवाला राजा औरदेश-देशान्तर में भ्रमण न करनेवाला ब्राह्मण, ये दोनों इस पृथ्वी पर नष्ट हो जाते हैं। जो अपने शत्रु की परवा

न कर उसे बढ़ने देता है वह अन्त में नष्ट हो जाता है। पराक्रम और उद्योग ही उन्नति के मूल कारण हैं। मैं पाण्डवों के ऐश्वर्य को देखकर जला जा रहा हूँ। आप मुझे इस समय न रोकें। या तो मैं उनके अधिकार-ऐश्वर्य को उनसे छीन लूँगा अथवा उनसे लड़कर युद्ध में प्राण दे दूँगा।

अध्याय ५६—६३

द्यूत का निश्चय, विदुर का युधिष्ठिर के पास भेजा जाना

वैशम्पायन जी बोले—धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को बहुत समझाया और पाण्डवों से वैर न करने की सलाह दी। किन्तु दुर्योधन न माना। अन्त में हारकर धृतराष्ट्र ने द्यूत-क्रीड़ा की आज्ञा दे दी और विदुर को पाण्डवों के पास उन्हें बुलाने के लिए, भेजा।

धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुर पाण्डवों के पास गये। पाण्डवों ने विधि-पूर्वक उनकी पूजा की और सब के कुशल-समाचार पूछे। अन्त में विदुर ने युधिष्ठिर को धृतराष्ट्र और दुर्योधन की ओर से द्यूत-क्रीड़ा के लिए निमंत्रण दिया। पहले तो युधिष्ठिर ने जुएँ को सब अनर्थों और युद्ध की जड़ बतलाकर

उसमें शामिल होने से इनकार किया। किन्तु युद्ध और द्यूत के निमंत्रण को अस्वीकार करना अनुचित समझ वे अपने भाइयों और रानियों के साथ हस्तिनापुर चले आये। धृतराष्ट्र दुर्योधन, शकुनि आदि ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया।

कुछ समय बाद सुख से बैठे हुए युधिष्ठिर के पास जाकर शकुनि ने उन्हें पाँसे खेलने के लिए बुलाया। युधिष्ठिर ने जुएँ को निन्दित कर्म और अनर्थों की जड़ बतलाया और उससे दूर रहने की सलाह दी। किन्तु शकुनि ने जुएँ को आवश्यक और बुद्धि बढ़ानेवाला कार्य बतलाकर युधिष्ठिर को खेलने के लिए उत्साहित किया। युधिष्ठिर ने जुएँ को छल, कपट, धूर्तता, क्रूरता, द्वेष, तथा लड़ाई आदि सभी अनर्थों की जड़ बतलाकर उससे दूर ही रहना चाहा। शकुनि ने कहा—विद्वान लोग मूर्खों को, बलवान लोग दुर्बलों को, ज्ञानी लोग अज्ञानियों को कपट और चालाकी से जीतते हैं। यदि आप द्यूत के निमंत्रण को स्वीकार नहीं कर सकते तो आप उसे साफ़-साफ़ क्यों नहीं बतलाते? युधिष्ठिर ने तनिक उत्तेजित होकर कहा—मेरी प्रतिज्ञा है कि यदि मुझे कोई किसी काम के लिए ललकारेगा तो मैं अवश्य ही उसका सामना करूँगा। यह कह वे द्यूत के लिए तैयार हो गये।

दुर्योधन ने अपनी ओर से अपने मामा शकुनि को युधिष्ठिर के साथ पाँसे खेलने के लिए बैठाया। पहले तो युधिष्ठिर शकुनि के साथ खेलने के लिए तैयार न हुए, किन्तु अन्त में दुर्योधन के आग्रह करने पर वे खेलने के लिए राज़ी हो गये। महाराज धृतराष्ट्र, भीष्म-पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विदुर और नाना देशों के राजा यथास्थान बैठ गये। युधिष्ठिर ने उत्तम मणियों का एक हार दाँव पर लगाया। दुर्योधन ने उसके बदले में मणि और रत्नों का ढेर लगा दिया। शकुनि ने पाँसे फेंके और उस दाँव को जीत लिया। इसी प्रकार अनेक बार युधिष्ठिर ने मणि, रत्न, आभूषण, रथ, एक लाख सुन्दरी दासियाँ, एक लाख सुन्दर दास, हज़ारों हाथी, लाखों घोड़े, चतुरंगिणी सेना, मोहरों से भरी हुई ताँबे और लोहे की सैकड़ों सन्दूकें आदि बारी-बारी से दाँव पर रक्खीं और शकुनि ने कपट के द्वारा पाँसे फेंककर उन्हें जीत लिया।

इस तरह जुएँ के खेल को बढ़ता हुआ देख वंश-नाश की आशंका से भयभीत विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा—मैं जानता हूँ कि जिसके सर पर मृत्यु मँडराने लगती है उसे औषधि अच्छी नहीं लगती। मेरी बात आपको नहीं रुचेगी। किन्तु अपना कर्त्तव्य समझकर आप से कुछ आवश्यक

नीति की बातें कहूँगा।

आप जानते हैं कि दुर्योधन के कारण ही कुल का नाश होगा, तो भी आप मोह में पड़कर इसका त्याग नहीं करते। जुएँ और कपट के द्वारा इस समय दुर्योधन पाण्डवों के हाथों से सारा धन-ऐश्वर्य-प्रभुत्व छुड़ाना चाहता है। किन्तु महाबली पाण्डवों से वैर करने के कारण कुल के नाश की जो सम्भावना है, उसकी ओर उसका तनिक भी ध्यान नहीं है। सगर ने प्रजा के कल्याण के लिए अपने पुत्र को त्याग दिया था। यादवों ने जाति के कल्याण के लिए प्रतापी कंस का वध करवाया था। आप भी कुरुवंश की रक्षा और शान्ति के लिए दुर्योधन का दमन कीजिये। नीति का सिद्धान्त है कि कुल की भलाई के लिए एक पुरुष को, गाँव भर की भलाई के लिए एक कुल को, जनपद की भलाई के लिए एक गाँव को और अपनी भलाई के लिए पृथ्वी भर को त्याग देना चाहिए।

'एक वन में ऐसे पक्षी रहते थे, जो सोना उगलते थे। एक मूर्ख राजा ने यह समझकर कि इन पक्षियों के पेट में सोना भरा हुआ है, उन सब को मरवा डाला। पर उन पक्षियों के पेट में से उसे एक रत्तीभर भी सोना न मिला। इसी से शिक्षा ले, तरह आप दुष्ट दुर्योधन की सलाह से धन के लालच में पड़कर पाण्डवों से वैर न

कीजिये। जैसे वृक्ष-लता-पौधे आदि सींचने से बढ़ते और अधिकाधिक फल-फूल देते हैं उसी तरह प्रेम के जल से सींचकर पाण्डवों से आप लाभ उठाइये।

यदि पाण्डव आप के बुरे बर्ताव से बिगड़ गये, तो आपके कुल की रक्षा इन्द्रादि देवगण भी नहीं कर सकते। जुएँ का खेल सब अनिष्टों और झगड़ों की जड़ है। दुर्योधन धन के लालच में पड़कर ऐसे वैर का बीज बो रहा है जिससे कुल भर के नाश की आशंका है। बिना जुएँ में कुछ जीते हुए भी कौरवों के पास अपार सम्पत्ति है। पाण्डवों को कपट से जीत लेने पर उनका कोई विशेष लाभ न होगा। पाण्डवों को ही असूल्य धन समझ कर प्रेम से अपनाइये। इसीमें आपकी और सारे कुल की भलाई है। आप इस धूर्त शकुनि को यहाँ से विदा कर दीजिये, इसीमें आपका कल्याण है।'

अध्याय ६४

विदुर का अपमान और त्याग

विदुर के ऐसे नीतियुक्त वचनों को सुन, दुर्योधन आग-बबूला हो उठा। वह सबके सामने उन्हें झिड़क कर कहने लगा—'हे विदुर! तुमसे बढ़कर कृतघ्न और पापी दूसरा

कोई नहीं है। हम तुम्हारा पालन-पोषण करते हैं, किन्तु तुम हमीं से कपट का व्यवहार करते और सदा हमारे शत्रुओं से मिले रहते हो। नीति का वचन है कि जो मनुष्य शत्रु से मिला रहता हो, उसे अपने यहाँ कभी न रहने देना चाहिए। तुम उस कुलटा स्त्री की तरह हो जो प्रेम और आश्रय पाकर भी अपने स्वामी को छोड़े बिना नहीं रहती। तुम हमारे शत्रुओं से मिले हुए हो, इस कारण तुम हमारे यहाँ से चले जाओ।'

दुर्योधन के इन कठोर वचनों को सुनकर विदुर ने कहा—जो लोग सुनने में कठोर किन्तु अन्त में हित करनेवाली बात को सुनकर कुपित हो जाते और अपने हित चाहने वालों को छोड़ देते हैं उनकी मित्रता और सम्पत्ति अधिक दिन तक नहीं ठहरती। जैसे किसी कुमारी को वृद्धपति अच्छा नहीं लगता, इसी तरह जिसका विनाश होनेवाला होता है उसे हित के वचन अच्छे नहीं लगते। संसार में ऐसे बहुत से मनुष्य मिलते हैं जो ऐसे वचन बोलते हैं जो सुनने में तो प्यारे लगते हैं किन्तु जिनका परिणाम बुरा होता है; परन्तु अप्रिय होने पर भी भलाई की बात कहने और सुननेवाले लोग बहुत ही कम पाये जाते हैं। संसार में वही सच्चा मित्र और सहायक है, जो धर्म पर ध्यान रखकर स्वामी के प्रिय और अप्रिय की परवा किये बिना

ही अप्रिय होने पर भी भलाई की बात ही कहता है। जो सज्जन होते हैं वे ही क्रोध को पीकर शान्त रहते हैं, दुर्जन लोग नहीं। मैं सदा यही चाहता हूँ कि महाराज धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों का यश, धन, ऐश्वर्य, प्रभुत्व बढ़े। मेरी यही प्रार्थना है कि तुम सब लोग वही करो जिसमें तुम्हारा कल्याण हो। अन्त में मैं तुमसे यही कहूँगा कि तुम पाण्डवों से वैर मत करो।

अध्याय ६५–६७

युधिष्ठिर का अपने भाइयों और द्रौपदी को हारना

वैशम्पायनजी बोले—शकुनि के बार-बार बढ़ावा देने पर युधिष्ठिर अपने ख़ज़ाने की असंख्य सम्पत्ति, गाय-बैल, घोड़ा-हाथी आदि पशु, गाँव, नगर, राज्य, अपने अधीन राजा-महाराजा आदि को और अपने दोनों भाई नकुल और सहदेव को क्रम-क्रम से दाँव पर लगा कर हार गये। तब शकुनि ने हँसकर उनसे कहा—'महाराज! आप अपने सौतेले भाइयों को तो हार गये, किन्तु शायद अधिक प्यारे होने के कारण अपने सगे भाई भीम और अर्जुन को दाँव पर न लगा सकेंगे।' शकुनि की इस भेद डालने वाली बात से युधिष्ठिर तिलमिला उठे। उन्होंने अर्जुन को, फिर

भीम को और इसके बाद अपने को दाँव पर लगाया और तीनों बार वे हार गये। फिर शकुनि ने उन्हें ताव दिलाया। युधिष्ठिर ने तमककर कहा—अब मैं अपनी बची हुई सम्पत्ति, पाञ्चाली द्रौपदी को दाँव पर लगाता हूँ। उसके नेत्र कमल के समान हैं, उसके शरीर से कमल की सुगंध निकलती है, वह गुण और रूप में साक्षात् लक्ष्मी के समान है। वह सभी कामों की देख-भाल तत्परता से करती है। वह तीनों लोकों में सबसे अधिक सुन्दरी है। मैं पाण्डवों की लक्ष्मी, द्रौपदी को दाँव पर लगाता हूँ।

युधिष्ठिर की यह बात सुनकर सब उन्हें धिक्कारने लगे। भीष्म, द्रोण, विदुर आदि चिन्ता से व्याकुल हो गये। केवल धृतराष्ट्र इस बाज़ी को जीत लेने के लिए उतावले और प्रसन्न देख पड़ने लगे। शकुनि ने कपट से इस दाँव को भी जीत लिया।

बाजी जीतकर दुर्योधन ने विदुर से कहा कि तुम जाकर द्रौपदी को सभा में लाओ और उससे मेरी दासी की तरह रहने को कहो। यह सुन, विदुर ने बिगड़कर कहा—तेरे सिर पर काल नाच रहा है, इसी कारण मर्यादा को छोड़कर तू इस तरह की बात कहता है। तू नरक जाने की तैयारी मतकर। द्रौपदी कभी तेरी दासी नहीं हो सकती। मैं कहता हूँ कि राजा युधिष्ठिर ने अपने को हार चुकने

के बाद द्रौपदी को दाँव पर लगाया है; इसलिए उस समय द्रौपदी पर उनका कोई अधिकार नहीं था। पंडितों का कहना है कि किसी के साथ ऐसा बर्ताव न करना चाहिए जिसमें उसे आन्तरिक दुःख हो। न किसी को कठोर वचन ही कहना चाहिए, न दूसरों को हीन ही समझना चाहिए। हे दुर्योधन! तू छल, कपट, अन्याय से इस जुएँ में लगे हुए दाँव को भले ही जीत ले, किन्तु आगे इसका परिणाम भला न होगा। मुझे तो साफ़ देख पड़ रहा है कि शीघ्रही कुरुवंश का और उसके साथ ही पृथ्वी मण्डल के और सभी क्षत्रियों का संहार होगा।

विदुर की बात अनसुनी कर दुर्योधन ने प्राति-कामी को द्रौपदी को सभा में लाने के लिए भेजा। प्राति-कामी ने जाकर द्रौपदी से जुएँ का सब हाल बतलाया और दुर्योधन का संदेश सुनाया।

द्रौपदी ने उसे यह पूछने को वापस भेजा कि युधिष्ठिर पहले अपने को हार गये हैं या मुझे। प्रातिकामी ने सभा में आकर युधिष्ठिर से द्रौपदी की बात कही। चिन्ता और लज्जा के मारे युधिष्ठिर अपने आपे में न थे। उन्होंने प्रातिकामी की बात का कुछ उत्तर न दिया। तब दुर्योधन ने प्रातिकामी को यह कहकर द्रौपदी के पास भेजा कि वह यहीं सभा में आकर जो कुछ पूछना हो।

पूछे। प्रातिकामी फिर द्रौपदी के पास गया और उसे सब हाल बतलाया। तब द्रौपदी ने उसे यह कहकर लौटा दिया कि तू सभा में बैठे हुए वृद्धलोगों से यह पूछ-आ कि इस समय क्या करना मेरा धर्म और कर्त्तव्य है। प्रातिकामी ने जाकर यह बात कही। इसी बीच में युधिष्ठिर ने चुपचाप द्रौपदी के पास कहला भेजा कि तुम रजस्वला होने पर भी केवल एक कपड़ा पहिने हुए ही सभा में चली जाओ। तुम्हें इस दशा में सभा में उपस्थित देख सब लोग दुर्योधन की निन्दा करेंगे। इधर पाण्डवों की दीन-दशा देख दुर्योधन ने प्रसन्न होकर प्रातिकामी से कहा कि तू द्रौपदी को यहीं ले आ, वह स्वयं सभा में उपस्थित होकर जो पूछना चाहे वह पूछे।

प्रातिकामी बड़े असमंजस में पड़ गया। दुर्योधन का नौकर होते हुए भी उसने सभासदों से पूछा कि मैं द्रौपदी से जाकर क्या कह दूँ। प्रातिकामी को इस प्रकार डरा हुआ देख दुर्योधन ने अपने भाई दुःशासन से कहा कि तुम जाकर द्रौपदी को सभा में घसीट लाओ।

दुःशासन द्रौपदी के पास गया और दुर्वचन सुना कर उसे दासी की तरह सभा में चलने के लिए कहने लगा। द्रौपदी डरकर रोती हुई, गांधारी आदि के निवास की ओर भागी। किन्तु दुःशासन ने दौड़कर उसके

बाल पकड़ लिये और खींचता हुआ वह उसे सभा की ओर ले चला। द्रौपदी ने बिलखकर उससे उस दशा में सभा में न ले जाने की प्रार्थना की। किन्तु दुःशासन ने उत्तर दिया कि तुम इस समय हमारी दासी हो। दासियों को लज्जा कैसी? चाहे रजस्वला हो अथवा नङ्गी ही, तुम्हें तो सभा में चलना ही होगा। यह कह उसके बाल पकड़कर खींचता हुआ वह उसे सभा में ले आया। बाल पकड़कर खींची जाने पर द्रौपदी के ऊपर के अङ्गों से वस्त्र अलग हो गया था। वह उस दशा में लज्जा और क्रोध से जलने लगी। इतने पर भी सभा में किसी को कुछ कहते न देख वह सब को धिक्कारने लगी। इधर दुःशासन, कर्ण, शकुनि उसे दासी कहकर और अनेक कुवाच्य सुनाकर उसकी हँसी उड़ाने लगे।

दुःशासन उसे और ज़ोर से खींचकर उसे वस्त्रों से हीन करने लगा। द्रौपदी ने क्रोध में भरकर ज़ोर-ज़ोर से कहना शुरू किया—आज भरतवंश वालों का धर्म और क्षत्रियों की वीरता नष्ट हो गई। तभी तो यहाँ बैठे हुए बड़े-बूढ़े इस अधर्म के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कह रहे हैं। मुझे जान पड़ता है कि धर्मात्मा भीष्म-पितामह, द्रोणाचार्य और विदुर में अब तनिक भी पुरुषार्थ नहीं रह गया है, नहीं तो वे अपने सामने इतना अनर्थ होते हुए देख, इस

प्रकार चुप नहीं रह सकते थे।

द्रौपदी को इस प्रकार विलाप करते हुए सुनकर कातर स्वर में भीष्म ने कहा—धर्म की गति बहुत ही सूक्ष्म है। इस समय मैं यह निर्णय नहीं कर सकता कि क्या धर्म है, क्या नहीं? इसी कारण मैं चुप हूँ। जो आदमी अपने को हार चुकता है उसका अधिकार किसी वस्तु पर नहीं रह जाता, ऐसी दशा में वह किसी वस्तु को कैसे दाँव पर लगाकर हार सकता है। दूसरी बात यह है कि स्त्री सदा पति के अधीन रहती है। अब यह निर्णय करना सरल नहीं है कि इस दोनों बातों में से कौन-सी बात इस समय धर्मानुकूल मानी जाय। मैं जानता हूँ कि युधिष्ठिर तीनों लोकों का राज्य छोड़ सकते हैं, किन्तु धर्म नहीं छोड़ सकते। और वे ही धर्मराज युधिष्ठिर यह कह चुके हैं कि मैं द्रौपदी को हार चुका हूँ। इन सब कारणों से तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देना सरल नहीं है।

द्रौपदी ने बिलखकर कहा—धर्मराज युधिष्ठिर न तो जुआँ खेलना जानते हैं, और न खेलने के लिए वे तैयार ही हुए थे। शकुनि आदि धूर्तों और दुष्टों ने उन्हें जाल में फँसाकर कपट से यह सब कुकृत्य रचा है। फिर धर्मराज युधिष्ठिर पहले अपने आपको दाँव पर लगाकर हार चुके हैं। क्या इसके बाद उन्हें यह अधिकार था कि वे मुझे दाँव

पर लगा सकें और हारें ? इस सभा में कुरुवंश के बड़े-बूढ़े बैठे हुए हैं। उन सब के भी बहुएँ और बेटियाँ हैं। मैं उन सब से प्रार्थना करती हूँ कि वे इस समय धर्म-अधर्म का निर्णय करें। वह सभा नहीं, जहाँ वृद्ध लोग न हों, वे वृद्ध नहीं हैं जो धर्म की बात न कहें, वह धर्म नहीं, जहाँ सत्य का अंश न हो, वह सत्य नहीं जिसमें छल का लेश हो।' इस प्रकार विलाप करती हुई द्रौपदी बड़ी ही कातर दृष्टि से पाण्डवों की ओर निहारने लगी। भीम ने देखा, दुःशासन के बार-बार वस्त्र खींचने से द्रौपदी का आधा शरीर खुल गया है, दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण तथा शकुनि घृणित वचन कहकर उसे सता रहे हैं। तब भीम आपे से बाहर हो गये और क्रोध से युधिष्ठिर की ओर देखने लगे।

अध्याय ६८-७०

चीर-हरण, भीम की प्रतिज्ञा, विदुर और भीष्म के वचन

भीम ने क्रोधपूर्वक युधिष्ठिर से कहा—'जुआड़ी अपनी वेश्याओं को भी दाँव पर नहीं लगाते, अपनी स्त्री की तो बात ही क्या ! आप बड़े भाई हैं। हम आपके अधीन हैं। आप इतने बड़े साम्राज्य—इतने धन-सम्पत्ति—को हार गये। इसका मुझे कुछ भी बुरा न लगा।

किन्तु द्रौपदी को दाँव पर लगाया जाना और उसका इस तरह अपमानित होना मुझसे सहा नहीं जाता। जिन हाथों से आपने जुआँ खेला है, उन्हें मैं जला डालूँगा।'

अर्जुन ने समझाते हुए भीम से कहा—'आपको इस तरह इस समय बड़े भाई का अपमान न करना चाहिए। धर्म और मर्यादा को भूलना उचित नहीं है। क्षत्रिय-धर्म समझकर ही धर्मराज युधिष्ठिर ने द्यूतक्रीड़ा का निमंत्रण स्वीकार किया था।' भीम शान्त हो गये।

पाण्डवों को इस प्रकार दुखित और द्रौपदी को इस प्रकार अपमानित होते देख धृतराष्ट्र के पुत्र धर्मात्मा विकर्ण ने ऊँचे स्वर में सब को सुनाकर कहा—'भीष्म, द्रोण तथा विदुर आदि एक-से-एक विद्वान् और धर्मात्मा यहां उपस्थित हैं। धर्मपूर्वक उन सब को यह बतलाना चाहिए कि द्रौपदी को युधिष्ठिर हार सकते हैं या नहीं। यदि सब चुप हैं तो मैं स्वयं कहता हूँ कि यहाँ जो कुछ हुआ है वह सब अधर्म है। जुआँरियों के बुलाने और शकुनि के उभाड़ने पर ही युधिष्ठिर ने पहले अपने को दाँव पर लगाया और फिर द्रौपदी को। इन कारणों से पाँच पाण्डवों की स्त्री, द्रौपदी को हारने का अधिकार उस समय केवल युधिष्ठिर को नहीं था। धर्म के अनुसार यह नहीं माना जा सकता कि शकुनि ने द्रौपदी

को जीत लिया है।' विकर्ण की बात सुनकर सभा में सभी शकुनि और दुर्योधन की निन्दा करने लगे।

यह देखकर कर्ण ने विकर्ण को डाँटते हुए कहा—'तुम अपने कुल के कलंक हो। तुम बच्चे हो। तुम्हें धर्म का ज्ञान नहीं है। युधिष्ठिर स्वयं अपने मुख से कहकर और द्रौपदी को दाँव पर लगाकर हार चुके हैं। दूसरे पाण्डवों ने भी इस बात को स्वीकार कर लिया है। धर्मशास्त्रों के अनुसार स्त्री का एक ही पति हो सकता है। किन्तु द्रौपदी ने पाँच पति किये हैं। इस कारण यह व्यभिचारिणी है। और व्यभिचारिणी स्त्री को एक कपड़ा पहनाकर या बिना कपड़े के भी, सभा में लाना अनुचित नहीं कहा जा सकता। शकुनि ने धर्मपूर्वक पाण्डवों, उनकी सम्पत्ति और द्रौपदी को भी जीत लिया है। इस कारण पाण्डवों के और द्रौपदी के भी वस्त्रों को उतार लेना अनुचित न होगा।'

यह सुनकर पाँण्डवों ने अपने वस्त्र उतारकर रख दिये। दुःशासन ज़बरदस्ती कपड़े खींचकर द्रौपदी को नङ्गी करने लगा। धर्म में बँधे रहने के कारण पाँण्डव कुछ न बोल सके। उन्हें सर नीचे झुकाये चुपचाप बैठे देख सब ओर से निराश होकर द्रौपदी ने अपनी रक्षा के लिए श्री कृष्णजी को पुकारा। उसकी लाज जाते देख, भगवान कृष्ण का आसन डोला। उनके प्रताप से द्रौपदी की

लाज बच गई। जैसे-जैसे दुःशासन द्रौपदी की साड़ी खींचता गया, वैसे-ही-वैसे उसका चीर बढ़ता गया। नाना प्रकार के वस्त्रों से सभामण्डप भर गया। वस्त्र खींचते-खींचते दुःशासन थक गया था। किन्तु द्रौपदी को वह नग्न कर सका। अन्त में हारकर और थककर वह एक ओर बैठ गया। इसी समय भीम ने क्रोध से गरजकर कहा—'मैं इस पापी दुःशासन का हृदय फाड़कर यदि इसका रक्त न पीऊँ तो मुझे सद्गति प्राप्त न हो। मैं इस अपमान का बदला इसके रुधिर को पीकर लूँगा।'

भीम की दारुण प्रतिज्ञा सुनकर सब उनकी प्रशंसा करने लगे।

इधर द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर न देते देख लोग धृतराष्ट्र आदि की निन्दा करने लगे। तब सब को रोककर विदुर ऊँचे स्वर में बोले—'द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर न देने से धर्म का अनादर होता है। जो धर्म का ज्ञान रखनेवाला मनुष्य सभा में बैठकर किसी प्रश्न का धर्मसंगत उत्तर नहीं देता, वह झूठ बोलने के पाप के आधे अंश का भागी बनाना पड़ता है और जो पुरुष सभा में बैठकर अधर्म-युक्त उत्तर देता है, उसे झूठ बोलने का पूरा पाप लगता है। इस सम्बन्ध में एक प्राचीन कथा है।

दैत्यों के राजा प्रह्लाद के पुत्र विरोचन और अंगिरा

ऋषि के पुत्र सुधन्वा के बीच, एक कन्या को लेकर, झगड़ा उत्पन्न हुआ। दोनों ही उस कन्या को प्राप्त करना चाहते थे। दोनों निर्णय कराने के लिए प्रह्लाद के पास गये। प्रह्लाद ने निर्णय करने के पहले कश्यप ऋषि से धर्म के सम्बन्ध में पूछा। कश्यपजी ने कहा कि जो मनुष्य क्रोध या डर के मारे जान-बूझकर किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देता, अथवा झूठ बोलता है वह मरने पर दूसरे लोक में हज़ार वारुण-पाशों में बाँधा जाता है। इसी प्रकार जो गवाह सच्ची गवाही नहीं देता अथवा दोनों पक्षों को ख़ुश करने के लिए साफ़-साफ़ बातें नहीं बतलाता, उसकी भी मरने पर वही गति होती है। जिस सभा में लोग धर्म का पक्ष न लेकर चुपचाप बैठे रहते हैं वहाँ सब लोगों को पाप लगता है। अधर्म की जहाँ निन्दा नहीं होती वहाँ बैठे हुए सबसे श्रेष्ठ मनुष्य को उस अधर्म के आधे भाग को भोगना पड़ता है। उस अधर्म के करनेवाले लोगों को उसका चौथाई हिस्सा मिलता है और बाक़ी चौथाई हिस्सा सब सभासदों में बँट जाता है। किन्तु जिस सभा में पाप-कर्म की निन्दा की जाती है वहाँ सभासदों को कुछ भी पाप नहीं लगता। उस पाप का पूरा फल पाप करनेवाले को ही भोगना पड़ता है। धर्म सम्बन्धी प्रश्न उपस्थित होने पर जो कोई पक्षपात

करके झूठ बोलता है उसके सब पुण्य नष्ट हो जाते हैं और उसके पहले की सात पीढ़ियाँ और आगे आनेवाली सात पीढ़ियाँ नरक में गिरती हैं।

कश्यप ऋषि के ये वचन सुन, प्रह्लाद ने अपने पुत्र विरोचन से कहा कि ये सुधन्वा ऋषि तुमसे श्रेष्ठ हैं, इन्हीं को कन्या मिलनी चाहिए। बाजी में हार जाने के कारण अब ये ऋषि तुम्हारे प्राणों के स्वामी हैं। सुधन्वा ऋषि ने प्रह्लाद के इस प्रकार के निष्पक्ष निर्णय से प्रसन्न होकर उनके पुत्र विरोचन के प्राण नहीं लिये।

यह उपाख्यान सुनाकर विदुर ने सभासदों से कहा कि आप लोग धर्मपूर्वक द्रौपदी के प्रश्नों का उत्तर दीजिये। विदुर के इस प्रकार बार-बार कहने पर भी उस सभा में कोई कुछ न बोला। यह देखकर कर्ण ने दुःशासन से कहा कि तुम इस दासी द्रौपदी को अपने महलों में ले जाओ और दासी की तरह ही इसका उपभोग करो। दुःशासन फिर द्रौपदी को खींचने लगा। उसके धक्के से द्रौपदी गिर पड़ी और बिलखकर विलाप करती हुई पूछने लगी कि वृद्धिजन बतलायें कि मैं दासी हूँ या नहीं। उसकी दुर्दशा से विह्वल हो भीष्मपितामह ने कहा कि इस समय हमारी बुद्धि काम नहीं कर रही है। किन्तु हम जानते हैं कि धर्मराज युधिष्ठिर ऐसी घोर विपत्ति के समय भी धर्म-मार्ग

से न डिगेंगे। वे इस विषय में जो निर्णय कर देंगे हम सब उसी को उचित मानेंगे।

दुर्योधन ने व्यंग से हँसते हुए कहा—'हे पाञ्चाली! तू अपने पाँचों धर्मात्मा पतियों से प्रश्न कर। वे यदि यह कह दें कि तू दासी नहीं है, तो हम भी उस बात को मान लेंगे। हम तुम्हारी दुर्दशा देखकर और तुम्हारे पतियों को इस प्रकार कातर पाकर दुःख के समुद्र में डूबे हुए हैं।'

सभा में कोलाहल होने लगा। इसी बीच गरजकर भीम ने कहा—यदि हम लोग धर्म में बँधे हुए न होते और धर्मराज युधिष्ठिर को अपना प्रभु न मानते, तो द्रौपदी के बालों में हाथ लगानेवाला मनुष्य मुझसे जीवित नहीं बच सकता था। इस समय भी महाराज युधिष्ठिर आज्ञा दें तो मैं धृतराष्ट्र के इन दुष्ट पुत्रों को आसानी से नष्ट कर डालूँ। भीष्म और विदुर ने समझा-बुझाकर भीम को शान्त किया।

अध्याय ७१

धृतराष्ट्र का वर देना, पाण्डवों की मुक्ति

कर्ण ने कहा—हे द्रौपदी! दास, पुत्र तथा पराधीन स्त्री ये तीनों धनहीन कहे गये हैं। दास की स्त्री उस दास

के प्रभु की स्त्री मानी जाती है। इस कारण तुम मेरा उचित उपदेश मानकर दुर्योधन आदि को अपना पति मानो। दासी का कोई एक ख़ास पति नहीं होता। अब तुमको भी दासी होने के कारण उसी तरह का व्यवहार स्वीकार करना चाहिए। यदि कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर इस लोक का कुछ भी विचार रखते, तो वे पाञ्चाल देश के राजा द्रुपद की कन्या को दाँव पर लगाते ही क्यों?

कर्ण की बातों को सुनकर भीम व्याकुल होने और युधिष्ठिर पर अपना क्रोध निकालने लगे। युधिष्ठिर ने कातर होकर दुर्योधन से कहा—'हम पाँचो भाई तुम्हारे अधीन हैं। अब तुम्हीं निर्णय करो कि द्रौपदी की गणना हारी हुई वस्तुओं में की जाय या नहीं।' पाण्डवों को इस प्रकार दुखी देख कर्ण की ओर ताककर दुर्योधन मुस्कुराने लगा। फिर अपनी बाईं जाँघ से वस्त्र हटाकर उसने द्रौपदी की ओर देखा और बहुत ही पाप-पूर्ण संकेत किया। यह देख, भीम ने क्रोध से पागल होकर कहा कि 'इस अपराध के बदले में मैं युद्ध करते समय तेरी जाँघ को अपनी गदा से तोड़ूँगा।' भीम की प्रतिज्ञा को सुनकर विदुर ने कहा —'अब यह जान पड़ता है कि कुरुवंश का नाश अवश्य होगा। सभा के बीच में एक पतिव्रता स्त्री के अपमान से बढ़कर दूसरा कुकर्म नहीं हो सकता। अब इस सभा में इसका

निर्णय हो जाना चाहिए कि अपने को हारने के बाद क्या युधिष्ठिर को यह अधिकार था कि वे द्रौपदी को दाँव पर लगाते ?'

विदुर को झिड़क कर दुर्योधन ने कहा—'हे पाञ्चाली ! यदि भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव यह कह दें कि युधिष्ठिर स्वामी नहीं हैं तो तुम दासी होने से छूट जाओगी ।

अर्जुन ने कहा—'महात्मा धर्मराज युधिष्ठिर ने जब हमको दाँव पर लगाया था तब वे हमारे स्वामी थे, क्योंकि वे उस समय तक अपने को हारे नहीं थे । किन्तु जब वे अपने को दाँव पर लगाकर हार गये उस समय के बाद से वे किसी के स्वामी माने नहीं जा सकते । कुरु-वंशियों को इस समय इसी पर विचार करना है ।'

इधर इस प्रकार की चर्चा चल रही थी, उधर धृत-राष्ट्र के अग्निहोत्र-भवन आदि में भयंकर अशुभ-सूचक उत्पात होने लगे । गान्धारी और विदुर के द्वारा इन उत्पातों का समाचार पाकर धृतराष्ट्र अनिष्ट की आशंका से काँप उठे । उन्होंने डरकर दुर्योधन को द्रौपदी की हँसी उड़ाने से रोका और फिर द्रौपदी को अपने पास बुलाकर उसकी बड़ी प्रशंसा की । फिर उससे वर माँगने को कहा । द्रौपदी ने धर्मात्मा महाराज युधिष्ठिर को दास-भाव से छुड़ा देने

का वर माँगा। धृतराष्ट्र ने पहला वर देकर द्रौपदी से दूसरा वर माँगने को कहा। द्रौपदी ने अस्त्र-शस्त्र-रथ सहित अर्जुन, भीम, नकुल, तथा सहदेव को दासभाव से मुक्त कर देने को कहा। धृतराष्ट्र ने 'तथास्तु' कहकर तीसरा वर माँगने को कहा। द्रौपदी ने कहा—'लोभ से धर्म का नाश होता है। क्षत्रिय-स्त्री केवल दो वर ले सकती है। आपकी कृपा से मेरे पति दासभाव से छूट गये। अब वे अपनी इच्छा के अनुसार स्वाधीन भाव से पुण्य-कर्म करके कल्याण प्राप्त कर सकेंगे।

अध्याय ७२–७३

भीम का क्रोध, धृतराष्ट्र का युधिष्ठिर को भेजना

कर्ण ने कहा—द्रौपदी के कारण ही पाण्डव दासता से मुक्त हो सके। ऐसा विचित्र कार्य दूसरी कोई भी सुंदरी स्त्री नहीं कर सकी थी!

भीम को कर्ण की बात बहुत बुरी लगी। उन्होंने अर्जुन से कहा—'देवल ऋषि ने कहा था कि पुत्र, कर्म और विद्या इन तीनों से ही मनुष्य को सद्गति प्राप्त हो सकती है। दुःशासन ने द्रौपदी को अपवित्र कर दिया है। अब उसकी संतान के द्वारा हमें सद्गति नहीं मिल सकती।'

अर्जुन ने उन्हें बहुत समझाया और कहा कि पति-व्रता द्रौपदी किसी प्रकार भी अशुद्ध नहीं मानी जा सकती। सज्जन पुरुष हमेशा दुर्जनों की कटु बातों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। पर भीम शान्त न हो सके। वे क्रोध में भरकर दुर्योधन आदि को मारने के लिए तैयार हो गये। अन्त में युधिष्ठिर ने उन्हें समझा-कर शान्त किया। फिर युधिष्ठिर धृतराष्ट्र के पास गये और हाथ जोड़कर उनसे बोले—'आप हमारे स्वामी हैं। जो आज्ञा दें हम उसका पालन करें।'

धृतराष्ट्र ने उनके धैर्य, धर्मनिष्ठा और गुणों की बड़ी प्रशंसा की। फिर क्षमा करने का उपदेश देकर और दुर्योधन आदि से प्रेम बनाये रखने का आग्रह करके उन्हें खाण्डवप्रस्थ जाने की अनुमति दी। पाण्डव सबसे मिल-भेंटकर इंद्रप्रस्थ के लिए चल पड़े।

अध्याय ७४-७७

फिर से जुएँ की आज्ञा, गांधारी का विरोध

वैशम्पायनजी बोले—धृतराष्ट्र की आज्ञा से अपने धन आदि को लेकर पाण्डव इन्द्रप्रस्थ को गये। यह सुनकर दुर्योधन आदि को बड़ी चिन्ता हुई। उसने

शकुनि, कर्ण आदि के साथ धृतराष्ट्र के पास आकर सम-
झाया कि यदि अपमानित होने के बाद अब पाण्डव इस
प्रकार खाण्डवप्रस्थ को लौट जायँगे तो फिर कौरवों
का कल्याण नहीं है। भीम तथा अर्जुन अवश्य ही सेना
जुटाकर कौरवों का समूल नाश कर डालेंगे। जाते समय
उनके हाव-भाव से प्रकट होता था कि वे शीघ्र ही हस्तिना-
पुर पर चढ़ाई करेंगे। अन्त में दुर्योधन ने धृतराष्ट्र को इस
पर राज़ीकर लिया कि पाण्डवों को बुलाकर फिर पाँसे खेले
जायँ और उसमें जो हारे, वह बारह वर्ष तक मुनि-वेश रख
कर वन में रहे और तेरहवें वर्ष अज्ञातवास करे। यदि
अज्ञातवास में उसका पता लगजाय, तो फिर दूसरी बार उसे
बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करना पड़े।
धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को वापस बुला भेजा और इसी
शर्त पर पाँसे खेलने की आज्ञा दे दी। भीष्म, विदुर,
द्रोण आदि ने इसका विरोध किया। किन्तु अपने पुत्रों
के मोह में पड़कर धृतराष्ट्र ने उनकी बात न सुनी।

गांधारी ने भी आकर धृतराष्ट्र को समझाया कि दुष्ट,
कुलांगार दुर्योधन के कहने से पाण्डवों के साथ छल
करना वंश के लिए हितकर न होगा। किन्तु धृतराष्ट्र ने
किसी की इन बातों पर ध्यान नहीं दिया।

दुर्योधन ने तेज़ घोड़ों पर दूतों को दौड़ाकर युधिष्ठिर

को वापस बुलाया। इच्छा न रहने पर भी भाइयों के साथ युधिष्ठिर लौट आये। शकुनि ने वनवास की शर्त लगाकर पाँसे खेलने के लिए उनको ललकारा। इच्छा न रहने पर भी युधिष्ठिर क्षत्रिय-धर्म का विचारकर और भावी को प्रबल जानकर द्यूत-क्रीड़ा के लिए तैयार हो गये। अन्त में शकुनि ने पाँसे फेंककर फिर कपट से बाज़ी जीत ली।

तब प्रतिज्ञा के अनुसार पाण्डवों ने राजसी वस्त्राभूषण त्यागकर वल्कल और मृग-चर्म पहन लिये। इसी अवसर पर दुःशासन मटक-मटक कर उन्हें गाली देने और उनकी हँसी उड़ाने लगा। उसने द्रौपदी से कहा कि तुम नपुंसकों के साथ वन में कष्ट भोगने के बजाय हम में से किसी एक को अपना पति क्यों नहीं बना लेतीं। दुर्योधन भी मटककर भीम की नक़ल उतारने लगा। उनके कटु वचनों से और उनके कपट से कुपित होकर भीम ने युद्ध में दुःशासन को मारने, उसके रक्त को पीने और दुर्योधन की जंघा भंग करने की प्रतिज्ञा की। अर्जुन ने दुष्ट कर्ण को मारने, सहदेव ने छली शकुनि का वध करने तथा नकुल ने धृतराष्ट्र के दुरात्मा पुत्रों को नष्ट करने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार कौरवों के नाश की प्रतिज्ञाकर पाण्डव धृतराष्ट्र के पास चले गये।

अध्याय ७८, ७९

पाण्डवों का वन जाना, विदुर का उपदेश

वैशम्पायनजी बोले—धृतराष्ट्र की सभा में जाकर युधिष्ठिर ने भीष्म, विदुर, द्रोण आदि को आदर के साथ प्रणाम किया और वन जाने की आज्ञा चाही। दुःख, लज्जा और चिन्ता से सब सर नीचा किये हुए चुपचाप बैठे रहे। विदुर ने वन के कष्टों को सहने में असमर्थ वृद्धा कुन्ती को अपने यहाँ आदर से रोक लिया। फिर विदुरजी ने पाण्डवों से कहा—तुम सब गुणों में श्रेष्ठ हो। धर्म को कभी न छोड़ना। हिमाचल पर मेरु-सावर्णि ऋषि ने, वारणावत में महर्षि व्यास ने, भृगुतुङ्ग पर परशुराम ने, दृषद्वती के तटपर शंकर ने, अञ्जना पर्वत पर महर्षि असित ने, कल्माषी के तट पर भृगु ने और समय-समय पर देवर्षि नारद ने तुम्हें जो उपदेश दिये हैं तुम उन्हीं के अनुसार चलना। तुम चन्द्रमा से शान्ति, जल से परोपकार-वृत्ति, पृथ्वी से क्षमा, सूर्य से तेज, वायु से बल, सब प्राणियों से आत्मसम्पत्ति प्राप्त करो। तुम्हारा सदा कल्याण होगा।' इस उपदेश को ग्रहणकर पाण्डव विदा हुए।

उधर शोक से विलाप करती हुई कुन्ती ने अनेक

प्रकार के उपदेश देकर और पतियों की सेवा में सदा तत्पर रहने के लिए कहकर, बिलखती हुई द्रौपदी को विदा किया। अपने महापराक्रमी, सदा धर्म के अनुसार चलनेवाले पुत्रों की यह दशा देखकर कुन्ती विकल होकर विलाप करने लगीं। पाण्डव उन्हें प्रणाम करके चले गये। विदुर किसी तरह कुन्ती को समझा-बुझाकर अपने घर लाये। अपने पुत्रों का घोर अन्याय देख धृतराष्ट्र भी विकल हो गये। तब उन्होंने शान्ति प्राप्त करने के लिए विदुरजी को बुला भेजा।

अध्याय ८०

कौरवों के नाश की भविष्यवाणी

वैशम्पायनजी बोले—धृतराष्ट्र ने विदुर को बुलाकर उनसे पाण्डवों के वन जाने का ढंग और अभिप्राय पूछा।

विदुर ने कहा—धर्मराज युधिष्ठिर यह सोचकर अपने मुँह पर कपड़ा लपेटे जारहे हैं कि छल के द्वारा उनसे जो राज्य-ऐश्वर्य छीन लिया गया है उसके कारण उत्पन्न हुए क्रोध से कहीं कौरव-गण उनकी दृष्टि में पड़कर भस्म न हो जायँ। भीम यह सोचकर अपनी मोटी-मोटी भुजाओं को निरखते हुए जारहे हैं कि इन्हीं भुजाओं के बल पर मैं घोर युद्ध करूँगा। अर्जुन यह सोचकर धूल

उड़ाते हुए जारहे हैं कि युद्ध में मैं इसी प्रकार बाण वर्षा करके अपने शत्रुओं का नाश करूँगा, सहदेव ने अपने मुँह पर इसलिए मिट्टी पोत ली है कि जिससें उन्हें कोई पहचान न सके। नकुल ने इस कारण मिट्टी लगा कर अपने को कुरूप कर लिया है जिसमें कोई स्त्री उनकी सुन्दरता पर मुग्ध न हो जाय। द्रौपदी बाल खोले जा रही है। वह तेरह वर्ष बाद कौरवों की स्त्रियों को अपने पति-पुत्रों के मारे जानेपर इसी प्रकार देखना चाहती है। सब नगरवासी पाण्डवों के लिए विलाप कर रहे हैं और कुरुवंशी बड़े-बूढ़ों को अन्याय न रोकने के लिए कोस रहे हैं। पाण्डवों के जाते समय यहाँ अनेक प्रकार के अशुभ सूचक उत्पात हुए हैं।

विदुर यह सब बातें कह ही रहे थे कि देवर्षि नारद अन्य ऋषि-मुनियों के साथ वहाँ आये और यह कहकर फ़ौरन चले गये कि दुर्योधन के कुकर्म के कारण, आज से चौदहवें वर्ष, कौरवों के वंश का नाश हो जायगा।

इस बात से दुर्योधन, कर्ण और शकुनि बहुत डर गये। दुर्योधन ने द्रोणाचार्य की शरण में जाकर उन्हें सब राज-काज सौंप दिया। द्रोणाचार्य ने कहा—मैं शरण में आये हुए दुर्योधन और कौरवों को कभी न छोड़ूँगा। किन्तु मैं यह जानता हूँ कि बन से लौटकर भीम और अर्जुन

घोर संग्राम करेंगे। मुझे भी धृष्टद्युम्न से भारी भय है। हे दुर्योधन! तुमने अपने हाथों वंश-नाश का कार्य किया है। मैं भरसक तुम्हारे पक्ष में रहकर युद्ध करूँगा। किन्तु तेरह वर्ष बाद कौरवों का नाश अवश्य होगा। इस कारण तुम जो भी दान, पुण्य, सुख-भोग करना चाहो इसी बीच में कर लो।'

धृतराष्ट्र ने भी दुर्योधन से यज्ञ करने को कहा। फिर उन्होंने विदुर से कहा—'मोह में पड़कर मैंने पाण्डवों के साथ घोर अन्याय होने दिया। हे विदुर! तुम जाकर धर्मात्मा पाण्डवों को या तो लौटा लाओ और उनकी सम्पत्ति उन्हें लौटाल दो, अथवा, यदि वे धर्म पर दृढ़ रहने के कारण वन से न लौटें, तो वहीं उन्हें सब सामग्री भेजते रहो।

अध्याय ८१

धृतराष्ट्र की चिन्ता, संजय से बातें

वैशम्पायनजी बोले—पाण्डवों के वन जाने पर धृतराष्ट्र बहुत खिन्न होकर चिन्ता-मग्न बैठे थे। उसी समय संजय ने आकर कहा—इस समय तो आप सारी पृथ्वी के सम्राट हैं। फिर आप इतने उदास और चिन्तित क्यों हैं?

धृतराष्ट्र ने कहा—जो महाबली पाण्डवों से वैर कर चुका, वह निश्चिन्त और सुखी कैसे रह सकता है ?

संजय बोले—यदि आप द्यूत-क्रीड़ा की अनुमति न देते तो यह सब अनर्थ होता ही कैसे ? देवगण जिसे नष्ट करना चाहते हैं उसकी बुद्धि पहले ही हर लेते हैं। बुद्धि-हीन होने पर मनुष्य को नींच कर्म ही सूझने लगते हैं। जब नाश सर पर मँडराने लगता है और बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, तब अन्याय ही न्याय जान पड़ता है और अनर्थकारी बातों में ही पुरुषार्थ देख पड़ता है। तब मनुष्य को दुर्बुद्धि ही अच्छी लगती है। दण्ड लेकर काल किसी को नहीं मारता। वह तो केवल उलटी बातें सुझाने लगता है। दुर्योधन ने सब के मना करने पर भी द्रौपदी का अपमान करके कौरवों के नाश का बीज बो दिया है। महाबली पाण्डव, धर्म के बंधन में पड़कर चुपचाप उस अपमान को देखते रहे। मुझे अब कौरवों का नाश निश्चित जान पड़ता है।

धृतराष्ट्र ने बिलखकर कहा—मुझे भी पतिव्रता द्रौपदी के अपमान के कारण अपने कुल का नाश स्पष्ट देख पड़ता है। जब सभा में द्रौपदी का अपमान हो रहा था उस समय गांधारी आदि सभी कौरवस्त्रियाँ रो रही थीं। उस समय अनेक घोर अशुभ-सूचक उत्पात हुए थे।

तभी मैंने विदुर तथा गांधारी के कहने से द्रौपदी को वर देकर पाण्डवों को दासता से छुटकारा दे दिया था। अब तो मुझे यही समझ पड़ता है कि जब द्रौपदी के अपमान का बदला लेने के लिए पाण्डव पाञ्चालराज की सेना लेकर श्रीकृष्णजी के साथ कौरवों से युद्ध करेंगे, तब कुरुवंश का नाश अवश्य हो जायगा। विदुर ने मुझसे कहा था कि पाण्डवों से कौरवों का मेल करा देने में ही वंश का कल्याण है। पर मैंने पुत्र के मोह में पड़कर नीतिज्ञ विदुर की बात पर ध्यान नहीं दिया। उसी का यह फल है।

सभापर्व समाप्त

महाभारत सम्पूर्ण (एक जिल्द में) ५)

महाभारत 'प्रथम खण्ड' (सभापर्व तक) १॥)

महाभारत 'द्वितीय खण्ड' (भीष्म पर्व तक) १॥)

महाभारत 'तृतीय खण्ड' (अन्त तक) १॥)

श्रीमद्भागवत सम्पूर्ण ३)

वाल्मीकि रामायण सम्पूर्ण ३)

जर्मन युद्ध में युवती १॥)

पापी धर्मात्मा १।)